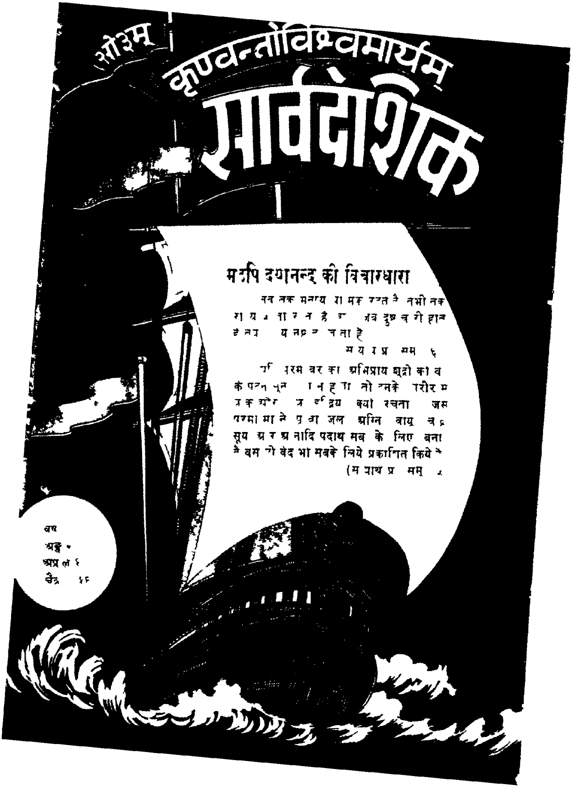

ओ३म्
कृण्वन्तोविश्वमार्यम्
सार्वदेशिक
दयानन्द की विचारधारा
अग्नि वायु
प्रकाशित किये
अप्रैल



राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी गुरुकुल मथुरा में उद्घाटन के समय यज्ञ करते हुए। राष्ट्रपति जी को एक ब्रह्मचारी जल दे रहा है। उनके साथ श्री आचार्य विश्वश्रवा जी और आचार्य श्री बृहस्पति जी यज्ञ करा रहे हैं।



श्री प्यारेलाल जी गार्गी
लश्कर (ग्वालियर)



श्री प० मूलचन्द जी बजरंगलाल
पीलवा (राजस्थान)

उक्त दोनों महानुभावों ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को अभी हाल में ५—५ हजार रुपये का वेद प्रचारार्थ दान दिया।

। ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

(सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष ३६ { अप्रैल १९६०, चैत्र २०१६ वि०, दयानन्दाब्द १३६ { अङ्क २

वैदिक प्रार्थना

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

यजु० अ० २५ । म० १३ ॥

भावार्थः—(य आत्मदा ०) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखो की प्राप्ति करानेवाला है, जिस की उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं, और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उस को अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिस का आश्रय करना ही मोक्षसुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्ममरणरूप दुःखों को देनेवाली है अर्थात् ईश्वर और उसका उपदेश जो सत्यविद्या सत्यधर्म और सत्यमोक्ष हैं उनको नही मानना, और जो वेद से विरुद्ध होके अपनी कपोलकल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामो में वर्त्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दुःखो का कारण है, और जिसकी आज्ञापालन ही सब सुखों का मूल है, (कस्मै०) जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्य प्रेम भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगो को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो ॥ ५ ॥

सम्पादकीय

जन-जीवन और आर्य समाज

गत मास इन्ही पृष्ठो मे हमने आर्य जनता से युग निर्माण हेतु वैदिक विचार–धारा प्रसार के लिए कर्म क्षेत्र मे तीव्र गति लाने की प्रार्थना करते हुए एक पच सूत्री कार्य क्रम उपस्थित किया था। हमे हर्ष है कि इस कार्य क्रम और भावना का सर्वत्र स्वागत हुआ है और आर्य जनता आज गम्भीरता पूर्वक महर्षि दयानन्द के अधूरे कार्य को पूर्ण करने के उपाय सोच रही है।

किन्तु कार्य की पूर्ति केवल बातो और प्रस्तावो से न हो सकेगी। हमें अपने आचरण व्यवहार और कार्य पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन करना होगा। आर्य समाज के लक्ष्य उद्देश्य और आधार को समझ, उसी के अनुरूप प्रचार कार्य को सचालित करना होगा। कर्त्तव्य क्षेत्र मे अग्रसर होने का निमत्रण देते हुए हम समस्त आर्य समाज के सदस्यो से आत्म–निरीक्षण करने की प्रार्थना करते हुए कहना चाहते हैं कि आर्य समाज दयानन्द का वह विशाल मानस शरीर है जिस ने धरती से विनाश की समस्त विडबनाओ को समाप्त करने का व्रत आरम्भ से ही धारण किया हुआ है। अत उसका ही एक अ ग होने के नाते जीवन को जर्जर करने वाली उन समस्त भावनाओं को, जो विष वृक्ष के रूप मे धरती पर फैली हुई आज भी हमें चुनोती दे, कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा कर रही हैं, हम न भूलें।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारा कार्य केवल बाह्य दृष्टि से शक्ति वर्द्धनन हो कर जन-जन की विचार धारा को परिवर्तित करना है। प्रत्येक मनुष्य के आधारित लक्ष्य को बदल डालना ही हमारा उद्देश्य है। हम जीवन के व्यवहार में परिवर्तन चाहते हैं। मनुष्य मात्र सच्चे अर्थों में मनुष्य-ईश्वर का पुत्र —श्रेष्ठ-आर्य बने। कोई भ्रात पथ पर न चले, आत्म हनन न करे, दुखी न रहे यह हमारी अभिलाषा है।

आर्य जन !

आप तनिक विचार तो कीजिए कि आप ने अपने को, अपने परिवार को, अपने क्षेत्र को, सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का क्या प्रयास किया है ?

क्या यह सत्य नही है कि आज भी सर्वत्र खडे मन्दिर–मस्जिद– गुरुद्वारे और उनमे होने वाला भ्रात पथ–प्रदर्शन, अज्ञान की दीवारे सुदृढ करता जा रहा है। मानव के अन्तर में धधकता स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष का ज्वालामुखी उस की समस्त सद्भावनाओ को धू धू जला अशांति की अग्नि से समस्त धरती को व्याकुल किए है।

प्रेम, एकता, बन्धुत्व के भाव आज कहां हैं ? दूसरे के दुख में विह्वल हो उसे दूर करने की चिन्ता आज किसे है ? कौन है जो दूसरो को गढ़े में गिरते देख रो रहा हो, कहा हैं वे हृदय, जो किसी को सुखी देख जलते नही। पता नही आज का मानव किस दृष्टि से उन्नति कर रहा है। हमें तो यह कहने

मे सकोच नही कि चरित्र व्यवहार और नैतिकता की दृष्टि से आज मानव का पतन सीमाए लांघ चुका है।

हमारी प्रार्थना है कि मानव के इस पतन को रोका जाए। हम नाम से नही अपितु व्यवहार से आर्य बनें, ईर्ष्या, द्वेष की भावनाओं को भुला दें। प्रेम के पावन मत्र का पाठ करें और अपने क्षेत्र में सभी को सच्चा मनुष्य, व्यवहार में, चरित्र में बनाने का सकल्प लें।

समस्त दयानन्द के अनुयायियो को आज इस विषय में विचार कर आगे बढने का निश्चय करना चाहिए। हमें विश्व निर्माण के लिए सर्व प्रथम अपने चरित्र को साचे में ढालना होगा। त्याग तप और बलिदान का दीप्त मार्ग जो दयानन्द ने दिखाया था, हमे उसी पर चलना होगा और पद-लिप्सा, यश-लालसा को ठोकर मार कर वेद ज्ञान की अलख प्रत्येक हृदय में जगानी होगी। आज हमारी साधना वासनाओ की वेदी पर सिसक रही है, क्या यह दयानन्द की विजय का मार्ग है? प्रेम की होली जला कर हम क्या "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का लक्ष्य पूर्ण कर पाएगे? क्या भूमडल के भौतिकवाद, अज्ञान, और वर्ग भेदों को इसी प्रकार आप समाप्त कर सकेंगे?

आर्य जन? इतिहास निर्माण के इन स्वर्णिम क्षणो में कर्त्तव्य की भावना आप को पुकार रही है। दयानन्द का बलिदान आप से बलि पथ पर चलने की भिक्षा मांग रहा है। पाखण्ड खण्डिनी पताका हर क्षेत्र में लहर-लहर- लहराने के लिए आर्य वीरो का आह्वान कर रही है। सुनिए इस पुकार को, उठाइए धर्म की ध्वजा को, बढ़िए रणक्षेत्र में, पाप-ताप-अनाचार अज्ञान को मिटाने की घोषणा कीजिए। सब एक बनें, धरती के मनुष्य एक साथ चलना, रहना, बढना सीखे। सब एक पिता के पुत्र होने के नाते भाई-भाई की भाति रहे और व्यवहार करें। इस लक्ष्य को अन्त में धारण कर एक वर्षीय योजना और पचसूत्री कार्य क्रम की पूर्ति मे लगिए॥

ईर्ष्या द्वेष छोड़िये!

बहुत विचार करने पर भी हमारी समझ मे नहीं आता कि एक लक्ष्य और एक पथ के पथिक, सत्य, न्याय और प्रेम के पावन मन्त्र के उद्घोषक आर्य समाज के सदस्यों में भी आपसी विवाद क्यो? क्या उन्नति के मार्ग की यह सब से बडी बाधा नही?

हमारा निवेदन हैं कि प्रत्येक वह व्यक्ति जिसे दयानन्द और वेद से तनिक भी प्यार हो, आपस मे ईर्ष्या-द्वेष और कलह को त्याग दे। हम आर्यों के लिए जिस प्रकार मूर्ति पूजा और अवतारवाद आदि त्याज्य हैं उसी भांति आपसी सघर्ष भी प्रत्येक मूल्यपर त्याज्य होने चाहिए।

अपना दृष्टिकोण उदार बनाइये। दूसरों के विचार क्रम के प्रति सहिष्णु बनिए। अपना लक्ष्य वैदिक भावनाओ का प्रचार ही रखिए और पदो को सेवा का, कर्त्तव्य पूर्ति का साधन समझिये। न भूलिए, कि अपने हृदय मे ईर्ष्या-द्वेष को स्थान देना आर्यत्व के के पथ से विचलित होना है। —

सघटन की महिमा गाते हुए हम स्वय विघटन का पाठ पढ क्या आप कर्त्तव्य की पूर्ति कर सकेंगे? यदि नही तो आत्म शुद्धि के लिए हम यज्ञ की पवित्र वेदी पर बैठ, ईर्ष्या द्वेष की

सदा सर्वदा के लिए आहुति दे, सच्चा आर्य बनने का निश्चय करेंगे ?

वेदी की पवित्रता

आर्य समाज आरम्भ से ही देश, काल और समय की सीमाओ में न बध मानव मात्र के कल्याण और उत्थान के लिए यत्न शील रहा है और उस की वेदी भी पवित्र वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार के लिए प्रयुक्त होती रही है।

हमारी समस्त आर्य समाजो से प्रार्थना है कि वह इस गौरव पूर्ण परम्परा पर आज भी विशेष ध्यान रखें और सर्वदा वैदिक सिद्धान्तो के प्रचार और असत्य अज्ञान के खण्डनात्मक भाषण ही अपनी वेदी से कराए।

अच्छा तो यह हो कि आदरणीय विद्वानो के भाषण का विषय पूर्व से ही बना दिया जाए और जनता में भी विषय को भली भाति प्रसारित किया जावे। इससे जहा विषय के प्रति उत्सुकता उत्पन्न होगी, वहा श्रोताओ को अपने विचार निर्माण की दृष्टि से सन्तुलित सामग्री भी प्राप्त होगी। आशा है कि इस प्रश्न की गम्भीरता को ध्यान में रख सभी उचित पग उठाएगे।

गति विधि से सूचित कीजिए

जो एक वर्षीय योजना हमने आर्य जनता के सन्मुख प्रस्तुत की है उस के सम्बन्ध में आप अविलम्ब अपने आर्य समाज के निर्णय से हमें सूचित कीजिए।

इस सम्बन्ध में निम्न प्रश्नो की जान कारी आवश्यक है।—

न० (१) क्या आपने अपने क्षेत्र के उन व्यक्तियों के नाम रजिस्टर में अंकित कर लिए हैं जिन्हे आगामी वर्ष में आप आर्य विचार धारा से दीक्षित करना चाहते हैं ? यदि किये हैं तो कितने ?

(२) आपने उन व्यक्तियो की विचारधारा बदलने के लिए क्या उपाय सोचे हैं ?

(३) क्या आपने अपने समाज द्वारा समीप के किसी नये स्थान पर वर्ष भर तक आर्य-समाज का प्रचार कराने का निश्चय किया है ? यदि किया है तो कृपया उस स्थान का नाम सूचित कीजिये।

इस योजना के सम्बन्ध में आप के जो भी सुझाव हो उनसे हमे सूचित कीजिये, और अपनी गति विधि की सूचना भी भेजते रहिये।

ईसाई निरोध का कार्य

इस समय सार्वदेशिक सभा की ओर से देश के कई भागों मे ईसाई निरोध का कार्य तीव्र गति से चल रहा है। हमारे कार्य कर्ता बासवाडा (राजस्थान) छोटा नागपुर बिहार, उडीसा, आन्ध्र, मध्य प्रदेशादि में कैप बना कर त्याग की भावना से सकटों की परवाह न करते हुए भी ईसाइयो के दुर्गम गढो में वैदिक धर्म की भावनाए प्रसारित करने में लगे हुए हैं।

गत मास सार्वदेशिक सभा के उपप्रधान कर्मठ नेता श्रद्धेय श्री बा० कालीचरण जी आर्य ने बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि सभी क्षेत्रों का निरीक्षण किया। उन्होंने सर्वत्र घूम कर जो मत प्रगट किया है उससे प्रतीत होता है कि ईसाइयों के विष प्रवाह को यदि न रोका गया तो यह भारतीय

राष्ट्र के लिए एक विकट समस्या बन जायेगा ।

धन जन से सम्पन्न ईसाई पादरियो के कुचक्र तीव्र गति से बढ़ रहे हैं और हम बहुत चाह कर भी धनाभाव के कारण अपनी बहुत सी योजनाए पूर्ण नहीं कर पा रहे । यह सत्य है कि हमारे कार्यकर्ता बहुत ही अल्प राशि से पादरियो के सहस्रो रुपये से खडे किये जाल को छिन्न भिन्न कर डालने में समर्थ हैं किन्तु उन्हे भी कुछ साधन तो चाहिये ही ।

हम अपना कार्य कर रहे है और करते रहेगे किन्तु यदि यह कार्य और भी अधिक शक्ति के साथ किया जाए तो ईसाइयो के षड-यन्त्र शीघ्र विफल हो राम कृष्ण की सन्तानो की रक्षा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।

अत ईसाइयो के प्रवाह को रोकने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति से इस यज्ञ में जो भी सहयोग सम्भव हो, देने की प्रार्थना करता हूं ।

—रघुवीर सिंह शास्त्री

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

मौरीशस में महान् आपत्ति

पिछले दिनो भारतीय समाचार पत्रो में मौरीशस में आये एक भयकर तूफान का समाचार छपा था । इस तूफान के सम्बन्ध में मौरीशस से श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज के सौजन्य से जो समाचार सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में प्राप्त हुए हैं, उनको पढकर अत्यन्त दुःख हुआ । ४० हजार से अधिक मकान नष्ट और ६० हजार से अधिक क्षतिग्रस्त हो गये हैं । सहस्रो व्यक्ति बे घर बार के होकर शरणार्थी केन्द्रो में जिनकी सख्या २२१ बताई जाती है, शरण पा रहे हैं । तूफान की रफ्तार १६० मील से भी अधिक थी । आर्यसमाज और आर्य जनो की भी सम्पत्ति की बहुत हानि हुई है । ४० प्रतिशत आर्यसमाज के मन्दिर नष्ट हो गए हैं । इस आपत्ति के काल में हम सबकी सहानुभूति पीडितो के साथ है । मौरीशस आदि के आर्य नर-नारी सदैव ही इस प्रकार के आपत्ति के काल में भारतीय आर्यसमाजो और भारतीय प्रजा की आर्थिक सहायता करते रहें है । अब उन पर आपत्ति आई है, तो मानवता और कृतज्ञता के नाते हम भी उनकी इस आपत्ति मे अपनी सहायता का हाथ बढा कर और उनके कष्टों को कम करने में सहायक बन कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें । जो समाजें और आर्य बन्धु उनकी सहायता करना चाहें, वे अपनी सहायता सार्व० आ० प्र० सभा को भेज सकते हैं । यहां से आर्य सभा मौरीशस को भेज दी जायगी ।

भारतीय साहित्य और संस्कृति

उपर्युक्त पुस्तक के सम्बन्ध में श्रीयुत प० हरिदत्त जी शास्त्री नवतीर्थ लिखते हैं —

"भारतीय साहित्य और सस्कृति" नाम की पुस्तक एक मात्र १३ पुस्तकों के साराश को लेकर लिखी गई है । जो पुस्तकें M. A के कोर्स में आगरा विश्व विद्यालय ने निर्धारित की हुई हैं, उसमें मेरा जो विचार था वह परिशिष्ट में प्रकाशक ने मूल्य न बढ जावे, इस दृष्टि से तथा शीघ्र प्रकाशन के कारण छोड दिया वह अभी तक अमुद्रित है जैसा कि मैंने टकारा के वेद सम्मेलन के सभापति पद से

कहा था कि यदि कोई सभा या सज्जन उसे छापना चाहे तो मैं देने को उद्यत हूँ किन्तु किसी भी व्यक्ति ने यह उदारता अभी नही दिखाई। भाव यह कि पुस्तक के विचार को मेरा विचार समझना या आर्य समाज का सिद्धान्त मानना ठीक नही—न है।

मेरे विचार वही है जो महर्षि दयानन्द के हैं। उनकी पुष्टि ही परिशिष्ट मे की गई थी। पुस्तक के नवीन सस्करण मे यह त्रुटि दूर कर दी जायगी।

पशु-निर्दयता निवारक विधेयक

अभी हाल मे राज्य सभा मे पशु निर्दयता निवारक विधेयक पारित हुआ है। इस विधेयक मे खाद्य मन्त्री श्री पाटिल ने दो सशोधन स्वीकार कराये। एक सशोधन तो यह है कि धार्मिक विश्वासानुसार पशु बलि वर्जित नही होगी और दूसरा यह कि धार्मिक निर्देशो के अनुसार भोजन के लिए पशु वध मे होने वाली निर्दयता पर कोई प्रतिबन्ध न रहेगा। इस प्रकार सरकार ने पशु निर्दयता निवारण की दिशा मे सशर्त पग उठाया है। मन्त्री महोदय ने अपने सशोधनके पक्षमें यह तर्क उपस्थित किया कि भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह समस्त वर्गों की धार्मिक भावनाओ का आदर करे। परन्तु यह तर्क समाधान कारक नही है क्योकि कई राज्य सरकारो ने धार्मिक आधार पर पशुबलि को निषिद्ध ठहराया है। यद्यपि कई वर्गों का धर्म पशु-बलि को आवश्यक ठहराता है किन्तु वे राज्य उपर्युक्त प्रकार की भावनाओ से अप्रभावित रहे और उन्होंने कानून बना डाले। पिछले कई वर्षों से हमारी लोक सभा समाज सुधार विषयक विधेयक पारित करती चली आरही है और मुख्यत मुसलमानो को उनके प्रभाव से वचित रखा जा रहा है। इस सहिष्णुता मे केन्द्रीय सरकार की दृष्टि में कोई तथ्य भले ही हो परन्तु इसकी भी सीमा होनी चाहिये। जो बात मानवता जीव-दया और सार्वजनिक औचित्य के विरुद्ध हो उस पर यह सहिष्णुता हावी नही होने देनी चाहिये भले ही उसके लिए किसी वर्ग का धर्म अनुमति देता हो। इस सम्बन्ध मे आर्यसमाज की स्थिति स्पष्ट है। वह देवी देवताओ की प्रसन्नता के लिए पशुओ के बलिदान और भोजन के लिए पशुओ के वध को अमानवीय, अधार्मिक और जघन्य मानता है। सार्व० सभा के प्रधान श्रीबा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट ने सरकारी बिल के प्रस्तोताओ के समक्ष रख दी थी। यदि समाधान कारक कानून बन जाता तो उससे पशु बलि निषेध, भोजन इत्यादि के लिए पशुओ के वध और उनके प्रति होने वाली क्रूरता के निवारण के कार्य मे कुछ सहायता मिल जाती। जीव दया से प्रेरित सस्थानो और आर्यसमाज का प्रचार कार्य तो अब भी जारी रहना है। और यह कार्य अधिक वेग से किये जाने की आवश्यकता है।

श्रीयुत महाशय गोविन्दराम हासानन्द जी

श्रीयुत गोविन्दराम हासानन्द जी अब इस ससार में नही हैं, यह लिखते हुए अत्यन्त दुख है। ऋषि बोधोत्सव के दिन २५ फर्वरी १९६० को हृदय की गति बन्द हो जाने से उनका देहान्त हुआ। वे स्पेशल ट्रेन लेकर टकारा जाने की योजना बना रहे थे, परन्तु अपनी धर्मपत्नी के अकस्मात रुग्ण हो जाने के कारण उन्हे यह यात्रा स्थगित करं

देनी पड़ी थी। किसी को क्या पता था कि ऋषि बोधोत्सव के पवित्र दिन वे महायात्रा करने वाले थे!

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अच्छे से अच्छे साहित्य के प्रकाशन द्वारा आर्यसमाज की बहुत बड़ी सेवा की। वे ही पहले पुस्तक प्रकाशक थे जिन्होने दयानन्द मथुरा शताब्दी के अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश का सस्ता सस्करण निकाल कर इस परम्परा को जन्म दिया और सहस्रों लाखो नर नारियो को सत्यार्थप्रकाश के पठन पाठन का, जो अधिक मूल्य होने के कारण उसके अध्ययन से वञ्चित रहते थे, अवसर प्रदान किया। वे ऋषि के परम भक्त थे। वे उसी साहित्य को प्राथमिकता देते थे जिससे ऋषि की विचारधारा पुष्ट और प्रचारित होती हो। आर्यसमाज के उत्तम साहित्य के सम्बन्ध में उनसे बहुमूल्य और अलभ्य जानकारी प्राप्त हुआ करती थी। इस समय उनकी योजना यह थी कि आर्यसमाज के उस साहित्य को पुनर्जीवित किया जाय जो लुप्त सा होता जा रहा है। मुख्यत अपने वेदप्रकाश के द्वारा वे इस यत्न मे सलग्न थे।

वे अपने पीछे एक पुत्र ३ पुत्रिया और पत्नी छोड गए है। इनका समस्त परिवार आर्य है।

श्री स्वर्गीय महाशय गोविन्दराम जी के स्वभाव और साहित्य के आलोचक भी है परन्तु आर्य समाज के प्रति उनके प्रेम की उनके मित्र और आलोचक सभी प्रशसा करते हैं।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवगत आत्मा को सद्गति और उनके परिवार को उनके महान् वियोग को सहन करने की क्षमता प्रदान करे।

श्री डाक्टर सुखदेव जी

श्री डाक्टर सुखदेव जी का २८ फर्वरी ६० को दिल्ली के इरविन हस्पताल में लम्बी बीमारी के पश्चात् देहान्त होगया। श्री डाक्टर महोदय बहुत पुराने आर्य और अनथक कार्यकर्त्ता थे। आर्यसमाज की सेवाका कार्य उन्होने स्व० श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज के सहयोग और साहाय्य से जिनके वे दामाद थे गुरुकुल कांगडी से प्रारम्भ किया था। दिल्ली मे बनिता विश्राम आश्रम के वे जन्म दाताओ में से थे। उन्होने इस सस्था को एक जीवित सस्था बनाने में कोई यत्न उठा न रखा था। उन दिनों विधर्मी और राज्य सरकार दोनों ही आर्य समाज की इस प्रकार की सस्थाओं को बडी टेढी और सन्देह की दृष्टि से देखते थे। हिन्दू देवियो की गुडों और आततायिओ से रक्षा कर उन्हे अच्छा और सम्मानित जीवन व्यतीत करने में समर्थ बनाने में स्व० डाक्टर साहब ने जो कार्य किया वह भुलाया नही जासकता। वे बडे निर्भीक और साहसी थे। अनेक अवसर आये जब कि उन्हे राज्य सरकार और विरोधियोका कोप भाजन बनना पडा परन्तु वे अपने काम में अडिग रहे। कराची की शान्ति देवी (असगरी बेगम) को उन्होने बनिता विश्रामआश्रम में ही सरक्षण प्रदान किया था। दलित भाइयो की सेवा का उनका रिकार्ड भी गौरव पूर्ण है। दिल्ली की दलितोद्धार सभा के वे बहुत दिनों तक प्रमुख सचालक रहे।

यद्यपि जीवन के सायकाल में उनकी जीवनधारा राजनैतिकक्षेत्र की ओर मोड ले चुकी थी और उनका अधिकाश समय देश और

कांग्रेस की सेवा में ही व्यतीत होता था तथापि वे आर्यसमाज और उसके कार्य को भुलाते न थे।

दिल्ली के कांग्रेसी क्षेत्रो में उनका अच्छा स्थान था। मृत्यु के समय उनकी आयु लगभग ८० वर्ष थी।

परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को सद्गति और उनके परिवार को शान्ति प्रदान करे।

श्री पं० शान्तिस्वरूप जी (हरदोई)

श्री प० शान्तिस्वरूपजी की मृत्यु से आर्यसमाज अपने एक परखे हुए कार्यकर्त्ता से वञ्चित हो गया है। श्री प० जी जन्म के मुसल्मान थे और आर्यससाज मे जब से आये तब से लेकर अन्त तक मनसा वाचा कर्मणा आर्यसमाज के ही होकर रहे। वे आर्यसमाज में इतने अधिक घुल मिल गये थे कि किसी को यह भी कल्पना नही हो सकती थी कि वे कभी मुसलमान रहे होगे। यह बात इस बात की सूचक थी कि वे आर्यसमाज में अपनी उन्नति और आर्य सिद्धान्तो के प्रति आकर्षण के कारण ही प्रविष्ट हुए थे न कि किसी पार्थिव कारण से। उनका उदाहरण आर्यसमाज के शुद्धि के इतिहास में मार्ग-दर्शक का कार्य करता रहेगा।

उन्होने सन १९२६ में शुद्ध हुए भाइयो की सहायतार्थ लगभग २३००) एकत्र करके सार्वदेशिक सभा मे जमा कराया था जिसके व्याज से अब तक शुद्ध हुए भाइयों के बच्चों की शिक्षा में सहायता दी जाती रही है। वे बड़े कर्मकांडी और आर्यसमाज के उच्चकोटि के उपदेशक थे। उनका कार्य क्षेत्र-राजनैतिक भी रहा। वे उत्तर प्रदेश की विधान सभा के वर्षों तक सदस्य रहे। उनके एक प्रतिद्वन्दी हिन्दू जमीदार ने उनके चुनाव को चुनौती दी और उनके चुनाव को इस आधार पर राजकीय न्यायालय से अवैध घोषित कराने का यत्न किया कि वे हिन्दू सीट से नही खडे हो सकते क्योकि वे जन्म के हिन्दू न थे। श्री प० जी ने इस चुनौती को स्वीकार कर अपना केस लडा और वे विजयी रहे। सार्वदेशिक सभा ने इस अभियोग मे उनकी हर प्रकार से सहायता की और उनकी शुद्धि को प्रमाणित किया।

धर्मपत्नी श्रीयुत घनश्यामसिंह जी गुप्त

यह लिखते हुए अत्यन्त दुख होता है कि श्रीयुत माननीय घनश्यामसिह जी गुप्त को इस मास-पत्नी वियोग का दुख सहन करना पडा। ७ मार्च ६० के प्रात ३॥ बजे नागपुर मेडीकल कालेज के हस्पताल में लम्बी बीमारी के पश्चात् उनका देहावसान हुआ। श्री गुप्तजी निरन्तर उनकी परिचर्या मे निरत रहे और मृत्यु के समय भी उनके पास थे। उनकी लम्बी बीमारी के कारण श्रीयुत गुप्त जी का इन दिनो ध्यान दो ही बातों पर केन्द्रित रहता था। धर्मशील पत्नी की रुग्णावस्था और हिन्दी आन्दोलन सम्बन्धी कार्य। कई अवसर आये जब कि उनकी रुग्णावस्था पर आर्यसमाज और हिन्दी आंदोलन के कार्य को प्रमुखता प्राप्त रही, यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। श्री गुप्तजी का जीवन आर्यसमाज के लिये एक देन है और उसमें उनकी धर्मपत्नी का विशेष योग रहा।

श्री गुप्त जी तथा उनके परिवार के प्रति

(शेष पृष्ठ ९६ में पर)

देव परोक्षप्रिय होते हैं

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर यह विचार मिलता है कि देवजन परोक्षप्रिय अथवा परोक्ष-काम और प्रत्यक्ष-द्विट् होते हैं। ब्राह्मणों की इस उक्ति में क्या रहस्य है—इस पर ही थोड़ा सा विचार यहां किया जाता है। यहा पर यह भी आवश्यक प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों से कुछ उद्धरण दिये जावें जिससे विचार करने में सरलता हो। तदर्थ निम्न वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—(१) यद्वेशाक्षरं नाक्षीयत तस्मादक्षयम्। अक्षयम् ह वै नामैतत्। तदक्षरमिति परोक्षमाचक्षते। जै० उ० १।२४।२, (२) स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्रि अग्रिह वै तमग्निरित्याचक्षते परोक्षम्॥ श० ६।१।१।११, (३) एतमिन्ध ँ सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण—श० १४।६।११।२, (४) दृष्टयो ह वै नाम ता इष्टय इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवा। तैत्तिरीय १।५।६। २,(५) तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वै तं मघवा-नित्याचक्षते परोऽक्षम्। शत०१४।१।१।१३॥ इत्यादि।

यहाँ पर प्रथम वाक्य में 'अक्षर' पद का स्पष्टी-करण करते हुए बतलाया गया है कि वह क्षय न होने से अक्षय है। परोऽक्ष में उसे ही अक्षर कहा जाता है। दूसरे वाक्य में पूर्व सृष्ट होने से अग्नि को अग्रि कहा गया है। अग्रि होने से परोऽक्ष में उसको अग्नि कहा जाता है। तीसरे वाक्य में 'इन्ध' को परोऽक्ष में इन्द्र कहा गया है। इसी प्रकार चतुर्थ और पंचम वाक्यों में क्रमशः 'दृष्टि' और मखवान् को परोऽक्ष में 'इष्टि' और 'मघवान्' बतलाया गया है। चतुर्थ वाक्य में अन्त में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि देव परोऽक्षप्रिय के सम होते हैं।

पुन ताण्ड्य २२।१०।३ में कहा गया है कि 'जो मनुष्यों का प्रत्यक्ष है वह देवों का परोऽक्ष है और जो मनुष्यों का परोक्ष है वह देवों का प्रत्यक्ष है। उसके वाक्य निम्न प्रकार है—यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षन्तद् देवाना परोऽक्षमथ यन्म-नुष्याणां परोक्षन्तद् देवाना प्रत्यक्षम्॥ ता० २२। १०।३। यहा पर ताण्ड्य के इस वचन ने स्पष्ट कर दिया कि देवों की दृष्टि परोक्ष और मनुष्यों की दृष्टि प्रत्यक्ष है।

मनुष्य योनि में ही देव भी हैं। परन्तु दृष्टि, कर्म, गुण और ज्ञान की दृष्टि से वे मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। जितेन्द्रियता आदि की दृष्टि से वे मनुष्यों से विशेष कहे जाते हैं। वस्तुत उत्कृष्टप्रज्ञ, जिते-न्द्रिय विद्वान् देव कहे गये है। इनकी दृष्टि सूक्ष्म हुआ करती है। प्रत्येक वस्तु को ये इसी सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। ये मानवों की दृष्टि की अव-हेलना कर उसका सर्वथा परित्याग करते हैं—ऐसा नहीं है। मानव दृष्टि का समादर करते हुए भी उससे आगे बढ़ कर वस्तु के अन्तस्तल में अव-गाहन करते हैं और रहस्य तक पहुंचते हैं।

शतपथ ब्राह्मण ७।२।१।७ में (यद्वै नास्ति तदलक्षणम्) कहा गया है कि "जो नहीं है वह अलक्षण है।" ब्राह्मण ने यहाँ पर एक दार्श-निक रहस्य का उद्घाटन किया है। संसार में विचार करते समय सत्ता-असत्ता अथवा सदसद् को दृष्टि में रख कर आगे बढ़ा जाता है। लक्षण

सदा भेदक हुआ करता है। अत: जो वस्तु एवं सत्ता है उसी में यह घटित होता है। अभाव एवं असत्ता में लक्षण स्वत: नहीं घटित होता है। कारण यह है कि उसमें कोई भेद नहीं। जब कभी अभाव का लक्षण किया जावेगा तब भाव को दृष्टि में रख कर ही किया जावेगा। यदि सत्ता न हो तो अभावमात्र का लक्षण नहीं हो सकेगा। वह अलक्षण होगा। किसी वस्तु के तत्त्व को जानने के लिए व्युत्पत्ति, निरुक्ति और लक्षण का प्रयोग किया जाता है। लक्षण तर्क विज्ञान का उद्भावक है। तर्क में प्रमाणों का एक महत्व का स्थान है। प्रमाणों में भी प्रत्यक्ष का एक विशेष स्थान है। चाहे वह ऐन्द्रियिक हो अथवा आत्मिक हो। मनुष्य किसी वस्तु को समझने में व्युत्पत्ति, निरुक्ति, लक्षण एवं प्रत्यक्ष आदि का प्रयोग करते हुए मानव सीमा का अतिक्रमण नहीं करता। उसकी परिधि में कई अवस्थाओं में उसे वस्तुतत्व तक अथवा रहस्य तक नहीं पहुंचने देती और वह उतना ही ज्ञान पाता है जितना उसके साधन उसे जताने में सहायक होते हैं। परन्तु देव कुशाग्र बुद्धि हैं, सूक्ष्म दृष्टि हैं अत: वे वस्तु के रहस्य में पहुंचते हैं और उसका उद्घाटन करते हैं। व्युत्पत्ति, निरुक्ति, लक्षण एवं प्रत्यक्ष में भी वे अव्यवहित दृष्टि से काम लेते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों और निरुक्ति की निरुक्तियों में इसका प्रमाण पदे-पदे मिलता है।

प्रत्यक्ष का अर्थ है—ज्ञानेन्द्रियों के प्रति होने वाला ज्ञान। अक्षमक्षं प्रति प्रत्यक्षम्। परोक्ष का अर्थ है भौतिक इन्द्रियों से परे। मनुष्य जब तक देव अथवा ऋषि नहीं बन जाता तब तक इन्द्रियों की सीमा से ऊपर नहीं उठ पाता है। वह प्रत्यक्ष करता है परन्तु इन्द्रियों की सीमा में रहते हुए। इन्द्रियाँ 'करण' हैं। यह करणत्व जब तक नष्ट न हो जावे और 'विकरणत्व' भाव प्राप्त न हो तब तक सूक्ष्मदृष्टिता प्राप्त नहीं होती है। देवों को विकरणत्व भाव प्राप्त होता है अत: वे सूक्ष्म दृष्टि होते हैं। मनुष्य का प्रत्यक्ष ज्ञान व्यवहारतः सविकल्पक और निर्विकल्पक होता है। परन्तु उसका यह निर्विकल्पक भी इन्द्रियों की सीमा में होने वाला निर्विकल्पक है। वह देवों के निर्विकल्पक के समान नहीं।

संसार में वस्तु में शब्द, ज्ञान और अर्थ मिला हुआ है। मनुष्य का प्रत्यक्ष इन तीनों से संकीर्ण है। 'घट' कहने पर घट शब्द, घट ज्ञान और घट अर्थ तीनों ही उसमें संकीर्ण पाये जाते हैं। मनुष्य इन तीनों का पृथक् २ प्रत्यक्ष नहीं कर पाता। परन्तु देव इन तीनों को पृथक् २ देखते हैं। मनुष्य के ज्ञान में देश, काल, अनुमान, स्मृति संश्लिष्ट हैं। परन्तु देव इन परिधियों से ऊपर हैं और वस्तु तत्व को देखते हैं। वे अक्ष=इन्द्रियों से परे भी देखते हैं। इसी लिये उनको परोऽक्षप्रिय कहा जाता है। मनुष्य प्रत्येक वस्तु में होने वाले धर्म, अवस्था और लक्षण को पूर्णत नहीं जान पाता। परन्तु देव उसे भली प्रकार जानते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि दृष्टि दो प्रकार की है—मानवी और दैवी। मानव की दृष्टि इन्द्रियों की अपेक्षा से होती है और उससे ऊपर नहीं उठती है। परन्तु देवों की दृष्टि इन्द्रियों के ऊपर उठी होती। वे इन्द्रियों की बिना अपेक्षा किये हुए भी आत्म दृष्टि के उत्कर्ष से वस्तु के तत्त्व पर पहुँचते हैं। मनुष्य इन्द्रियों में रमा है। उसके ज्ञान में भोग भी संमिश्रित है अत: उसका यह प्रत्यक्ष इन्द्रियजित्, वस्तुतत्वदर्शी देवों के लिए उसमें लिप्त न होने से परोक्ष है। तथा जो वस्तुतत्वदर्शन एवं आत्म तत्वदर्शन आदि इन्द्रियों की अपेक्षा से देखने वाले मनुष्यों के लिए परोक्ष है वह सूक्ष्म तत्वदर्शी अतीन्द्रिय तत्त्वद्रष्टा देवों के लिये प्रत्यक्ष है।

सत्यार्थ दर्पण की आलोचना

श्यामकिशोर आर्य सिद्धान्तशास्त्री

(अगस्त ५६ के अङ्क से आगे)

सत्यार्थ दर्पण की आलोचना

जैन —(पृ० ११, पंक्ति ४ से १० तक) जैनधर्म का यह सिद्धान्त है कि यह ससार अनादि काल से चला अनन्त काल तक चलो जायेगा, अर्थात् इसके प्रारम्भ का और अन्त होने का कोई भी समय नहीं है। इस प्रकार इसका कर्त्ता हर्ता कोई भी नहीं हो सकता। जो पदार्थ इसके अन्दर मौजूद हैं वे न तो किसी खास समय में पैदा ही हुए थे और न किसी समय में उनकी सत्ता ही मिट ही सकती है। हा कारणों के अनुसार उनकी हालतें अवश्य बदलती रहती हैं।

आर्य—मित्रवर आप संसार शब्द से क्या तात्पर्य लेते हैं ? यदि आप ससार को अनादि इस प्रकार बताते हैं कि घड़ा बनने से पूर्व मिट्टी (मूल कारण संसार का प्रकृति) है घड़े के साथ उसका आदि नहीं। घड़ा बनने पर भी मिट्टी है घड़ा नष्ट होने पर भी मिट्टी रहती है ऐसा तो ऋषि का भी सिद्धान्त है परन्तु घड़ा तो किसी के द्वारा बनाया जाता है जिसे आप भी स्वीकार करते हैं उसी प्रकार सृष्टि बनती बिगड़ती रहती है इसलिये यह भी बिना कर्त्ता के नहीं बन सकती। हालतें बदलना सिद्ध करता है कि कोई इसकी हालतें बदलता है क्योंकि इसमें स्वयं क्रिया नहीं है। अत घड़ा की भाति इसका कर्त्ता हर्ता अवश्य है।

जैन—(पृ० ११, पंक्ति ११ से १६ तक) जैन धर्म के सिवाय प्राय सभी धर्म जो कि ईश्वर को मानते हैं, ईश्वर को इस सृष्टि का बनाने वाला बतलाते हैं। इस मतभेद के कारण यद्यपि समय समय पर जैन धर्म को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा है, किन्तु फिर भी उसने अपने अटल सिद्धान्त को जो नहीं छोड़ा है यह उसके लिये कम महत्वदायक विषय है।

आर्य—जैन धर्म यदि ईश्वर को सृष्टि का बनाने वाला नहीं मानता तो क्या बना हुआ मानता है ? बनने वाला अपने बनाने वाले का ईश्वर नहीं हो सकता। संसर्ग होने से सृष्टि (System) कहाती है। संसार में संसर्ग इतना बुद्धिपूर्ण रूप से किसी के द्वारा ही हो सकता है अत संसर्गक सृष्टि का कर्त्ता हर्ता ईश्वर ही है।

जैन—(पृ०१२, पंक्ति ११-१५) सबसे पहले तो ऊपर के अनुमान में असिद्ध दोष आता है क्योंकि सूर्य, चन्द्र, नदी, जगल आदि पदार्थ आकाश के समान अनादि काल से चले आ रहे हैं, किसी भी प्रकार उनका किसी विशेष समय मे बनकर तैयार होना सिद्ध नहीं होता, अत उनमें कार्यत्व हेतु का अभाव है।

आर्य—आप हमें यह बतावें कि आप जंगल के व्यक्ति को अनादि मानते हैं या जंगल को अनादि काल से मानते हैं ? अर्थात् आप जंगल को क्या इस प्रकार मानते हैं ? जंगल के वृक्ष या वह भाग जिसे आप जंगल कहते है अथवा जंगल की जाति एक न एक स्थान पर तो होगी ही परन्तु यह नहीं कि एक स्थान पर जंगल है तो वहीं पर ही अनादि काल से जंगल काम है क्योंकि जंगल में आग लगकर काटकर समाप्त होसकते हैं; भूकम्प

आने से वहां पर समुद्र या झील पर्वत बन सकता है। अत व्यक्ति अनादि नहीं इसका कर्त्ता है अवश्य होना चाहिये। इसी प्रकार सूर्य चन्द्र नदी जंगल आदि जाति (प्रवाह) से तो अनादि है परन्तु व्यक्ति से कार्य हैं अत इसका कर्त्ता अवश्य है। भाई विवेक से विचारो।

जैन—(पृ० १२, पंक्ति १६-२१) जो कार्य होते हैं वे सशरीर कर्त्ता के बनाये हुए होते हैं, जैसे बड़ी मेज वगैरह आदि के बनाने वाले बढ़ई आदि। इसलिये जब पृथिवी आदि पदार्थ कार्य है तो उन का बनाने वाला भी सशरीर ही होना चाहिये। इस कार्यत्व हेतु की व्याप्ति (अविनाभाव सम्बन्ध) अशरीर ईश्वर के विरुद्ध सशरीर पुरुष के साथ सिद्ध होने से विरुद्ध दोष आता है।

आर्य—क्रिया का कर्त्ता तो चेतन है न कि शरीर। शरीर तो केवल उपकरण मात्र है। उसको कर्त्ता का स्थानापन्न नहीं माना जा सकता। आप ही विचारे यदि शरीर कर्त्ता होता तो वह मृत्यु के पश्चात् वही क्रिया क्यों नहीं करता। अत कर्त्ता तो चेतन है न कि शरीर।

जैन—(पृ० १२,पंक्ति २२-२४) जल बरसाना, घास उगना, भूकम्प होना आदि कार्य तो हैं किन्तु उनका कोई बुद्धिमान् कर्त्ता सिद्ध नहीं होता। इसलिए कार्यत्व विपक्ष में भी रहने से व्यभिचारी दोष आता है।

आर्य—बन्धु इस स्थान पर तो आपने स्पष्ट स्वीकार कर लिया कि इस सृष्टि का कर्त्ता (ईश्वर) है अब बुद्धिमान् है या नहीं इसके लिये अपना दोष उसको क्यों देते हैं। सोचेंगे तो जल बरसाने में भी बुद्धि का अद्भुत प्रमाण मिलेगा। किसी वैज्ञानिक से पूछिये वह भाप बनाने और पानी बनाने का विज्ञान बता देगा। इसी प्रकार से वैज्ञानिकों से पूंछिये भूकम्प या वर्षा आदि में बुद्धिमत्ता है या नहीं।

जैन—(पृ० १३, पंक्ति ४-८) ईश्वर ने जगत् को नहीं बनाया, क्योंकि वह चलन आदि क्रिया से शून्य है। जो किसी पदार्थ का बनाने वाला होता है वह क्रिया सहित होता है, ईश्वर क्रिया रहित है, क्योंकि वह सर्वव्यापक है। जो सर्वव्यापक होता है, उसमें चलन आदि क्रिया नहीं हो सकती; जैसे आकाश।

आर्य—ईश्वर सर्वव्यापक होने से स्वयं हलन चलन क्रिया से रहित है परन्तु हलाने चलाने आदि की क्रिया का उसमें अभाव नहीं है। (स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च) स्वभाव से ज्ञान बल और क्रिया वाला है। तदेजति—गति देता है, तन्नैजति—गति में नहीं आता क्योंकि सर्वव्यापक है अत आपका सारा तर्क गलत है।

जैन—(पृ० १३, पंक्ति ९-११) ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं क्योंकि वह निर्विकार है। जो किसी चीज को बनाता है वह विकार वाला होता है जैसे जुलाहा आदि।

आर्य—मित्रवर बनी हुई वस्तु में विकार होता है बनाने वाले में विकार नहीं होता। दूसरे शब्दों में विकार करने वाला विकृति नहीं होता। जैसे जिस व्यक्ति के सर पर डंडा मारा जायेगा उसी के सर तथा शरीर में विकार आयेगा नकि जो मारता है। अत ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है और निर्विकार है।

जैन—(पृ० १३, पंक्ति १२-१३) निराकार कर्त्ता से कोई साकार पदार्थ नहीं बन सकता। जैसे आकाश से।

आर्य—कर्त्ता के लिये चेतनता की जरूरत है। जिसमें चेतनता होगी वह क्रिया कर सकेगा। क्रिया का मूल कारण किसी चीज की सत्ता मात्र नहीं वरन् चेतनता है। ईश्वर में चेतनता है आकाश में नहीं है। भाई आप तो जीव को भी निराकार मानते हैं उसके द्वारा चीजों को बना मानते हैं या नहीं ?

जैन-(पृ० १३, पंक्ति १३-१६) सर्वज्ञाता ईश्वर

इस संसार का रचने वाला नहीं है, क्योंकि नास्तिक लोग, बकरी के गले में थन, गुलाब के पेड़ में कांटे बनाना तथा सोने में सुगन्धि न रखना, गन्ने पर फल, चन्दन पर पुष्प का न होना, सर्वज्ञ कर्त्ता का काम नहीं है।

आर्य—आप अपनी कहिये आपको नास्तिकों की ओर से वकालत करने की क्या आवश्यकता? और आप अभी सृष्टि कर्त्ता नहीं मान रहे थे परन्तु यहां प्रकरण से हट गये। वह सर्वज्ञ है या नहीं यह वाद का विषय है परन्तु सृष्टि कर्त्ता है। अत अब सर्वज्ञता के बारे में थोड़ा सोचें भला यदि सोने में सुगन्धि होती तो चोर से आप उसे बचा पाते? उसका गहना पहनते तो मधुमक्खी काट कर परेशान कर देती अत यह वह जानता था तभी उसने इसमें सुगन्ध नहीं दी।

जैन— पृ० १४, पंक्ति ३-८) ईश्वर ने जब कि संसार को बनाया तो ईश्वर को किसने बनाया? क्योंकि जिस प्रकार ससार को कार्य माना जाता है उसी प्रकार ईश्वर को भी क्यों नहीं? इसका उत्तर यदि यह दिया जाय कि ईश्वर को किसी ने नहीं बनाया तो आपके लिये भी यह उत्तर काफी है कि उसी प्रकार जगत् को भी किसी ने नहीं बनाया, ईश्वर के समान अनादि-निधन है।

आर्य—चीजों का कार्यत्व तो प्रत्यक्ष है क्योंकि हम उसका बनना बिगड़ना देखते हैं। ईश्वर जब तक कार्य सिद्ध न हो जाय उसके कर्त्ता का प्रश्न नहीं उठता। इसके लिये आप कोई दलील नहीं दे सकते। जिन पदार्थों को कर्त्ता आपने बताया है वे तो आपके और हमारे मत में भी कार्य हैं।

जैन—(पृ० १४, पंक्ति १० से १६ तक) कारण का कारण नहीं होता है यह स्वामी जी का उत्तर माना जाय तो भी ठीक नहीं, क्योंकि यह नियम केवल उपादान कारण के लिये है तदनुसार परमाणु रूप प्रकृति का कोई अन्य कारण नहीं हो सकता किन्तु निमित्त कारण रूप ईश्वर की उत्पत्ति के लिये तो कारण होना आवश्यक है, जैसे घड़े के निमित्त कारण कुम्हार, कुम्हार के कारण उसके माता पिता। इसलिये या तो ईश्वर को उत्पन्न करने वाला कोई कारण होना चाहिये अथवा जीव और प्रकृति के समान इस सृष्टि को अनादि मानना आवश्यक है।

आर्य—बधुवर आप प्रयत्न में सफल नहीं रहे, एक ही बात का बार २ दुहरा रहे हैं। भाई कारण कोई हो उसका कोई कारण नहीं होता जिसका कारण होगा वह तो कार्य होगा। यह सम्भव है हम आप जिसे कारण समझते हैं वह कार्य हो परन्तु विचार करने पर उसका भी कारण मिल जाय परन्तु कारण का कारण नहीं होता चाहे वह निमित्त हो या उपादान कारण। कुम्हार तो स्वयं कार्य है क्योंकि वह तो सृष्टि का अंग है और नष्ट हो जायेगा घड़ा भी बनता और नष्ट हो जाता है। उसी कारण सृष्टि कार्य है प्रकृति उपादान कारण, ईश्वर निमित्त कारण और जीवात्मा साधारण कारण ये तीनों अनादि हैं न कि सृष्टि। कुम्हार का शरीर सयोग से बना है नष्ट होगा परन्तु कारण जीवात्मा न पैदा होता है न नष्ट होता है अनादि है वही कर्त्ता है घड़े का, न कि शरीर अत स्वामी जी का उत्तर बिल्कुल ठीक है आपने गलत समझा है।

[क्रमश]

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

(आर्य समाज का १०वा नियम)

तिब्बत और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध

डा० शारदा रानी एम० ए०, डि० लिट्०

[गताक से आगे]

भोट देश में बौद्ध धर्म ७ वीं शताब्दी में प्रविष्ट हुआ। कई शताब्दी तक इसकी प्रगति मन्द रही। भोट भाषा मौखिक भाषा थी। इसका लिखित रूप कोई न था। धर्म के प्रवेश से जन जीवन में नई स्फूर्ति और नई जागृति आई और धर्म की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की आवश्यकता पड़ी। थोन्मि सम्भोट ने भारत से नागरी लिपि का पूर्व रूप भोट भाषा को प्रदान किया और व्याकरण बना कर इसे सुगठित किया। अनुवाद परम्परा भी यहीं से आरम्भ हुई। दुर्गम और अज्ञात देश होने से भोट भाषा की साहित्य-समृद्धि को कोई नहीं जानता। किन्तु यह गौरव का विषय है कि भोट साहित्य संसार के किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकता है। छपाई की कला यहां बहुत प्राचीन है। लकडी पर उल्टा खोद कर मुद्रण की प्रथा चली आ रही है। जितनी बडी पुस्तक छापनी होती है उतने बडे लकडी के पट्टे को लेकर अक्षर उल्टे खोद लेते हैं। जब पूरा पट खुद जाता है तब उस पर काली मसी लगा कर पत्र रख देते हैं और ऊपर से बेलन चला देते हैं। पुस्तक में जितने पृष्ठ होते हैं उतने ही मुद्रण पट होते हैं। मुद्रणालय में ये अनन्त पट क्रम से लगे रहते हैं। पोतल प्रासाद के नीचे शोपाखाङ् मुद्रणालय भी ऐसे पटों से भरा है। प्राय: सभी बडे विहारों में छापने की व्यवस्था रहती है। प्रत्येक पुस्तक विशेष रूप से छापी जाती है। पुस्तक छप जाने पर मुद्रण पट उठा कर रख देते हैं। फिर यदि कोई पाठक आये तो उसे अपना पत्र लाना पडता है। मसी और छापने वाले का व्यय उसे देना पडता है। तब उसके लिए कुछ दिनों में पुस्तक छप जाती है। ये भोट पुस्तकें भारतवर्ष की पोथियो के समान होती हैं। प्रत्येक पन्ना पृथक् २ होता है। प्रारम्भ और अन्त में उसी परिमाण का एक २ लकडी का पट लगा रहता है, जिससे पुस्तक को दोनो ओर से सहारा रहता है। ऊपर से पीत अथवा लाल कौशेय में पुस्तक कस कर लपेट दी जाती है। पुस्तक का पत्र भी हाथ से बना होता है। यह घास इत्यादि को कूटकर बनाया जाता है। इस पत्र में घास के स्वाभाविक तन्तु भी दिखाई देते रहते हैं। यह पर्याप्त मोटा है। तिब्बत का पत्र शताब्दियो तक जीर्ण नहीं होता।

बुद्ध के मुख से निकले सूत्र अथवा प्रवचन कजूर नामक बृहत् ग्रन्थमाला में संगृहीत हैं। उन पर टीकाएं तजूर ग्रन्थमाला में हैं। प्रत्येक विहार और मन्दिर में कजूर और तजूर ग्रन्थमालाएं अवश्य होती हैं और लोग इनकी पूजा बडी श्रद्धा और भक्ति से करते हैं। कजूर कई स्थानों पर छपा है। सब से पहले नार्थाङ् संस्करण छपा। देर्गे, चोनी, पेकिङ्, उर्गा,

बुर्यात्, इत्यादि के संस्करण काष्ठ पटों से छापे गये हैं। तजूर के नार्थाङ्, देर्गे, पेकिङ् और चोनी आदि संस्करण भी काष्ठ पटो से छापे गये हैं। कजूर में १०८ भाग हैं और तजूर में २२५ भाग है। प्रत्येक भाग में एक २ सहस्र पृष्ठ हैं। कजूर के विषय–विनय, प्रज्ञापारमिता, रत्नकूट, अवतसक, सूत्र और तन्त्र हैं। तजूर के विषय हैं––धारणी, स्तोत्र, तन्त्र, प्रज्ञापारमिता, मध्यमक, सूत्र, योगाचार, अभिधर्म, विनय, जातक,पत्र, न्यायशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, रसायनशास्त्र, नीति, दीपक श्रीज्ञान अतीश की कृतिया आदि। प्रत्येक पुस्तक के प्रारम्भ में सस्कृत में ग्रन्थ का नाम लिखा रहता है। पुस्तक के अन्त में यह भी दिया रहता है कि यह सस्कृत के अमुक पण्डित और अमुक भोट लोत्सावा (अनुवादक) ने भोट भाषा में अनुवाद किया है। सस्कृत के वे ग्रन्थ जो भारत मे नष्ट हो गये भोट देश में अनुवाद रूप में सुरक्षित हैं। नालन्दा, ओदन्तपुरी, विक्रमशिला के पुस्तकालयोसे ले जाए गए बहुत से अमूल्य ग्रन्थ आज भोट भाषा में अनूदित हैं। यदि हम उनका मूल रूप जानना चाहते हैं तो हम पुन भोट सस्कृत कोष की सहायता से उनका छाया अनुवाद करके मूल रूप देख सकते हैं। केवल बौद्ध ग्रन्थो के अनुवाद ही नहीं हुए किन्तु अन्य ग्रन्थ भी भोट में अनुवाद किये गए, जैसे—मेघदूत, काव्यादर्श, छन्दोरत्नाकर, वृत्तमाला-स्तुति, पाणिनिसूत्र और उन पर रामचन्द्र की वृत्ति, प्रक्रियाकौमुदी, चान्द्रव्याकरण, कलापव्याकरण, सारस्वत व्याकरण, चाणक्य राजनीतिशास्त्र, आर्याकोष, सुभाषित रत्नकरण्ड, अमरकोष, कामधेनु टीका, मुक्तावली अथवा विश्वलोचन अभिधान शास्त्र, आयुर्वेद का आधारभूत ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय टीका सहित, अश्वायुर्वेद, प्रतिमामानलक्षण, सर्वेश्वररसायन इत्यादि। कजूर तजूर के अतिरिक्त भोट में स्वतन्त्र रूपसे बहुत से ग्रन्थ लिखे गये। भोट भाषा में लिखे गये इतिहास ग्रन्थ भारत के लुप्त ऐतिहासिक अध्यायो के लिए अत्यन्त आवश्यक परिशिष्ट हैं। भोट निवासी इतिहास लिखने में पटु हैं। भारत सम्बन्धी कई इतिहास यहाँ विद्यमान है। भोट देश में एक परम्परा अच्छी है कि यहा प्रत्येक लेखक के ग्रन्थों का सग्रह कर दिया जाता है और उसे उस लेखक का सुम्बुम कहते हैं। जैसे हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समस्त रचनाओ का सग्रह एक माला मे कर दे तो उसे रवी द्रनाथ ठाकुर का सुम्बुम कहेगे। भोट देश में बडे२ लेखको के ४००-५०० सुम्बुम विद्यमान है, जैसे—बूतोन का सुम्बुम, चोखापा का सुम्बुम (इसके मूल आज भी गाडड् विहार मे सुरक्षित है) पाचवें दलाई लामा का सुम्बुम।

भोट साहित्य के कुछ वर्णन के साथ-साथ भोट भाषा की अन्तर्राष्ट्रीयता का वर्णन अनुचित न होगा। जैसे योरोपीय देशो के लिए लेटिन ग्रीक हैं उसी प्रकार उत्तरी एशिया के लिए सस्कृत और भोट आवश्यक भाषाए थीं। भोट का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। भोट लामा तथा भारतोय पण्डित उत्तर में साइबेरिया तक पहुँचते थे। घोडा ही आवागमन का साधन था। चीन के विहारों में भी भोट कजूर का पाठ होता था। मचूरिया में विहार भोट देश के आधार पर बने थे, वहां की धर्म भाषा भोट थी। मचूरिया में तो सस्कृत धारणी, स्तोत्र,

बीजमन्त्र भोट-लिपि में लिखे हुए आज भी विहारों में पढ़े जाते हैं। मन्चूरिया में वैदिक गायत्री मन्त्र का पाठ होता रहा है। आभ्यन्तर मोंगोल देश में सभी लामा भोट द्वारा ही पूजा विधि सम्पन्न करते हैं। बाह्य मोंगोल में भोट भाषा के अध्ययन, अध्यापन की परम्परा आज तक विद्यमान है। यहां के विहारों और मन्दिरों में स्थान २ पर भोट भाषा मे धारणी और मन्त्र लिखे हुए हैं। सारे मध्य एशिया में बुर्यात्, मोंगोल, काल्मुक मोंगोल तथा साइबेरिया, चीन के सिनिक्याङ् प्रान्त तथा भारतीय प्रदेशो में, लद्दाख, सिक्किम, भूटान में भोट धर्म भाषा रही है। योरोप में जहा भी बौद्ध मन्दिर हैं वहां भोट भाषा सुनी जा सकती है। भारत के उत्तरी सीमाक्षेत्रों में भोट भाषा बोली जाती है। इतनी व्यापक भाषा होने के कारण इसका साहित्य भी बहुत विशाल है। भोट से मोंगोल और मांचू भाषाओं में अनेक अनुवाद हुए हैं। मोंगोल विद्वानो ने भोट भाषा में अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से बहुत से तो अभी सूची पत्र न बनने के कारण अज्ञात हैं। मोंगोल देश की राजधानी उलानबातर के राजकीय पुस्तकालय में एक लाख भोट ग्रन्थ हैं और न जाने कितने अमूल्य ग्रन्थ वहा और मिलेगे। पेकिङ् का राजकीय पुस्तकालय भोट साहित्य में बहुत समृद्ध है। रूस में लेनिनग्राड की प्राच्य संस्था में भोट साहित्य के अनन्त अमूल्य रत्न सुरक्षित हैं। इसी प्रकार सारे पाश्चात्य देशो में कुछ न कुछ भोट साहित्य है। कुछ पुस्तके दिल्ली, बनारस, पटना, कलकत्ता, शान्तिनिकेतन, मद्रास के पुस्तकालयों में हैं। दिल्ली स्थित सरस्वती-विहार संस्था में भोट भाषा का अनुपम तथा दुर्लभ साहित्य सुरक्षित है। इसमें कञ्जूर तञ्जूर के कई संस्करणों के अतिरिक्त अन्य भोट साहित्य भी है। इस संस्था का ध्येय भोट साहित्य का सम्पादन करके प्रकाशित करना है। जहां संस्कृत मूल प्राप्त हैं वहा उन्हें भी भोट के साथ साथ दिया जाता है। यदि वह पुस्तक मोंगोल भाषा और चीनी में भी मिलती है तो उसको भी साथ साथ रखा जाता है तथा उनके सब संस्करणो से पाठान्तर दिए जाते हैं। यह कार्य अनुसंधान प्रक्रिया का उच्चतम शिखर है। इससे भोट साहित्य के उत्कृष्टतम रूप को संसार में सब लोग जान सकेगे। इन भोट पुस्तकों को छापने के लिए बड़े परिश्रम से भोट मुद्राक्षर बनाए गए है। एक एक अक्षर को जोड़ कर भोट पंक्तियों का नियोजन होता है। मुद्रणालय में विशेष लोग सिखाने पड़ते हैं। आचार्य रघुवीर जी की अध्यक्षता में यह कार्य नित्य नई प्रगति पर है। वे इसी कार्य में प्रात से रात्रि तक अनवरत लगे रहते हैं। आजकल आप मञ्जुश्री नामसंगीति नामक ग्रन्थ भोट, मोंगोल, संस्कृत में छाप रहे हैं। भोट और मोंगोल भाषाए अपनी मूल लिपि में हैं। मोंगोल भाषा के मूल अक्षर भी अत्यधिक परिश्रम से आचार्य जी ने बनवाए हैं।

जिन भोट ग्रन्थों के संस्कृत मूल नही मिलते उनकी छाया बनाने के लिये एक बृहत् भोट-संस्कृत-कोष का निर्माण आचार्य जी के सुपुत्र डा० लोकेशचन्द्र जी कर रहे हैं। इन्होंने भोट, चीनी, जापानी बाल्यावस्था से अध्ययन की है और भोट कोष निर्माण के लिए अनेक सुदूर देशों की यात्रा की है। ये मोंगोल देश

तिथि और नक्षत्रों के देवता

शिवदयालु

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने संस्कार-विधि के अन्तर्गत नामकरण प्रकरण में तिथि तथा नक्षत्रों के देवताओं का वर्णन किया है और तिथि तथा नक्षत्र के साथ उनके देवताओं के नाम से आहुति देने का भी विधान किया है।

वेद मन्त्रों के साथ जो देवताओं का विधान किया गया है उसकी संगति तो देवता से तात्पर्य मन्त्र के विषय से है, इसके द्वारा हो जाती है किन्तु तिथि और नक्षत्रों के देवताओं के सम्बन्ध में वह संगति लगती प्रतीत नहीं होती।

क्या तिथि और नक्षत्रों के यह प्रचलित देवता वैदिक हैं यह भी विचारणीय है। ऋग्वेद में द्यु स्थानी देवताओं की सूची में विष्णु, भग, अर्यमन्, सवितृ, मित्र, वरुण, पूषन् की गणना है जो क्रमश तृतीया तिथि एवं श्रवण नक्षत्र पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, अनुराधा, शतभिषज् तथा रेवती नक्षत्रों के देवता कल्पित किये गये हैं।

अन्तरिक्ष स्थानी देवताओं में रुद्र(शिव), वायु, इन्द्र, आप्, अज-एकपात्, अहिर्बुध्न्य की गणना की गई है। जो क्रमश: एकादशी तिथि व आर्द्रा-नक्षत्र, द्वादशी तिथि व स्वाति नक्षत्र, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, नक्षत्रों के देवता कल्पित किये गये हैं।

पृथ्वीस्थानीय देवताओं में सोम, अग्नि, बृहस्पति की गणना की गई है जो क्रमश पंचमी तिथि व मार्गशीर्ष नक्षत्र, कृत्तिका एवं पुष्य नक्षत्रों के देवता कल्पित किये गये हैं।

पुनर्वसु नक्षत्र का देवता अदिति है जो स्त्री है। तथा द्वितीया तिथि का देवता त्वष्टा भाव वाचक देव माना जाता है। इसी प्रकार विश्वेदेवा जो अमावस्या के देवता हैं वे अनेक हैं एक

की राजधानी उलानबातर से अनेक अज्ञात भोट ग्रन्थो का सूचीपत्र बनाकर लाए है। रूस, चेकोस्लोवाकिया, स्विटजरलैण्ड, फ्रास, इटली, इगलैण्ड, जर्मनी आदि का भ्रमण भी इन्होने इसी कोष के निर्माण के लिये किया है। जो ग्रन्थ कठिन शब्दावली के कारण आजतक अनुवाद नहीं हुए थे वे इसकी सहायता से अनुवाद हो जायेंगे। भोट-भाषा की अभिव्यक्ति सस्कृत के आधार पर है। इसलिए प्रत्येक भोट शब्द का सस्कृत पर्याय सुनिश्चित है। वही सुनिश्चित शब्द निर्देशो सहित इस कोष मे रखा गया है। इस कोष में दो लाख शब्द होगे। देवी देवताओं के रगीन चित्र भी मूल से छापे गए हैं। इसके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं, तथा अन्य भाग क्रमश छप रहे हैं। आचार्य रघुवीर जी के सरस्वती-विहार की इस देन से भोट अध्ययन के लिए नई दिशाएं खुल जाएगी।

आज हम भारतीयो का कर्तव्य है कि हम जिस प्रकार फ्रेंच, जर्मन, अग्रेजी पढने के लिए लालायित रहते हैं उसी प्रकार अपने इस सुहृद् देश की भाषा का अध्ययन करने के लिये कटिबद्ध होजाए। भोट तो उन योरोपीय भाषाओ की अपेक्षा कही अधिक सरल है। लिपि अपनी नागरी की जननी समझ लीजिए। हम भारतीय अपने अतीत के नष्ट किये गये इतिहास के अमूल्य अध्यायो का पुन दिग्दर्शन् कर सकेंगे। भोट साहित्य रूपी मानव को भारत की रक्त-वाहिनी नाडिया सिंचित कर रही हैं उसका हृदय भारत के रक्त से सचालित है। उसका बाह्य रूप हम से चाहें कितना भी भिन्न क्यों न हो किन्तु अन्त स्थल तो एक है, मन एक है, हृदय एक है, विचार परम्परा एक है, उपमा, अलकार, छन्द एक है, काव्य शैली एक है, सब कुछ तो एक है। भगवान् इस ऐक्य को अमर रखे। (समाप्त)

नहीं और अनिरुक्त हैं। रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति (ब्रह्म) और मूल नक्षत्र का देवता निर्ऋति (राक्षस) भी भाववाचक ही माने जाते हैं।

विशाखा नक्षत्र का देवता चन्द्राग्नि है अर्थात् चन्द्र और अग्नि दो सम्मिलित देवता हैं। इस युगल का वर्णन वेद में उपलब्ध नहीं। हां इन्द्राग्नि का वर्णन अवश्य है।

अष्टमी तिथि तथा धनिष्ठा नक्षत्र का देवता वसु है। सख्या में ८ है। आश्लेषा नक्षत्र का देवता सर्प कल्पित किया गया है जिसकी गणना निर्ऋति (राक्षस) की भाति कहीं भी वेद में देवताओं में नहीं की गई है। इसी प्रकार यहा कुमार, मुनि, काम, पितर, आदि की भी गणना देवताओं में की गई है जो विचारणीय है।

वैदिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत तो इन कल्पित विग्रहवान् देवताओं को स्थान ही नहीं है। यह सब देवता वाचक शब्द प्राय या तो प्रधान रूप से ब्रह्म के वाचक हैं या विशेष भौतिक तत्वों एवं शक्तियों के बोधक हैं। अत यह एक अनुसन्धान का विषय है कि अमुक तिथि वा नक्षत्र के साथ देवता रूप में अमुक २ की आहुति क्यों दी जाये।

सर्प तथा निर्ऋति (राक्षस) को देवता मानने में क्या प्रयोजन है यह भी विचारणीय है।

गृह्य सूत्रों के अन्तर्गत नक्षत्रों के सम्बन्ध में शुभाशुभ की कल्पना विद्यमान है। संस्कारविधि में उद्धृत निम्न सूत्रों से यह बात सर्वथा स्पष्ट है —

उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः ॥१॥

—आश्वलायन

अर्थात्—उत्तरायण शुक्लपक्ष पुण्य नक्षत्र में चूडाकर्म, उपनयन, गोदान तथा विवाह संस्कार किये जाने चाहियें।

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥२॥ —गोभिल

अर्थात्—पुण्य नक्षत्र में विवाह संस्कार करना चाहिये।

स्वामी जी महाराज ने विवाह प्रकरण में इन-सूत्रों को उद्धृत किया है किन्तु व्याख्या करते हुए पुण्य नक्षत्र से तात्पर्य प्रसन्नता का दिन अर्थ किया गया है वास्तव में पुण्य नक्षत्र का यह अर्थ नहीं है। क्योंकि स्वामी जी महाराज को नक्षत्रों में शुभाशुभ की कल्पना अभीष्ट ही नहीं है, अत उन्होंने स्वतन्त्रता पूर्वक यह अपना मत व्यक्त किया है। स्वामी जी स्वय महान् आचार्य थे। वह पूर्व आचार्यों से सर्वाङ्ग में सहमत हों यह आवश्यक भी नहीं है। फलित ज्यौतिषाचार्यों ने अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषज्, उत्तरा भाद्रपद तथा रेवती नक्षत्रों को शुभ माना है। श्रवण को वृद्धिकारक कहा है। कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, पूर्वा फाल्गुनी, विशाखा तथा पूर्वा भाद्रपद को अशुभ कहा है। भरणी को नाशक, मघा को शोकद, मूल नक्षत्र को क्षय कारक और पूर्वाषाढ़ एव उत्तराषाढ़ को हानिकारक माना है। यह मान्यता सर्वथा अवैदिक है। अत इन नक्षत्रों के आधार पर लगन मुहूर्त का विचार करना भी भ्रान्त धारणा है।

नक्षत्रों के स्वामी अर्थात् देवता, उनकी जाति, मुख आदि की कल्पना भी शुभाशुभ कल्पना की भाति सर्वथा भ्रान्त है और त्याज्य है। तथा कथित अशुभ नक्षत्रों में जन्मादि होने के कारण नाना प्रकार के दान पुण्य का विधान और नक्षत्र के अशुभ प्रभाव का मार्जन ठग विद्या से भिन्न कुछ नहीं प्रतीत होता।

अत नामकरण सस्कार में तिथि और नक्षत्र देवता के नाम से आहुति देना भी कोई महत्व नहीं रखता। आर्य विद्वानों को इस दिशा में विशेष विचार करना चाहिये।

❀

महर्षि दयानन्द का समाज सुधार

रत्नसिंह एम० ए०

संसार के अन्य देशों की भांति भारतवर्ष में भी समय समय पर महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहा है, जिन्होंने अपने अपने ढंग से मानव के अंग विशेष को लेकर उस दिशा में अद्‌भुत क्रांति उत्पन्न की। परन्तु जीवन की सर्वांगीण उन्नति का जो मार्ग युग प्रवर्तक, महान् समाज-सुधारक, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रदर्शित किया वह सर्वथा अनुपम है।

महर्षि दयानन्द का जन्म सौराष्ट्र प्रान्त में मौरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा नामक ग्राम में संवत् १८८१ विक्रमी में हुआ था। १३ वर्ष की अल्पायु में शिवरात्रि के दिन उनके जीवन में एक ऐसी घटना हुई जिससे सच्चे शिव के दर्शन करने तथा अपना घर परित्याग करने के लिये उन्हें प्रेरित किया। और इसी प्रेरणा के आधार पर २२ वर्ष की आयु में उन्होंने सदा के लिये अपना घर त्याग दिया। तदनन्तर लगभग १७ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् संवत १६२० में उन्होंने सार्वजनिक सेवा कार्य में पदार्पण किया।

महर्षि दयानन्द द्वारा उपस्थित किये गये सामाजिक सुधारों में प्रथम और मुख्य स्थान जड़ पूजा के खंडन का है। १३ वर्ष की आयु होने पर शिवरात्रि की घोर अंधियारी में शिव लिंग के ऊपर चूहों को दौड़ते व चावल भक्षण करते देख दयानन्द के हृदय में मूर्ति पूजा के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो चुका था। अतएव उन्होंने जड़ पूजा के स्थान में निराकार सर्व व्यापक परमेश्वर की उपासना का मार्ग बतलाया।

महर्षि दयानन्द का दूसरा सामाजिक सुधार समकालीन साधु संन्यासियों में वर्तमान बुराइयों को दूर करना है। संवत् १६२४ में दयानन्द हरिद्वार में होने वाले भारतवर्ष के प्रसिद्ध कुम्भ मेले में प्रचारार्थ जा पहुंचे वहां उपस्थित विशाल जन समुदाय को बहुत निकट से देखकर वे इस परिणाम पर पहुंचे कि जनता अंधकार में ग्रस्त है। अपने को त्यागी, तपस्वी कहने वाले तथाकथित साधु सन्यासी काम और लोभ दोनों में बुरी तरह फंसे हैं। ऐसा कौनसा दुर्व्यसन है जिसका इन नाम के महात्माओं में सर्वथा अभाव हो? इन महात्माओं ने जनता को अज्ञान में फंसाकर उन्हें अकर्मण्यता का उपदेश देकर धोखे से उनका धन हड़प कर स्वार्थ पूर्ति करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ है। आर्य (हिन्दू) जाति के इन धर्म ठेकेदारों की दुरवस्था को देखकर दयानन्द का हृदय रो पड़ा। उन्होंने वहीं पाखंड खंडिनी पताका गाड़कर पाखंड के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

इसी के साथ महर्षि दयानन्द ने साधु संन्यासियों सम्बन्धी समस्या पर बड़ी गम्भीरता से विचार कर अपना स्पष्ट मत प्रगट किया कि संन्यासियों को जन सेवा के पवित्र कार्य से किसी भी अवस्था में उपरत नहीं होना चाहिए। वे इनके बारे में लिखते हैं, "जब गृहस्थों से अन्न वस्त्रादि लेते हैं और उनका प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या

आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से प्राप्त।

वे महापापी नहीं होंगे" ? जैसे आंखों से देखना, कान से सुनना न हो तो आख और कान का होना व्यर्थ है। वैसे ही जो सन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्य शास्त्रों का विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भार रूप हैं।"

छुआछूत को दूर करने का भी महर्षि दयानन्द ने भरसक प्रयत्न किया। हमारे देश में यह रोग बहुत व्यापक रहा है। यह कौनसा अमानुषिक व्यवहार है जो अपने को उच्च कहने वाले लोगों ने शूद्रों के प्रति नहीं किया। जो लोग कुत्तों को गोदी में बिठाते हैं, बैल भैंस व बकरी का स्पर्श करते हैं पशु को मारकर उसका मांस स्पर्श करते हैं और उसे खाते भी हैं वे ही कुछ मनुष्यों को अछूत समझें उनसे दूर भागा करें, यह कितना अन्याय है। इतना ही नहीं शिक्षा के मौलिक अधिकार से भी कुछ समय पूर्व तक उन्हें वंचित किया हुआ था। अब से सौ वर्ष पूर्व तो स्थिति और भी अधिक खराब थी। इस कुरीति की तरफ भी महर्षि दयानन्द का ध्यान गया। उनकी दृष्टि में इसका मूल कारण ,जन्म गत जात पांत का मानना है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति चाहे निरा काला अक्षर भैंस बराबर रहे परन्तु वह फिर भी श्रेष्ठ और सम्मान का पात्र समझा जाता है जबकि शूद्र कुलोत्पन्न विद्वान् सदाचारी व्यक्ति को केवल तिरस्कार, अपमान व घृणा का अधिकारी घोषित किया जाता है। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है। महर्षि दयानन्द ने इस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रबल प्रचार किया। शूद्रों को शिक्षा का अधिकार देने के वे कट्टर समर्थक थे। इस सम्बंध में वे लिखते हैं जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिये हैं। जन्म गत जात पांत के स्थान में गुण कर्मानुसार वर्ण का समर्थन करते हुए उन्होने लिखा है जिस पुरुष में जिस जिस वर्ण के गुण कर्म हों उसको उस वर्ण का अधिकार देना ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नति-

इन सुधारों के अतिरिक्त महर्षि दयानंद ने स्त्री सुधार की दिशा में भी प्रशसनीय कार्य किया है। यह निर्विवाद है कि पारिवारिक स्थिरता के लिये गाड़ी के दो पहियों की भांति स्त्री और पुरुष दोनों का बराबर योग रहना चाहिए। परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि पुरुष की भांति स्त्री को भी अपना बौद्धिक विकास करने के लिये शिक्षा आदि के समान अधिकार प्राप्त हों। न जाने क्यों प्राचीन समय में एक विद्वान् ने यह कह दिया कि नारी नरक का द्वार है। सम्भवतः ऐसा कहते हुए वह विद्वान् यह भूल गया कि अपनी माता भी नारी होती है। नारी के प्रति इस विचार धारा का प्रभाव यह हुआ कि स्त्री जाति को समाज मे इस दृष्टि से देखा जाने लगा और उससे उसका शिक्षा का मौलिक अधिकार छीन लिया गया। महर्षि दयानंद ने इस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हुए स्पष्ट घोषणा की कि पुरुष के समान स्त्री को भी समस्त वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण किया और उत्तम शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। स्त्री शिक्षा को पारिवारिक सुख के लिये अत्यावश्यक समझते हुए महर्षि लिखते हैं भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान हो तो नित्य प्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहां है।

बाल विवाह आदि अन्य अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में भी महर्षि दयानंद का योग कम नहीं। उनके द्वारा किये गये इन समाज सुधारों पर विचार करते हुए कितने ही व्यक्तियों पर यह प्रभाव पड़ जाता है कि महर्षि दयानंद ने समस्त सामाजिक सुधार केवल हिंदू जाति के हितार्थ किये और इसी आधार पर वे उनको केवल हिंदू जाति का रक्षक कह देते हैं। परन्तु यह समझना सरासर भूल है। दयानन्द का लक्ष्य केवल हिंदू जाति का उपकार न कर मानवमात्रका,जिसके अन्तर्गत ईसाई और मुस-

आर्यसमाज और राजनीति

जोरावरसिंह आर्योपदेशक

पिछले दिनों आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब ने एक प्रस्ताव पास करके आर्य समाज के मंच से राजनैतिक संस्थाओं के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगाकर आर्यसमाज की उसी पुरानी नीति को दुहराया है जिसे आर्यसमाज अपने जन्म काल से अपनाये हुए है तथा समय २ पर जिसे सार्वदेशिक व प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएं प्रचारित करती रही हैं। प्रश्न यह उठता है कि जब आर्यसमाज प्रारम्भ से ही राजनैतिक नहीं वरन् धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में कार्य करता आ रहा है तो उसे इस प्रकार के प्रस्ताव की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका उत्तर स्पष्ट है कि कुछ राजनैतिक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति आर्य समाज की वेदी से किसी राजनैतिक संस्था के विचारों का प्रचार करते हैं और साथ ही यह भी प्रयत्न करते हैं कि आर्यसमाज एक राजनैतिक संस्था बन जाय। परन्तु आर्य समाज के महान् उद्देश्यों को समझने वाले और उसे सही दिशा में ले जाने वाले उसके हितैषी नेता आर्य समाज के राजनीति में भाग लेने अथवा उसके मंच को किसी राजनैतिक संस्था के प्रचार के लिये उपयोग करने के एक दम विरुद्ध हैं और इसी लिये उसकी शिरोमणि संस्थाओं को समय २ पर ऐसे प्रस्ताव पास करके जनता का मार्ग दर्शन करना पड़ता है।

न तो राजनीति कोई बुरी चीज है और न राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा ही। जिसप्रकार मुसलमान, ईसाइयों व अन्य धर्मावलम्बियों को किसीभी राजनैतिक दल में भाग लेने की छूट है उसी प्रकार आर्य समाजियों को भी इस बात की छूट है कि वे किसी भी ऐसी राजनैतिक पार्टी में सम्मिलित हो सकते हैं, जिसमें उनके धार्मिक विचारों पर आपत्ति व प्रतिबन्ध न हो। मेरी सम्मति में ईश्वर व धर्म पर आपत्ति उठाने वाले साम्यवादियों को छोड़कर अन्य सभी राजनैतिक दलों में आर्यसमाजी सम्मिलित हो सकते हैं और आज भी कॉंग्रेस, समाजवादी, जन संघ व हिन्दू सभा सभी राजनैतिक दलों में थोड़े और बहुत आर्य समाजी हैं। जिस प्रकार एक राजनैतिक संस्था का सदस्य अपना धार्मिक विश्वास रखने में स्वतन्त्र है, उसी प्रकार एक धार्मिक विश्वास रखने वाला किसी भी राजनैतिक विचार को अपनाने का पूर्ण अधिकारी है। वास्तव में यह एक व्यावहारिक दृष्टिकोण है। यदि ऐसा न करके इससे उल्टी नीति अपनाई जाय तो इसका क्या परिणाम होगा? उस पर भी विचार करना चाहिये। मान लो कि आज आर्यसमाज को राजनैतिक संस्था बना दिया जाय तो उसका रूप क्या होगा? यदि वह राष्ट्रीय बन जाय तो उसे राष्ट्र में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान ईसाई सभी का प्रतिनिधित्व करना होगा और तब स्थिति कांग्रेस या समाजवादी दल की सी होगी। जिसमें सब धर्म वालों को राष्ट्रीय दृष्टि से सम्मिलित करना पड़ेगा और ऐसी दशा में उनकी सन्तुष्टि का भी प्रयत्न करना पड़ेगा। और यदि वह केवल हिन्दुओं तक ही अपना कार्य क्षेत्र बनायेगी तो सारे राष्ट्र को प्रतिनिधि न होकर एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करेगी और उसकी हिन्दू सभा या जन संघ जैसी स्थिति रहेगी। ऐसी दशा में वह हिन्दू धर्म के किसी भी सम्प्रदाय के धार्मिक विश्वासों के खंडन से दूर रहने पर बाध्य होगी। राजनैतिक संस्था बन कर यदि उसने हिन्दुओं के

अन्य सम्प्रदाय जैन बौद्ध सिखों आदि की भ्रान्त धारणाओं और विश्वासों के खंडन का कार्य जारी रखा तो वह निश्चित ही सभी की सहानुभूति खोयेगो और ऐसी स्थिति में उसे हिन्दुओं के मत प्राप्त न हो सकेंगे और यदि उसे हिन्दुओं के मत प्राप्त करना ही आवश्यक होगा तो अपना धार्मिक चोला उतार कर इस विषय में मौन धारण करना पड़ेगा। और मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, गगा स्नान से स्वर्ग प्राप्ति आदि सभी धार्मिक पाखड व अन्ध-विश्वास पनपते रहेंगे। दूसरे शब्दों में आर्यसमाज अपने असली मार्ग से भटककर पथभ्रष्ट हो जायगा। और वेद प्रचार और 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' के उसके स्वप्न अधूरे ही रह जायेंगे। इस स्थिति से और दु खद स्थिति हमारी क्या हो सकती है? फिर तो हम अन्य राजनैतिक दलों के समान सीटें प्राप्त करने के लिये अपने मत दाताओं को प्रसन्न रखने के भैरवी चक्र में पड़ जायेंगे। धर्मप्रचार एक स्वप्न ही हो जायगा।

कोई यह भी कह सकता है कि हम आर्यसमाज के धार्मिक और राजनैतिक दो विभाग कर देंगे। और दोनों क्षेत्रों में कार्य करेंगे। पहले तो यदि आर्यसमाज की वर्तमान शक्ति व सामर्थ्य को देखा जाय तो यह सम्भव ही नहीं है। फिर इसे सम्भव भी मान लिया जाय तो सत्ता लोभ से सब लोग राजनैतिक विभाग में ही सम्मिलित होना चाहेंगे और धार्मिक विभाग निर्बल व उपेक्षित रह जायगा। एक कठिनाई यह खड़ी होगी कि जो लोग कांग्रेस, जनसंघ या समाजवाद के ध्येय के समर्थक होंगे उन्हें आर्यसमाज छोड़ने पर बाध्य होना पड़ेगा। और ऐसी संख्या बहुत बड़ी निकलेगी। दूसरी कठिनाई होगी सीटों के लिए उम्मीदवारों के निर्वाचन की। जन सघ, हिन्दू सभा व रामराज्य परिषद् जैसी कट्टर हिन्दुत्ववादी संस्थाओं तक ने अपनी सीटों पर मुसलमान व ईसाई उम्मीदवार खड़े किये। क्या आर्यसमाज इस मनोवृत्ति से बचा रह सकेगा? और यदि ऐसा हुआ तो उसे राजनीति में प्रवेश करने से लाभ क्या मिला? जिन अवैदिक मतों से हम वैदिक धर्म की रक्षा कर उसे सब से स्वीकार कराना चाहते हैं उसका उन विधर्मियों में हम किस प्रकार प्रचार करेंगे?

आर्य समाज को राजनीति में ले जाकर आप उससे किस आदर्श की सिद्धि कराना चाहते हैं? जब यह प्रश्न पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि सत्ता हाथ में आ जाने पर हम ऐसे राजनियम बनायेंगे जो आर्य समाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों। यह पहलू भी विचारणीय है। जहा समाज सुधार का प्रश्न है वहा यह कहा जा सकता है कि आज के शिक्षित व सुधारक व्यक्ति आर्य समाज के अधिकाश समाज सुधारों से सह-मत हैं। इनके लिए राजनियम या तो बन चुके हैं या बनाये जा रहे हैं। आर्य समाज की सरकार न होते हुए भी हिन्दी राष्ट्रभाषा बन चुकी है। जात पात व साम्प्रदायिकता को हमारे विधान में कोई स्थान नहीं है। गोवध निषेध के कानून भी लगभग सभी प्रान्तों में बन चुके हैं। अछूतोद्धार के लिये सरकारी कानून व सहायता प्रयत्नशील हैं। शराबबन्दी के लिये भी कई प्रान्तों में क्रियात्मक कदम उठाये जा चुके हैं और कई में उठाये जाने वाले हैं। दहेज के सम्बन्ध में भी कानून बनने वाला है। इसी प्रकार और भी समाज सुधार के कार्य राज्य द्वारा किये जा रहे हैं। और सरकार भी इसलिये कर रही है कि यह समय की पुकार है। कोई भी सरकार हो, यदि वह समाज सुधार के इन कार्यों के लिये कानून नहीं बनायेगी तो उसे जनता का विश्वास व समर्थन नहीं मिल सकता।

कानून तो बन गये या बन जायेंगे। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या कानूनों के बन जाने से ये सामाजिक बुराइयाँ मिट गईं? इस तथ्य से कौन इन्कार कर सकता है कि साम्प्रदायिकता, जातीयता

प्रान्तीयता, अछूतपन, दहेज, नशाखोरी कानून बन जाने के बावजूद बढ़े हैं घटे नहीं। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि केवल कानून बनाने से ये बुराइया नहीं मिट सकतीं। इन्हें मिटाने के लिये जनता में आन्दोलन करना पड़ेगा और आन्दोलन करने के लिए ऐसी सस्थाओं की आवश्यकता होगी जो इस ठोस और रचनात्मक कार्य को लेकर आगे बढ़ें। राजनैतिक संस्थाए इस विषय में असफल प्रमाणित हुई है। आर्य समाज जैसी महान् सस्थाएं ही इस कार्य को करने मे समर्थ हो सकती हैं, जो कि अपने जन्म काल से ही इस प्रकार के कार्य करती आ रही है। सचमुच ही यदि आर्य-समाज आज सामाजिक क्रान्ति व चरित्र निर्माण के कार्य को अपने हाथों में लेकर आगे बढ़े तो जहा वह देश की महान् सेवा करेगा वहा जनता के हृदयों में अपना घर बनाकर उसका नेता भी बन सकेगा। राजनैतिक दलों में सब से अधिक शक्तिशाली कांग्रेस है, वह भी दिन पर दिन अपनी लोकप्रियता खोती चली जा रही है। आज उसमें सत्ता लोलुप लोगों का बाहुल्य है। जनता से सम्पर्क दिन पर दिन कम होता जा रहा है। क्या वे लोग इससे कुछ पाठ सीखेंगे जो आर्य समाज को राजनैतिक सस्था बनाने के फेर में पड़े हुए है।

धर्म प्रचार का जहा तक सम्बन्ध है, वहा यह बात माननी पड़ेगी कि यह बात हृदय परिवर्तन से सम्बन्ध रखती हैं। तलवार के बल पर, थैलियों के लोभ से अथवा राज्य नियम या दबाव से धम प्रचार या धर्म परिवर्तन करने का कोई भी विचार-शील समर्थन नहीं करेगा। अन्ध विश्वासों को दूर करने में भी सत्ता लाचार है। अत इस विचार में भी कोई तथ्य नहीं है कि राजनीति में भाग लेकर धर्म प्रचार किया जा सकता है।

कई लोग यह कहते हैं कि राजनीति से धर्म को अलग नहीं किया जा सकता। गाधी जी भी यही कहते थे कि मैं धर्म विहीन राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकता। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि राजनीति को किस धर्म से सम्बन्धित किया जाय ? जहा तक धर्म के बाह्य रूप पूजा, नमाज, हवन आदि की बात है उसे राजनीति से सम्बन्धित करने के न तो गान्धी जी समर्थक थे और न यह व्यावहारिक ही है। राज्य जिन धार्मिक क्रियाओं का प्रचार करेगा उनसे भिन्न धार्मिक क्रियाओं वाले उसका विरोध करेंगे। हा यदि म० दयानन्द की धर्म की यह परिभाषा कि "धर्म उसे कहते है जिसका कि कोई विरोधी न हो" मान ली जाय तो यह सब को स्वीकार्य होगा। इस परिभाषा में उन नैतिक शिक्षाओं का ही समावेश होगा जो कि मनुष्य के चरित्र को उज्ज्वल व उन्नत बनाती हैं। कोई भी बुद्धिमान् सरकार किसी भी सम्प्रदाय की उन धार्मिक मान्यताओं को ठेस पहुंचाने का प्रयत्न न करेगी। जिनसे कि वह किसी को हानि न पहुंचाते हों। इस दृष्टि से सोचने पर भी हम राज्य सत्ता पाकर उस ढंग से अपने धर्म का प्रचार नहीं कर सकते जिस ढग से कि आज करते हैं। हमें तो सारे संसार की अवैदिक मान्यताओं मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, ढोंग, अन्धविश्वास आदि का खण्डन करना है और वह हम अपने स्वतन्त्र सगठन द्वारा अपने मच से ही कर सकते हैं, राज-नीति मे प्रवेश करके नहीं।

राजनीति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य आज आर्य समाज के सामने है और वे ऐसे कार्य हैं जिनको आय समाज के अतिरिक्त और कोई भी नहीं करसकता। ईसाई प्रचार की समस्या ही इतनी भयप्रद है कि यदि उसका कोई निराकरण नहीं किया गया तो पाकिस्तान जैसे देश के विभाजन के भयकर परिणाम आ सकते हैं। मैं यह स्वीकार करता हू कि प्रत्येक धर्मावलम्बी को अपने धर्म के प्रचार का अधिकार होना चाहिए। परन्तु ईसाई लोग आज जिस प्रकार अनपढ़ निर्धन वनवासियों व अछूतों में उनकी विवशताओं और निर्बलताओं

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकारियों पर लगाये आरोप निर्मूल

एक भी आरोप व आक्षेप सिद्ध न हो सका

श्री वैद्य सत्यव्रत व श्री वीरेन्द्र को १२००) हर्जाना देने का आदेश

प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित

जालन्धर ९ मार्च, आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब के चार उच्चाधिकारियो पर श्री वैद्य सत्यव्रत जी और श्री वीरेन्द्र जी ने जो आरोप क्रिमिनल और सिविल कोर्ट मे लगाए थे और बाद मे आर्यसमाज के पूज्य सन्यासी वर्ग के समझाने पर जिन्होने सर्वसम्मति से राजकीय न्यायालय से केस उठा कर निर्णय के समस्त अधिकार श्री माननीय घनश्यामसिंह जी गुप्त को दे दिए थे, उन समस्त आरोपो का निर्णय देते हुए श्री घनश्यामसिहजी गुप्तने फैसला लिखा है कि अन्त में मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि अनावेदक सज्जनों पर आवेदक सज्जनों ने जो आरोप और आक्षेप लगाए उनसे अनावेदकगण सर्वथा निर्दोष हैं।"

श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने दोनो पक्षो को भलीभान्ति सुनने, फाइले, कैशबुकें तथा आवश्यक रजिस्टर आदि देखने और सारे मामलो की अत्यन्त निष्पक्षता से जाच पडताल करने के बाद यह निर्णय दिया। वैसे तो गुप्त जी को निर्णय का अधिकार देते समय दोनो पक्षो ने

का लाभ उठा कर जिन हथकण्डों से अपने धर्म का प्रचार और धर्म परिवतन कर रहे हैं, वह सर्वथा निन्दनीय है। वह जहा ईसाई धर्म के नाम पर एक कलंक है वहां हमारे लिये भी एक चुनौती है। और हमें उस चुनौती का उत्तर देना चाहिये।

• आज सार्वदेशिक सभा के नेताओं का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर गया है और उन्होंने तेजी से ईसाई आक्रमण के विरुद्ध कार्य आरम्भ कर दिया है। प्रत्येक आर्य समाजी का कर्तव्य है कि वह अपने नेताओं के हाथों को मजबूत करे। जिन्हें सत्ता की भूख व राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं हों वे भले ही राजनीति में आएं। परन्तु न तो आर्य समाज को उस महत्वाकांक्षा का साधन बनायें और न आर्य समाज को उस दलदल में घसीटें। रचनात्मक व ठोस कार्यों का स्थान सदा ही ऊंचा रहा है और रहेगा। याद रखें राजनीति से धर्म उतना ही ऊंचा है जितना कि राजा से ईश्वर।

आर्यसमाज का व राष्ट्र का कल्याण इसी में है कि वह अपने आदर्श, ध्येय व विश्वास में अडिग रह कर वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य करता रहे और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के लक्ष्य पर पहुचने के लिये त्याग, तप और बलिदान की पावन ज्योति को जलाता रहे। यही उसका सही मार्ग भी है।

अधिकार पत्र की धारा २ में यह स्वीकार किया था कि **"उपर्युक्त समझौते (निर्णय की कार्यवाही के लिए) कोई वैधानिक नियम-अर्थात् पार्टियों का बयान लेना, गवाही लेना, कागजों का निरीक्षण करना, नोटिस देना इत्यादि लागू नहीं होंगे।"**

अत सत्य की कसौटी पर शतप्रतिशत परखने के पश्चात् श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त का निर्णय जहाँ गुप्त जो की न्यायप्रियता का परिचायक है, वहा साथ ही यह आर्य प्रतिनिधि सभा पजाबके अधिकारिगण के उज्ज्वल चरित्र, त्याग और कर्मठता का प्रामाणिक चित्रण भी है।

आचार्य रामदेव जी सम्बन्धी निर्णय

सभा प्रधान श्रद्धेय आचार्य रामदेवजी पर लगाए हरद्वार यात्रा सम्बन्धी आरोप के सम्बन्ध में श्री गुप्त जी ने लिखा है कि **"नियमानुसार जो किराया मिल सकता था, वही उन्होंने लिया और श्री वैद्य सत्यव्रत द्वारा लगाया गया यह आरोप ठीक नहीं और आचार्य जी इसके दोषी नहीं।"**

आचार्य रामदेव जी पर लगाए ८५१) मे से केवल ६००) कार्यालय में जमा कर २५१) अपने लाभ के लिए गबन करने का जो आरोप वैद्य सत्यव्रत ने लगाया था, उसके सम्बन्ध में श्री गुप्त जी ने निर्णय दिया है कि "यह आरोप भी सत्य नहीं।" सारे प्रमाण वक्तव्य और स्थिति की खोज कर गुप्त जी ने लिखा है कि ८५१) रुपए नही बल्कि ८३१) थे। उसमें ३१) रुपये उपदेशक विद्यालय यमुनानगर के लिए थे जो वहीं से भेज दिए गए थे और २००) स्थानीय कार्य के लिए रख लिए गए शेष ६००) का ड्राफ्ट नरवाना वालो ने आचार्य जी को दिया। इसकी पुष्टि स्वय वैद्य सत्यव्रत के पत्र से होती है। **अतः यह कहने में मुझे सन्देह नहीं है कि इस आरोप के दोषी आचार्य रामदेव जी नहीं हैं।**

आचार्य भगवानदेव जी सम्बन्धी निर्णय

त्याग और तप के प्रतीक पूज्यपाद आचार्य भगवानदेव जी पर लगाए प्रथम आरोप ४६१७ रु० २६ नए पैसे के अवैधानिक रूप से अपने पास रखने, सभा के कार्यालय में जमा न कराने और बोगस बिल देने का विवेचन करते हुए श्री गुप्त जी ने अपने निर्णय में लिखा है कि "जो सज्जन सभा के प्रचार के कार्य में रहते हुए सभा के लिए धन एकत्रित करते हैं, उनका हिसाब सभा के लेजर बुक मे खुला रहता है और उनको सभा की पुस्तिकाए दी जाती हैं, जो ३ परत वाली होती हैं। वे सज्जन जब कभी सभा के लिए धन प्राप्त करते हैं, तो एक परत धन देने वाले को एक दूसरी सभा कार्यालय में प्राप्ति अकित करने के निमित्त भेजते है। तीसरी परत रसीद पुस्तिका में रहती है। जब सारी रसीद समाप्त होजाती है तब रसीद पुस्तिका सभा कार्यालय को वापस दी जाती है और उसके स्थान पर नई रसीद पुस्तिका ली जाती है। इन रसीदो के अनुसार धन सभा के लेजर मे उन सज्जन के नाम डाल दिया जाता है और दानी का जमा कर दिया जाता है, जो उस सज्जन द्वारा व्यय होता है अथवा उससे

सभा को नकद प्राप्त होता है, वह लेजर मे उसके खाते में जमा हो जाता है। श्री आचार्य भगवानदेव जी ग्राम प्रचार के अधिष्ठाता थे और स्वय भी प्रचार का कार्य करते थे उनका खाता भी सभा के लेजर बुक मे खुला हुआ था और उसमे उनके द्वारा आय व्यय का जमा खर्च किया जाता था। विवादास्पद राशि के सम्बन्ध मे भी उनके खाते मे अक उचित रूप से अकित हैं। जो धन आचार्य भगवानदेव जी द्वारा व्यय हुआ, उसकी स्वीकृति भी अन्त-रग सभा में हुई।

प्रचार के मार्ग व्यय बिलो के सम्बन्ध म श्री गुप्त जी ने लिखा है कि **यह व्यय औसत रूप से लगभग ११) प्रति समाज के उत्सव पर पड़ता है, जो कि अति साधारण है।** यहा यह भी स्मरण रहे कि यह ११) भी **अकेले आचार्य भगवानदेव जी का न होकर उनके साथ रहने वाले प्रचारक व उपदेशकों आदि सभी का है।**

अत इन सभी आरोपो का विवेचन कर गुप्त जी ने लिखा है कि **"मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि आचार्य भगवानदेव जी को दोषी नही ठहराया जा सकता।"**

श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के सम्बन्ध में निर्णय

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के विद्वान्, कर्मठ महामन्त्री श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती पर लगाए प्रथम आरोप "दयानन्द वाटिका के से अपने प्रेस मे सभा के टेलीफोन को निजी लाभ के लिए लाने और उसके व्यय को सभा पर अनुचित रूप से डालने" की विवेचना करते हुए श्री गुप्त जी लिखते हैं कि अन्तरग सभा के निश्चय दिनाक १३-४ ५७ के अनुसार सारा कार्यालय सब सामान सहित उठा कर तब सम्राट प्रेस के कार्यालय भवन में लाया गया जब कि दीवानहाल में स्थान नही मिला और अन्यत्र स्थान लेने में भारी किराया तथा अन्य व्यय उठाना पडता था। इस सामान में टेली-फोन भी था। यह भी स्पष्ट है कि दयानन्द वाटिका मे किराया न रहने पर भी जो सेवक, पानी, बिजली आदि पर ७०) प्रति मास व्यय होता था, उसकी सभा को बचत हो गई। यह भी स्पष्ट है कि यदि अन्य स्थान किराया पर लिया जाता, तो केवल स्थान मात्र के लिए ७५) मासिक व्यय होता।

अपने स्थान पर किसी अधिकारी द्वारा सभा कार्यालय के लिए स्थान देने पर किराया लेने का उदाहरण है, जिस पर कोई आक्षेप नही किया गया था। ऐसा होते हुए भी श्री सिद्धान्ती जी ने कोई किराया नही लिया। इसके अतिरिक्त सेवक, बिजली, आदि के व्यय का भार भी सभा पर नही डाला। ऐसी अवस्था मे यह सोचना कि **सिद्धान्ती जी अपने आर्थिक लाभ के लिए कार्यालय अपने यहां लाये, ठीक नहीं।**

"टेलीफोन पर जो व्यय पहले हुआ करता था, अर्थात् २५) के लगभग प्रति मास उससे कोई विशेष व्यय भार सभा पर नही डाला गया। यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि

उन दिनों हिन्दी सत्याग्रह के कारण टेलीफोन का व्यय बढ़ना स्वाभाविक था। सिद्धान्तीजी ने अन्तरग सभा से प्रार्थना की थी कि टेलीफोन सम्राट प्रेस से हटा दिया जाए तब भी अन्तरग सभा ने आर्य भाइयो की सुविधा को देखते हुए इसे हटाना स्वीकार नही किया और यथापूर्व रखने का निश्चय किया।

श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने आगे लिखा है कि --

"यह भी साक्ष्य से सिद्ध हुआ है कि सम्राट प्रेस को स्वय टेलीफोन लगवाने की आवश्यकता नही थी और साक्षी मे इस बात का भी प्रमाण है कि सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ के लिए २०००) टेलीफोन लगवाने के लिए देना आवश्यक नही है।

इस प्रश्न पर अपना निर्णय देते हुए श्री गुप्त जी ने लिखा है कि —

"मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि यह आरोप उचित नहीं है और मैं श्री सिद्धान्ती जी को इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का दोषी नहीं मानता।"

श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती पर २०८) के मार्ग व्यय बिल सम्बन्धी आरोप की चर्चा करते हुए श्री गुप्तजी लिखते हैं कि २७-७-५८ की अन्तरग सभा में सम्मिलित होने के लिए रोहतक तथा दिल्ली मे सभा के ३ अधिकारी तथा ३ अन्तरग सदस्य रेल द्वारा आते जाते तो इनका व्यय २२०-५० नये पैसे होते। परन्तु जीप के केवल पेट्रोल का व्यय २०८) ही सभा से लिया गया। जीप सभा की नही थी फिर भी सिवाय पेट्रोल के और कुछ व्यय सभा से नही लिया गया।

जीप द्वारा यात्रा से मार्ग मे समाजो मे आवश्यक कार्य भी किया गया। जालन्धर से परे बटाला, कादिया, दीनानगर और पठानकोट का भी दौरा किया। स्पष्ट है कि सभा को इस यात्रा पर रेल व्यय से बहुत कम व्यय देना पडा।

अत यह स्पष्ट है कि श्री सिद्धान्ती जी और श्री भगवानदेवजी पर इस व्यय के सम्बन्ध मे जो दोष लगाया गया है, वह निरर्थक है। उनके इस व्यवहार से सभा को व्यय में धन की बचत ही रही।

श्री रामनाथ जी भल्ला सम्बन्धी निर्णय

उच्च राजकीय पद (गजेटेड आफिसर) पर होते हुए भी दिन रात अनथक रूप से आर्यसमाज की सेवा करने वाले श्री रामनाथ जी भल्ला पर जो ४ रुपये ५६नए पैसे के भवन का अदालतीय आरोप श्री सत्यव्रत वैद्य ने लगाया था, उसकी चर्चा करते हुए श्री गुप्तजी ने लिखा है कि 'श्री भल्ला जी के हरियाना ग्राम में जाने का कारण लाहौर छावनी गर्ल्ज हाई स्कूल हरियाना सम्बन्धी आवश्यक कार्य था यह बात वहा के प्रिंसिपल से जो पत्र-व्यवहार होता रहा, उससे स्पष्ट होती है। **अतः मैं श्री रामनाथ जी भल्ला को इस आरोप का दोषी नहीं मानता।**

श्री वैद्य सत्यव्रत जी ने जो भी आरोप अदालत में लगाये थे और बाद में जिनके निर्णय का अधिकार श्री वैद्य सत्यव्रत जी ने

श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को मध्यस्थ, निर्णायक स्वीकार कर दिया था और अपने एक आरोप पत्र के आरम्भ मे लिखा था कि मै आपके आसन को अ ग्रेजी भाषा की उपमा के अनुसार साक्षात् प्रभु का आसन मानते हुए उसका उसी प्रकार आदर करू गा। उन्ही वैद्य सत्यव्रत जी के द्वारा लगाये समस्त आरोपो के सम्बन्ध मे श्री गुप्त जी न निणय दिया कि –

'श्री वैद्य सत्यव्रत जी द्वारा लगाए जो भी आरोप थे, मैं उन सभी आरोपों से अनावेदको (श्री आचार्य रामदेवजी, आचार्य भगवानदेव जी, श्री जगदेवसिंहजी सिद्धान्ती श्री रामनाथ जी भल्ला) को दोष मुक्त ठहराता हू।"

श्री वीरेन्द्र जी द्वारा लगाए आरोप और उनका निर्णय

श्री वीरेन्द्र जी ने जो आरोप लगाये थे, उनके चार भाग थे। पहला यह कि एजण्डा १३ ९ ५८ के अधिवेशन के लिए ८ सदस्यो को समय पर नही भेजा गया। इस सम्बन्ध मे सारे तथ्यो की विवेचना कर श्री गुप्त जी का निर्णय है कि —

मुझे इसमे सदेह नही कि नियमानुसार १३ ९ ५८ को होने वाले साधारण वार्षिक अधिवेशन का नोटिस उन आठ प्रतिनिधियो को दिनाक ७ ८-५८ को अर्थात ३० दिन से भी अधिक दिन पूर्व एजेण्डा भेजा गया था, अत आवेदकों का यह आक्षेप ठीक नही है।"

श्री वीरेन्द्र जी का दूसरा आक्षेप था कि ६१ समाजो का दशाश सभा को अधिवेशन से पूव प्राप्त नही हुआ था। इस प्रश्न पर निर्णय देते हुए श्री गुप्त जी लिखते हैं कि —

'इस सम्बन्ध मे श्री देवदत्त जी ने सभा की रोकड पेश की जिसमे उक्त ६१ समाजो से अधिवेशन से पूव की भिन्न भिन्न तिथियो पर दशांश की राशिया प्राप्त होना अकित है। अत मेरा यह निणय है कि इन विवादास्पद ६१ समाजो से दशाश अधिवेशन से पूर्व प्राप्त हो चुका था। इसलिये यह आक्षेप भी निराधार है।

श्री वीरेन्द्र जी का तीसरा आक्षेप यह था कि श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालकार का प्रतिनिधित्व उनको चुनने वाली समाज ने वापिस ले लिया था। श्री गुप्त जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि —

इसका कोई प्रमाण नही है। अत मैं यह निणय देता हूँ कि श्री प० बुद्धदेवजी विद्यालकार नियमानुसार प्रतिनिधि थे और इसलिये सभा के विधिवत् प्रधान थे।"

श्री वीरेन्द्र जी का चौथा आरोप यह था कि १३ ९ ५८ को श्री आचार्य रामदेव जी का प्रधान चुना जाना अवैध था।

इस आरोप के उत्तर मे श्री गुप्त जी ने लिखा कि "कार्यवाही के निश्चय की प्रतिलिपि साक्षी ने पेश की। इसमे स्पष्ट है कि आचार्य रामदेव जी का चुना जाना सर्वथा वैध था। अत मेरा निर्णय है कि आवेदकोका यह आक्षेप निर्मूल है और इस कारण यह कहना कि प्रधान को अधिकारियो और अन्तरग सदस्यो

को मनोनयन करना अवैध था इसके लिये भी कोई आधार नहीं रह जाता।"

इस प्रकार माननीय निर्णायक महोदय ने अपने निर्णय के चतुर्थ भागमें घोषित किया कि -

"अन्त में मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि अनावेदक सज्जनो पर आवेदक सज्जनों ने जो आरोप और आक्षेप लगाए उनसे अनावेदक गण सर्वथा निर्दोष हैं।"

इस समस्त निर्णय में यह अत्यन्त विचारणीय है कि माननीय श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त की उच्च स्थिति और निष्पक्षता का ध्यान रख उन्हे दोनो पक्षो ने अत्यत आदर के साथ पूर्ण अधिकार सम्पन्न निर्णायक स्वीकार किया। किसी भी पेशी, गवाही, और अन्य औपचारिकताओं की आवश्यकता को दोनों पक्षों ने अनावश्यक समझ स्वय अधिकार पत्र में इसकी घोषणा की। श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने फिर भी दोनो पक्षों को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के पर्याप्त अवसर दिए और पश्चात् सभी दृष्टियों से जो भी सत्य प्रतीत हुआ, वह प्रकट कर दिया।

जहा श्री गुप्त जी ने सभा अधिकारियों पर लगाए समस्त आरोप निर्मूल घोषित किए वहां श्री वैद्य सत्यव्रत व श्री वीरेन्द्र जी द्वारा लगाए एक भी आरोप में तनिक सी भी सत्यता न होने के कारण उन्हें सभा को और चारों व्यक्तियों को १२००) हरजाना देने का आदेश भी दिया (इसमें से ६००) रुपये श्री सत्यव्रत वैद्य दें तथा ३००) रुपये श्री वीरेन्द्र जी दें।

इस प्रकार आर्य जनता ने त्यागी-तपस्वी, महान् व्यक्तियों के हाथ में महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य को पूर्ण करने का जो महान् उत्तरदायित्व सौंपा था और त्याग, तप और ज्ञान के कारण जिन हाथो में उसने दयानन्द की ज्योति फैलाने का भार सौंपा था। जनता को ज्ञात हो गया कि वे वास्तव में उसके अधिकारी हैं और उसने सही मार्ग ही चुना था। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि असत्य प्रहार दयानन्द, लेखराम, श्रद्धानन्द के खून से सींची फुलवारी को किसी भी मूल्य पर मिटाने की क्षमता नहीं रखते। और जिसके परिणाम स्वरूप चन्द व्यक्ति अपने स्वार्थों और मनमानियो को अपूर्ण रहते देख तिलमिला कर सारी नैतिकता, मर्यादा और आर्यत्व को ताक में रख कर येन केन प्रकारेण सेवा मार्ग पर चलने वालों को बदनाम करने का अतिनिन्दनीय उपाय प्रयोग में ला रहे हैं। उनके घातक उपाय असफल हुए।

क्या यह साधारण बात है कि निर्णायक महोदयको श्री सत्यव्रतवैद्य व वीरेन्द्र द्वारा लगाए एक भी आरोप में लेशमात्र भी सत्य प्रतीत नहीं हुआ। आज आर्य जनता गम्भीरता पूर्वक विचार कर रही है कि क्या असत्य और निराधार बातों के बल पर आर्य समाज और आर्यसमाजों की शक्ति एव गौरव की प्रतीक आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को अपमानित, बदनाम करने वाले व्यक्तियों को किसी भी मूल्य पर आर्य भी कहा जा सकता है? क्या त्याग और बलिदान के पवित्र मार्ग और वेद के पावन सन्देश को प्रसारित करने का यही मार्ग है। सत्य, न्याय और धर्म की इस विजय से आज न केवल इन ४ सभा अधिकारियों का, अपितु दयानन्द के प्रत्येक अनुयायी का मुख उज्ज्वल है।

विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा

भारत मे अँग्रेजो के आगमन के पूर्व शिक्षा की सस्थाएं धार्मिक भावनाओ से अनुप्राणित हो रही थी। उस समय गावो मे पण्डित और मौलवी शिक्षक का काम करते थे। इन्ही पण्डितो और मौलवियो की धार्मिक भावनाएँ विद्यार्थियो में घर कर जाती थी।

भारत मे जब अग्रेज आये और यहाँ के शासक बन बैठे तो उन्होने पहले तो यह निश्चय किया कि भारत मे शिक्षा का प्रचार ही न किया जाय। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा, "We had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of schools and colleges, and it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India" अर्थात् "हम लोग अपनी इसी मूर्खता के कारण अमेरिका को खो बैठे, क्योंकि हमने उस देश मे स्कूल और कालेज कायम हो जाने दिये, अब भारत के विषय में उसी मूर्खता को दुहराना उचित नहीं।" (Marshman in his evidence before the Select Committee of the House of Lords 15th June, 1833)

पीछे यह नीति बदली और भारत में स्कूल, कालेज खुलने लगे और धर्म से अनुप्राणित ग्रामीण पाठशालाओ का सर्वथा लोप ही हो गया! ये स्कूल और कालेज धर्मनिरपेक्ष रहे। इनमें ईसाई, हिन्दू या मुसलमान किसी को भी धार्मिक-शिक्षा न दी जाती थी। पहले तो मुसलमानो ने इन विद्यालयो का बहिष्कार किया और मौलवियो के पास ही पढ़ते रहे परन्तु पीछे ये भी युग के प्रवाह मे बह चले। इस समय के विद्यालय धर्मनिरपेक्ष तो थे किन्तु इनमे एक विशेषता थी। बच्चो के नैतिक मानदण्ड को ऊँचा रखने का प्रयास किया जाता था और ऐसा साहित्य दिया जाता था कि उससे बच्चो के मानसिक धरातल उपयोगी बन जाते थे। श्रवणकुमार की पितृसेवा, हरिश्चन्द्र की सत्य निष्ठा और राम का पिता के आदेश का पालन कितने बच्चो के हृदयो मे घर कर जाता था। इसके साथ-ही-साथ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई तीनो की शिक्षासस्थाएँ चलती थी और वे अपने-अपने ढग की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करती थी। इस दिशा मे आर्यसमाज अग्रगण्य रहा है। किन्तु इस समय स्थिति भिन्न है। आज हमारे देश की शासन व्यवस्था धर्मनिरपेक्ष प्रजातान्त्रिक है। हिन्दू बहुमत में हैं, इसलिए माना जाता है कि उन्हें सुविधाओं की आवश्यकता नही है। मुसलमान और ईसाई अल्प मत में हैं, इसलिए उन्हें सास्कृतिक सुविधाएँ प्राप्त हैं।

शिक्षा में साम्प्रदायिकता का स्थान नहीं होना चाहिए यह उचित है किन्तु बच्चो के चरित्र निर्माण की ओर ध्यान देना बहुत अधिक अपेक्षित है। हमारे देश में पिछले

५०, ६० वर्षों में साम्प्रदायिक विष अत्यधिक फैल चुका है। कहा जाता है कि यदि अब्दुल्ला ने रशीद के साथ बेईमानी की तो अब्दुल्ला बेईमान है, किन्तु यदि अब्दुल्ला ने शम्भुनाथ के साथ बेईमानी की तो मुसलमान बेईमान नहीं हैं। इसी प्रकार हिन्दू मुसलमानो से और मुसलमान हिन्दुओं से साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाते रहे हैं। हमारे राजनीतिक नेताओं को इस तनाव का पूरा पता है और इसका फल भी उन्होंने देखा है। इसीलिए उन्हो ने धर्म के साथ इन्हीं निकृष्ट साम्प्रदायिक मनोवृत्तियो को जोड रखा है और साम्प्रदायिकता के साथ धर्म से भी नाता तोड रखा है। आज का विद्यार्थी हवाई जहाज के आविष्कारक और रेलगाडी की कहानियो को तो जान सकता है पर समाज में सत्यनिष्ठा और गुरुजनों के सत्कार का भी कुछ मूल्य है इसका उन्हे पता नही।

इसका और भी एक कारण है। कई पढ़े-लिखे लोग आचरण को सापेक्ष मानने लगे हैं और इस सापेक्षवाद (Doctrine of Relativity) के सिद्धान्त ने उन्हे आचार-विचार से बहुत कुछ मुक्त सा कर रखा है।

इन सब का एक ही फल निकल रहा है। हमारे देश का नैतिक मानदण्ड बहुत अधिक गिर गया है और गिरता ही जा रहा है। इसके लिए बच्चों में धार्मिक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है किन्तु शिक्षा में साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। पुराण, कुरान और बाइबिल ये तीनो ही साम्प्रदायिक हैं, मनुष्य विशेष की मान्यता से युक्त हैं, एक देशीय और एक जाति के लिए निर्मित है। अत इनकी शिक्षाएं भी साम्प्रदायिकता से रहित नही है।

असाम्प्रदायिक ग्रन्थ केवल वेद हैं। इनमें किसी सम्प्रदाय का वर्णन नही है वस्तुत वेद उस समय के ग्रन्थ हैं जब मनुष्य जाति में सम्प्रदाय की कल्पना भी न थी। उस समय सम्प्रदाय (Community) न था अत वेद साम्प्रदायिक (Communal) नही हो सकते। अच्छा से अच्छा हिन्दू या ईसाई जबतक मुहम्मद पर विश्वास न लाये मुसलमान के लिए अच्छा नहीं। ईसा पर बिना विश्वास किये ईसाई से सम्मान नही पा सकता। पर वेद में न ईसा हैं न मुहम्मद, न राम हैं न कृष्ण, केवल मनुष्य है और है मानवता के उत्थान का मार्ग। अत देश के चारित्रिक उत्थान के लिए छात्रों को वेद की शिक्षा देनी चाहिए।

(आर्यसमाज कलकत्ता)

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(आर्य समाज का तीसरा नियम)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के

(महत्त्वपूर्ण निश्चय)

आर्य जनता सावधान रहे !

(यह विज्ञप्ति कई वर्ष हुए प्रचारित की गई थी जिसका प्रभाव बहुत आशाप्रद रहा। आर्य जनता की जानकारी तथा मार्ग प्रदर्शन के लिए उसके अनुरोध पर यह पुन प्रकाशित की जाती है।
—सम्पादक)

पिछले कुछ समय से सभा का ध्यान इस बात की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया जा रहा है कि महर्षि दयानन्द श्री स्वामी श्रद्धानन्द आदि के नाम पर नामधारी आर्यों ने कतिपय व्यक्तिगत अनाथालय, विधवाश्रम, नारी रक्षण भवन आदि स्थापित किये हुए हैं जिनका एक मात्र लक्ष्य पैसा बटोरना होता है जिनके काले कारनामों के कारण इन महापुरुषों के पवित्र नाम कलङ्कित होते और आर्य समाज का अपयश होता है, क्योंकि सर्व साधारण जनता के लिए यह भेद करना कठिन होता है कि ये सस्थायें आर्य समाज की हैं या नहीं, वे प्राय उन्हें आर्य समाज की सस्था समझते हैं। यह माग भी जोर पकडती जा रही है कि यह सभा शीघ्र ही घोषणा करके सब साधारण जनता को सचेत कर दे और आर्य समाज के सुयश तथा सर्व साधारण के हितों की रक्षा की जाय।

हमारे नोटिस में ऐसी कई निकृष्ट सस्थाओं की घृणित कार्यवाहिया लाई गई हैं और कई के काले कारनामे, हम समाचार पत्रों मे पढ चुके हैं, इस घोषणा के द्वारा हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आर्य समाज के संगठन का इन दुकानों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है और न हो सकता है, अत सर्व साधारण जनता को इन्हें आर्य समाज की सस्था समझने की भूल न करनी चाहिये और धोखे से बचना चाहिये। इस प्रकार की सस्थाओं मे प्राय बच्चों का जीवन बर्बाद होता, देवियों पर अत्याचार होता और उनकी दुर्गति होती है। स्थानीय आर्य समाजों को ऐसी सस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करके उन्हें बन्द कराना चाहिये, अथवा उनमे से कोई उपयोगी हो तो उसे अपने सगठन के अन्तर्गत लेना चाहिए। इस कार्य में आवश्यकतानुसार सरकारी सहायता से भी लाभ उठाया जा सकता है ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द आदि के पवित्र नामों का आर्यसमाजों के यश की आड़ में कुत्सित व्यापार और स्वार्थ साधन को सहन नहीं किया जा सकता।

स्थानीय आर्य समाजों से निवेदन है कि उनके यहा यदि उपर्युक्त प्रकार की कोई स्वतन्त्र सस्था हो तो उसका पूरा पता उसकी गतिविधि का सक्षिप्त विवरण अपनी सम्मति सहित इस सभा मे भेजें और उसकी एक प्रति अपनी प्रदेशीय प्रतिनिधि सभा में भेजें।

इस प्रसग मे आर्य समाज के सगठन के अन्तर्गत काम करने वाली उपर्युक्त अथवा अन्य नामों के अनाथालयों और विधवाश्रमों आदि सस्थाओं के मार्ग प्रदर्शन के लिये भी एक दो शब्द कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन सस्थाओं के सचालन में बहुत सावधानता से काम लेने की आवश्यकता है।

इनकी गतिविधि और कार्यों पर सम्बद्ध स्वामिनी सभा और आर्य समाज को कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये। जिससे संस्था का किसी प्रकार का अपयश न हो। सावधानता बर्तने की इसलिये भी आवश्यकता है क्योंकि इन संस्थाओं का कार्य और उत्तरदायित्व बड़ा नाजुक होता है इन्हें सहज, ही बदनाम किया जा सकता है और वर्तमान दुकानों के कटु अनुभव के आधार पर सर्व साधारण जनता सहज ही सन्देह वा भ्रम का शिकार बनाई जा सकती है।

इन संस्थाओं के मार्ग प्रदर्शनार्थ विस्तृत निर्देश के निर्माण का विषय इस सभा के विचाराधीन है, जिसकी यथा समय घोषणा की जायगी, परन्तु इस बीच में इन संस्थाओं के संचालन में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये —

(१) आर्य समाज के संगठन के अन्तर्गत काम करने वाली इन संस्थाओं का स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा समय २ पर निरीक्षण कराया जाना चाहिये।

(२) व्यय की पूर्ति सार्वजनिक दान और सरकारी सहायता से होनी चाहिये। विवाह आदि पर मिलने वाला दान संस्था के समस्त व्यय पूर्ति का साधन कदापि नहीं बनने देना चाहिये।

(३) आश्रमवासियों की गतिविधि किसी अवस्था में भी सन्देह उत्पन्न करने वाले छुपाव की अवस्था तक न पहुँचने देनी चाहिये। 'सुरक्षा और शिष्टता की दृष्टि से जितना छुपाव अनिवार्य हो उतना ही रखा जाना चाहिये।

(४) जो संस्था अनुपयोगी और अनावश्यक प्रतीत हो उसको बन्द करके उस पर व्यय होने वाली शक्ति और धन अन्य उपयोगी कामों में खर्च करना चाहिये।

(५) सन्दिग्ध अवस्था में आई हुई किसी भी विधवा, सधवा अथवा कन्या का उसके पितृ गृह तथा श्वसुर गृह से पता करना चाहिये, यह बड़े पुण्य का कार्य है कि यथासम्भव उनके बीच में पड़ कर पुन सम्मान पूर्वक स्त्रियों को अपने निज-गृह में पुन बसाया जाय।

(६) अनाथालय वा आश्रम में पक्के रूप से किसी अनाथ लड़की, लड़का, सधवा, विधवा को आश्रय देने से पूर्व आगत व्यक्ति का पूरा बयान लिख कर उसके हस्ताक्षर या अंगूठे का चिह्न प्राप्त कर लेना चाहिये। जो २ विवरण प्राप्त हो तदनुसार उसके ग्राम आदि से सम्पुष्टि करा लेनी चाहिये। बहुत बार इस प्रकार आये हुए व्यक्ति झूठ भी लिखा देते हैं। यथा विवाहित होते हुए कोई स्त्री अपने को विधवा कह देती है, इसलिए बहुत सतर्क रहना चाहिये। सन्दिग्ध अवस्था में आई हुई स्त्री की सूचना शोभा प्राप्त सज्जन, पुलीस अफसर को दे देनी चाहिये। इससे संस्थाओं के बहुत से सकट कट जाते हैं।

(७) इस प्रकार की जिन संस्थाओं में युवति स्त्रियाँ अथवा लेडी सुपरिन्टेन्डेण्ट रहती हों उनमें बिना घंटी आदि द्वारा सूचित किये कोई पुरुष अधिकारी प्रवेश न करे। कोई पुरुष अधिकारी किसी स्त्री से एकान्त में बात न करे। चपरासी, चौकीदार, क्लार्क आदि कोई दूसरा व्यक्ति सदा साथ रहे।

८) किसी विधवा के पुनर्विवाह अथवा कुमारी कन्या के विवाह का संस्था की अन्तरंग वा प्रबन्धकर्तृ सभा द्वारा निश्चय हो जाने पर प्रार्थी पुरुषों की आयु, शिक्षा, आचार, धार्मिक विचार, आय, मकान, दुकान, भूमि, जेवर आदि के ब्यौरे की पुष्टि संस्था के किसी मान्य व्यक्ति द्वारा प्रार्थी के ग्राम, मुहल्ला आदि से करा लेनी चाहिये। बिना स्त्री धन के शरणागत विधवा अथवा विवाह योग्य कन्या नहीं ब्याही जानी चाहिए। स्त्री धन अवस्थानुसार २०० रुपये से १००० रुपये तक हो

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान तथा मन्त्री का भ्रमण–वृत्तान्त

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के प्रधान श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट तथा मन्त्री श्री रघुवीरसिंह शास्त्री १५ दिन तक सौराष्ट्र तथा गुजरात का दौरा करके ८ तारीख को देहली वापिस आ गये है। शिवरात्रि पर महर्षि दयानन्द के जन्म स्थान टकारा मे आयोजित उत्सव मे भाग लेने के पश्चात् वे राजकोट, जामनगर, पोरबन्दर, बडौदा, बम्बई तथा नागपुर आदि स्थानो पर गये। इन सभी स्थानो पर आर्य जनता ने उत्साहपूर्वक अपने नेताओ का स्वागत किया तथा भाषणो का आयोजन हुआ। इस दौरे का उद्देश्य यह था कि सौराष्ट्र तथा गुजरात मे आर्य समाज के प्रचार की क्या स्थिति है और उसे कैसे प्रगति दी जा सकती है। टकारा मे ऋषि दयानन्द के जीवन की धारा को मोड देने वाले शिवमन्दिर के पास ही नदी तट पर स्थित मोरवी के राजा का विशाल महल खरीद लिया गया है और एक ट्रस्ट के आधीन प्रचार तथा अनुसन्धान का कार्य चालू हो गया है। इस केन्द्र को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने की योजना बन रही है।

उक्त स्थानो पर चल रही अनेक आर्य सस्थाओ का भी दोनो नेताओ ने निरीक्षण किया। नागपुर मे प्रान्त भर के कार्यकर्त्ताओ की बैठक मे इस बात पर विशेष विचार विनिमय किया गया कि मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर, उडीसा तथा राजस्थान में ईसाइयो की बढती हुई अराष्ट्रिय गतिविधियो को कैसे रोका जा सकता है। सर्वत्र आर्य जनता मे सभा के अधिकारियो के सम्पर्क से उत्साह तथा स्फूर्ति का सचार हुआ और सभा को सहयोग का आश्वासन मिला। सौराष्ट्र तथा गुजरात के कार्यक्रम को सफल बनाने मे आर्य कन्या महाविद्यालय बडौदा के सचालक श्री आनन्द प्रिय जी ने विशेष सहयोग दिया। श्री आनन्द प्रिय जी टकारा स्थित महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट के मन्त्री हैं। इस ट्रस्ट का गत वर्ष सार्वदेशिक सभा से सम्बन्ध हो गया है।

सकता है, कम से कम १ वर्ष और अधिक से अधिक ३ वर्ष के पश्चात् यह धन सूद सहित विवाहिता विधवा अथवा कन्या के हाथ पर धर देना चाहिये।

(९) आर्य समाज मे अर्थ शुद्धि का स्थान अत्यन्त महान् रहा है। कार्यालय के समय मे प्राप्त हुए नकद व वस्त्र आदि दान की पक्की रसीद दाता को तुरन्त मिलनी चाहिये। अन्यथा कच्ची रसीद हस्तलिखित अथवा छपी हुई दे देनी चाहिए जिसके नीचे ये शब्द बढ़ा दिये जावें कि पक्की रसीद अमुक समय बाद दानी को मिल जायगी, यदि न मिले तो संस्था के कार्यालय से रसीद का तकाजा करें।

(१०) आर्य समाज द्वारा सञ्चालित, रक्षित तथा प्रबन्धित अनाथालय के किसी लड़के को भिक्षा के लिए बाहर न भेजना चाहिये। भिक्षा मागना आर्य समाज के अधिकारियों और कर्मचारियों का कार्य है। भिक्षा मांगने से बालकों के बहुत से सद्गुणों का विनाश हो जाता है।

(११) ऐसी सस्थाओं के लड़के, लड़कियों, विधवाओं आदि को दानी महानुभाव यज्ञ, उत्सव सत्कार आदि पर निमन्त्रित भी करते हैं। कभी भी ऐसे समय का निमन्त्रण स्वीकार न करना चाहिए जब कि उनके लिखने पढ़ने और सीखने आदि का समय हो। दानी महानुभाव निश्चय ही आतिथ्य का दूसरा समय स्वीकार कर लिया करते हैं।

साहित्य समीक्षा

तथा प्राप्ति स्वीकार

बृहद् विमान शास्त्र

विमानकाल विषयक प्राचीन सस्कृत ग्रन्थ, सम्पादक तथा हिन्दी रूपान्तरकार-श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, प्रकाशक—सार्वदेशिक सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली १, आकार $\frac{२०\times३०}{८}$, पृष्ठ सख्या ३६८, मूल्य १३) रु०।

यह ग्रन्थ भारद्वाजप्रणीत 'यन्त्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थ का एक अ श 'वैमानिक प्रकरण' मात्र है। सम्पादक महोदय ने बृहद् विमान-शास्त्र की सक्षिप्त विषय सूची के प्रारम्भ में बताया है कि भारद्वाज के 'यन्त्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थ में ४० प्रकरण हैं, जिनमें एक यह 'वैमानिकप्रकरण' है। परन्तु यन्त्रसर्वस्व के ४० प्रकरणों का उल्लेख मूलग्रन्थ में नहीं है, 'वैमानिक प्रकरण' का 'बृहद् विमानशास्त्र' नाम सम्पादक महोदय का दिया प्रतीत होता है, इसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया।

ग्रन्थ का कलेवर— मूलग्रन्थकार ने इस प्रकार के प्रारम्भिक श्लोको में बताया है कि 'वैमानिक प्रकरण' आठ अध्याय, एक सौ *अधिकरण और पांचसौ सूत्रों में लिखा गया* है। परन्तु इन सब विभागो को ग्रन्थ में कही अ कित नहीं किया गया, केवल एक जगह पृष्ठ ५६ पर 'तृतीयाध्यायप्रारम्भ' ऐसा छपा है, अन्यत्र कहीं पर भी अध्याय के प्रारम्भ अथवा समाप्ति का उल्लेख नही। एकसौ अधिकरणो में से 'अधिकरण' के नाम पर केवल तेरह का निर्देश है। पांचसौ सूत्रों में से समस्तग्रन्थ में पेंतीस सूत्रों का उल्लेख उपलब्ध होता है। इनमें से प्रारम्भ से १४ का क्रमिक उल्लेख है। अगले ग्रन्थ में जो सूत्र दिये हैं, उनके साथ अध्याय तथा सूत्र की सख्या न क्रमिक है और न व्यवस्थित। विभिन्न सूत्रों पर अध्याय-सूत्र संख्या एक ही है, कतिपय सूत्रों की सख्या के आगे '?' यह सन्देह चिन्ह लगा हुआ है, नही कहा जा सकता, यह मूल कापी में ही लगा है या सम्पादक महोदय ने अ को को सन्दिग्ध जान कर अपनी ओर से लगा दिया है। दो सूत्र पृष्ठ ७९ और ९५ पर 'तदुक्त यन्त्रसर्वस्वे' कहकर उद्धरण रूप में दिखाये गये हैं। दूसरे सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या के प्रारम्भ में 'बोधानन्द वृत्ति' ऐसा निर्देश नही किया गया, जब कि अन्यत्र व्याख्या प्रारम्भ होने के पूर्व 'बो०वृ०' ऐसा निर्देश है। नही कहा जासकता, यह निर्देश मूल प्रतिलिपि के अनुसार है अथवा *सम्पादक महोदय ने अपनी ओर से अ कित* कर दिया है। यह भी एक विचारणीय बात है कि समस्त ग्रन्थ में कही पर भी पुष्पिका (Colophon) का निर्देश नहीं है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक विषयसूचिका

छपी है इसके विषय मे सम्पादक महोदय ने बताया है कि यह सूचिका बडोदा राजकीय सस्कृत पुस्तक भवन से उन्हे प्राप्त हुई । हस्त लिखित ग्रन्थकी प्रतिलिपि के साथ यह सूचिका पहले ही किसी विद्वान् द्वारा सकलित की गई है, ग्रन्थ के कलेवर का समझने के लिये यह सूची बहुत महत्त्वपूर्ण । इसमे ग्र थ के आठ अध्याय तथा एकसो अधिकरणो का पूरा विवरण दिया गया है । जबकि सम्पादक महा दय ने ग्रन्थ के बीच मे कतिपय अतिरिक्त अधिकरणो का भी निर्देश किया है जो इस सूची मे नही पाये जाते । इन सब बातो से यह अनुमान होता है कि यन्त्रसर्वस्व नामक ग्रन्थ का यह एक वैमानिक प्रकरण भी पूर्ण नही है, कितना अ श कहा से खण्डित है यह कह सकना कठिन है फिर भी जो कुछ उपलब्ध है वह अपने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और विमान विषयक अद्भुत सूचनाओ से भरा हुआ है ।

ग्रन्थ के मुख्य भाग—वैसे साधारण रूप से प्रस्तुत ग्रन्थ को चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है पहले भाग मे प्रारम्भिक मगलाचरण के अतिरिक्त विमान शब्द का अर्थ विमान के रहस्य विमानचालक की योग्यता बताने के लिये विमानविध्वसक पाच आवर्तों के स्वरूप और उनकी पहचान की जानकारी, विमान के अङ्ग और उनकी जान कारी आदि का समावेश है । दूसरे विभाग मे विभिन्न अधिकरण और तीसरे मे विविध यन्त्रो का वर्णन है । चौथा विभाग विभिन्न प्रकार के विमानो का वर्णन करता है इसमे पहले विमान की तीन जातियो का उल्लेख करके प्रत्येक जाति के विविध विमानों का प्रतिपादन है । विमानो की तीन जातिया हैं। यान्त्रिक ५६प्रकार के और कृतक २५ प्रकार के बताय गये हैं ।

ग्रन्थ की कतिपय अद्भुत बातें—ग्रन्थ के अन्तिम भाग मे एक त्रिपुरविमान का विस्तृत वर्णन है जो स्थल जल और आकाश तीनो जगह पर प्रयोग किया जा सकता है । विमान के विभिन्न प्रकार के इञ्जन और उन्हे अनेक प्रकारो से चल ने का वर्णन है । इञ्जन मे जल तथा तैल भरने के पात्रो और उन्हे यथास्थान स्थापित करने एव प्रत्येक यन्त्र के एक दूसरे के साथ आयोजन का विस्तृत वर्णन है ।

एक अन्य शिल्पग्रन्थ समराङ्गण सूत्रधार म व्योमचारियान का वर्णन है वहा इञ्जन को गति देने के लिये पारद के प्रयोग का उल्लेख किया गया है पर तु इस ग्रन्थ मे तेल के प्रयोग का भी वर्णन है क्या यह पैट्रोल के प्रयोग का सकेत माना जा सकता है ? इस ग्र थ के आधार पर गति के लिये गैसप्लान्ट का भी पता लगता है । आधुनिक काल की प्रगति से बहुत पूव विक्रमाङ्क देवचरित नामक काव्य-ग्रन्थ मे पारसीक तैल के प्रयोग का उल्लेख आता है । इससे अनुमान होता है कि पहले समय मे भी विविध कार्यों के लिये इसका उपयोग होता रहा है ।

इसके अतिरिक्त ग्रहनक्षत्र आदि की कक्षा सन्धियो मे विमान के लिये पहुँचने वाले आघातो से विमान की रक्षा के लिए विविध उपायो का वर्णन इस ग्रन्थ मे उपलब्ध होता है ।

विमान की परिभाषा मे ग्रन्थकार ने

लिखा है —

देशाद् देशान्तर तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तर तथा।
लोकाल्लोकान्तर चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति।
स विमान इति प्रोक्त खेटशास्त्रविदांवरै ॥

एक देश से दूसरे देश में [जैसे भारत से ईरान, यूरोप आदि],ऐसे ही एक द्वीप से दूसरे द्वीप में [जैसे भारत से अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि], तथा एक लोक से दूसरे लोक में [जैसे पृथ्वी से चन्द्र, बुध, शुक्र आदि] आकाश मार्ग से जाने की क्षमता रखता है, आकाश में विचरण के प्रतिपादक शास्त्रों के श्रेष्ठ जानकारों ने उसे 'विमान' कहा है।

इससे स्पष्ट है, प्राचीन भारत मे लोक लोकान्तरो में जाने के साधनों की जानकारी अवश्य रही थी, इसी कारण ग्रन्थ में तारा ग्रहो आदि की कक्षा सन्धियो में होने वाली विपत्तियो से विमानों को बचाने केलिये विविध उपायो का वर्णन किया गया उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त दिशासूचक, दूरवीक्षण, दूरीमापक, गतिमापक, गतिपरिवर्त्तक आदि विविध विमान सम्बन्धी उपकरणों का विस्तृत वर्णन और निर्माण विधि का स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

ग्रन्थ के लिये खोज और उसकी प्राप्ति— श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक को ऋषि दयानन्द के प्राचीन भारत की गौरवपूर्ण स्थिति के द्योतक लेखों को देखकर यह प्रेरणा प्राप्त हुई, कि यदि यह सत्य है, तो इस विषय के ग्रन्थ भारत में अवश्य कहीं छिपे पडे रह सकते हैं। श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी को मैं बाल्यकाल से जानता हूं, आप अत्यधिक विद्याव्यसनी एव साहित्यसेवी हैं, आपके लिखे पचासों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, इसी साहित्य निर्माण की धुन मे सलग्न एव आकर्षण के कारण आपने अपने आपको ससार धर्म से अलग्न रक्खा, और आपने ब्रह्मचर्य से ही सन्यास की दीक्षा ले ली। जीवन के इस लम्बे काल में बराबर आप इस खोज में रहे, कि इस विषय का कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हो सके। 'जिन खोजा तिन पाइया' के अनुसार आखिर समस्त भारत का भ्रमण करते आप इस ग्रन्थ के प्राप्त करने मे सफल हुए।

श्री स्वामी जी ने भूमिका आदि मे ग्रन्थ प्राप्ति का विस्तृत तथा स्पष्ट वर्णन नहीं किया है कि जितने स्थानों से यह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ, उनमें कितना अ श कहांसे मिला है। प्रतिलिपि से यह भी स्पष्ट नही होता कि मूल हस्तलेख कब का लिखा हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में यह भी स्पष्ट नहीं होता, कि कितना भाग भारद्वाज ऋषि का है और कितना ग्रन्थ लेखकों का। पीछे हमने निर्देश किया है कि दो सूत्र 'यन्त्र-सर्वस्व' के नाम पर उद्धरणरूप में दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त लगभग २६ स्थलों पर 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ को उद्धरणरूप मे प्रस्तुत किया गया है, जो समस्त पद्यमय है। इससे यह तो प्रतीत होता है कि भारद्वाज ऋषि का 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ सूत्र और पद्य उभयात्मक रहा होगा, परन्तु इस समस्त ग्रन्थ में यह पता नहीं लगता, कि किसी भी आचार्य के ग्रन्थ का उद्धरण भाग कहां तक समाप्त होता है। इस लिये यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे कितना भाग भारद्वाज ऋषि का और कितना ग्रन्थ लेखक आचार्यों का है।

वृत्तिकार बोधानन्द यति—भरद्वाज ऋषि के 'यन्त्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थ के इस 'वैमानिक प्रकरण' पर बोधानन्द यति की वृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुत देखा जाय तो ग्रन्थ का यह कलेवर और विषय का प्रतिपादन वृत्ति का ही रूप है। भरद्वाज ऋषिके केवल ३५ सूत्र और विभिन्न २६ स्थलो पर कतिपय पद्यो के उद्धरण हैं शेष समस्त भाग वृत्तिकार द्वारा सकलित अथवा व्याख्यात है। वृत्ति के सहयोग विना मूल का कुछ भी रहस्य समझा जाना अशक्य है।

सम्पादक महोदय ने वृत्तिकार के काल तथा अन्य अपेक्षित इतिवृत्त पर प्रकाश डालने का यत्न नही किया। वस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन आधुनिक रीति पर हो नहीं सका है, श्री स्वामी जी इस रूप में ही ऐसे महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ का उद्धार कर सके, इतने मात्र से वे समस्त विद्वज्जन व राष्ट्र के श्रेयोभाजन हैं, इसमें सन्देह नही। विद्वानो को प्रयत्न करना चाहिये कि राष्ट्र-हित के लिये ग्रन्थ का उपयोग किया जा सके।

प्रत्येक विश्व विद्यालय, महाविद्यालय व पुस्तकालयो मे यह ग्रन्थ आवश्यक रूप से सग्राह्य है। ऐसे अद्भुत ग्रन्थ को प्रकाशित करके सभी सम्बद्धजन धन्यवाद के पात्र हैं।

उदयवीरसिंह शास्त्री
गाजियाबाद

वीर सन्देश

वीर सन्देश मासिक पत्र आर्य समाज बहजोई से सार्वदेशिक आर्य वीर दल का मुख-पत्र २० × ३० के साइज मे प्रकाशित होता है यह पत्र निरतर प्रगति कर रहा है, यह पत्र आर्य समाजो एव आर्य वीर दलो के लिये अत्युत्तम पत्र है।

इसके साधारण पृष्ठ ४४ हैं और विशेषाक जो दीपावली पर प्रकाशित हुआ है उसकी पृष्ठ स० १०० है। वीर सन्देश के अक सुरुचि-पूर्ण एव सामाजिक उत्थान तथा आधुनिक ढग की पाठ्य सामग्री से सुसज्जित रहते हैं।

आर्यसमाज एव आर्य वीर दल इस पत्र को मगा कर लाभ उठावे।

प्राप्ति स्वीकार

नाम पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	मूल्य
१—महर्षि दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ और प्रवचन	श्री प० युधिष्ठिर जी मीमांसक	प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान ४६४३, रेगरपुरा गली न० ४०, करोलबाग-दिल्ली	।=)
२—छान्दोग्योपनिषद् कथामाला	श्री स्वा० ब्रह्ममुनिजी, परिव्राजक	स्वा० ब्रह्ममुनिजी,	३)
३—प्रकाश भजन सत्सग	श्री प्रकाशचन्द्रजी "कविरत्न" अजमेर	प्रकाशिका—पुष्पादेवी	।।=)
४—दयानन्द सस्मरण			

सम्पादक का डाक

चन्द्र लोक जवाहर नगर,
दिल्ली-६
ता० ४-३-३०

प्रिय शास्त्री जी,

नमस्ते ।

मैंने सार्वदेशिक के नए अंक में आप का पंचसूत्री कार्यक्रम सम्बन्धी लेख पढ़ा, वह मुझे बहुत ही अच्छा लगा, मानो मेरे विचारो का प्रतिबिम्ब है अथवा यूं कहा जासकता है कि मुझे आप के विचारो का प्रतिबिम्ब अपने अन्दर दिखाई दिया। इस विचारधारा को कार्यान्वित करने से ही आर्यसमाज का भविष्य गौरवशाली हो सकता है।

आपका
इन्द्र विद्यावाचस्पति

५—मेहर स्वाध्याय सार	ले० मेहरसिंहजी भाटिया,	लेखक और प्रकाशक स्थान १०० सी, तीमारपुर, देहली—८	
६—द्रौपदी सत्यभामा-संवाद,	अनुवादक — आचार्य उदयवीरजी शास्त्री,	श्री कन्हैयालाल वैदिक प्रकाशन निधि गाजियाबाद	
७—बाल जीवन सोपान	लेखक व प्रकाशक स्वा० ब्रह्ममुनि परिव्राजक गुरुकुल कांगड़ी		१।।=)
८—अध्यात्म रोगो की चिकित्सा,	पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति,	प्रकाशक — पं० धर्मपालजी, स० मु० गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार,	२।।)
९—बालबोध किंवा सुखसार	ले० बाल "सोम"	प्रकाशक — मुरारीकृष्ण "डावर" डेलर्स, सदर मेरठ,	≡)

स्वाध्याय का पृष्ठ

आर्यसमाज का तीसरा नियम

प्रकृत विषय में आर्यसमाज का तृतीय नियम विशेष महत्त्व रखता है। 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है। वेद का पढना, पढाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

अनेक कर्म गौण धर्म होते हैं जैसे दया, दान, क्षमा परोपकार आदि। ये धर्म के अ ग कहलाते हैं परन्तु मुख्य धर्म तो एक ही होता है। महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक आर्य का यह धर्म ही नही अपितु परम धर्म बतलाया है कि वह वेद पढे और पढाए। जो पढने-पढ़ाने का सामर्थ्य न रखता हो वह कम से कम वेद की कथा, व्याख्यान आदि सुने और दूसरो को सुनावे। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति को वेद के पढने, पढाने और सुनने-सुनाने को परमधर्म समझ कर लग जाना चाहिए। क्यो लग जाना चाहिए ? इसका उत्तर नियमो के प्रारम्भ मे ही लिख दिया 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है।"

क्या यह नियम अपूर्ण है ?

यह प्रश्न इसलिए उत्पन्न हुआ कि कुछ लोगो ने अज्ञानवश 'वेद का पढ़ना और सुनना-सुनाना' के आगे (तथा तदनुसार आचरण करना) भी जोडना आरभ कर दिया है। बात ठीक है। पढ़ना, पढाना और सुनना सुनाना बेकार है यदि उस पर आचरण ही न करना हो तो।

जिस महर्षि ने यह नियम बनाया उसी ने व्यवहारभानु मे विद्या प्राप्ति के ४ प्रकार लिखे हैं।

चतुर्भि प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति" (महाभाष्य १।१।१।१) आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहार काल। व्यवहार काल उसको कहते हैं कि जब अपनी आत्मा मे सत्य विद्या होती है तब यह करना, यह न करना जो ठीक हो वैसा ही आचरण करना, इसका स्वय बोध हो जाता है।

इनके अतिरिक्त अन्य भी विद्या प्राप्ति के लिए ४ कर्म हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार। साक्षात्कार उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने, विचारे और निश्चय किये हैं उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारो की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या प्राप्ति के साधन हैं।

वेद के पढने का इतना ही अर्थ नही कि शब्द और अर्थ का ज्ञान कर लिया। व्यवहार काल और साक्षात्कार भी पढाई में ही सम्मिलित हैं। (आचार्य भगवानदेव,
सुधारक (वेद विशेषाङ्क)
सम्पादकीय लेख का अंश)

ईसाई धर्म प्रचार निरोध आन्दोलन

भारत मां के पुत्रों को शत्रु बनाने का षड़यन्त्र समाप्त हो

छल फरेब और घृणित उपायों से ईसाई पादरी अपना कुचक्र चला रहे हैं।

- देश धर्म और संस्कृति का अपमान सहना कब समाप्त होगा।

आर्य नेता श्री कालीचरण जी आर्य का आह्वान

(१)

विदेशी मिशनरियो के अनेक प्रचारक केन्द्रो की जाच पडताल और उनके द्वारा अपनाए जा रहे घृणित अनैतिक उपायों की जानकारी स्वयमेव प्राप्त कर कर्मठ आर्य नेता श्री कालीचरण जी आर्य आसाम, बिहार, राजस्थान मध्य प्रदेश की समस्याओं का वहा जा ज्ञान प्राप्त कर देहली लौट आये।

आपने बताया कि "आज देश के अनेक केन्द्रों में ईसाई पादरियों के काले कारनामे सकट के भीषण बादल बनकर राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर चुके हैं। ईसाई पादरी छल से धोखे से सभी कूटनीतिक उपायो से लाभ उठा कर निरतर राम और कृष्ण की सन्तानो को ईसा का भक्त बना भारत मां, भारतीय सस्कृति और धर्म का शत्रु बनाते जा रहे हैं।

आपने कहा कि "मैंने अनुभव किया है कि वन वासियों की अज्ञानता और निर्धनता के कारण इनके हथकडे सफल होते रहे हैं। किन्तु अब जहा २ सार्वदेशिक सभा ने अपने प्रचार कैम्प आरम्भ कर दिये हैं वहां इनकी चालें विफल हो रही हैं। वन वासी अपने पुरातन धर्म, सस्कृति से प्रेम करते हैं पर उन्हें कभी कभी धमका कर कभी बहका कर सताकर, दबाकर और उनकी बेवसी का लाभ उठाकर उन्हें ईसाइयत में शामिल कर लिया जाता है।

आपने बताया कि अगर देशवासी अपना थोडा सा भी ध्यान इस समस्या की ओर दे तो मा के पुत्रो को उसका शत्रु होने से बचाया जा सकता है। और जो विषप्रवाह भारत के गौरव और स्वतन्त्रता को समाप्त करने के लिये फैलाया जा रहा है उसे रोका जा सकता है।

वन वासियो की वास्तविक समस्या का वर्णन करते हुये आर्य नेता ने बताया कि उन क्षेत्रों में विद्यालयों और हस्पतालों की स्थापना करना आवश्यक है क्योंकि इन्ही दोनों साधनों के द्वारा ईसाई पादरी सफलता प्राप्त करते हैं।

वहां अच्छे निर्भीक त्यागी कार्यकर्ताओं को भी बड़ी संख्या मे भेजना परमावश्यक हैं जो सत्य के बल पर ईसाई पादरियो के छल प्रपच से वन वासियों की रक्षा कर सके ।

भारत के धनीमानी वर्ग और युवको को आह्वान करते हुये आर्य नेता ने कहा कि "हमारे घर की सम्पत्ति लुट रही है । मा की गोदी से लाखो को बलात छीना जा रहा है । राम कृष्ण की पावन सस्कृति और सत्यधर्म को पैरो तले रोंद हमे चुनौती दी जा रही है । धर्म सस्कृति और मा का यह अपमान हम कब तक सहते रहेंगे? आर्य जाति के वीरो का रक्त क्या शीतल होगयाहै जो सर्वनाश की इनलहरो का सामना करने की तैयारी नही हो रही ?

आपने कहा कि सोने का समय बीत गया । सिर पर पाप, अज्ञान और देश द्रोह का प्रतीक शत्रु मडरा रहा है । आज कर्तव्य की पुकार है कि हम अपने पूरे बल के साथ ईसाइयत के अ धड को रोकने के लिये चट्टान बनकर खड़े हो जाय और एक भी व्यक्ति को ईसाइयो के चगुल में न फसने दे । जो फस चुके है उन्हे निकाले और अपने कर्तव्य का पालन करें ।

आपने कहा कि "आर्य जन बिहार, आसाम राजस्थान, आन्ध्र, आदि के निर्धन दीन वन वासी आज आपको पुकार रहे है । आप इनकी पुकार सुनिये और उन्हें ईसाइयत की ज्वाला में जलने से बचाने लिये सकल्प लीजिये ।

जो कर सकते हों वह कीजिये, जो भेज सकते हों भेजिये, देरी का समय नहीं घर उजड रहा है, एक एक पल की देरी विनाश का रूप बन रही है अपना कर्तव्य आज ही निश्चित कर राम कृष्ण की सन्तानो को बचाने के लिये जो भी कर सकते हो कीजिये ।

(२)

ईसाई निरोध आन्दोलन के संचालनार्थ पं० सुखदेव शास्त्री को सहयोग दीजिए ।

आर्य जनता को भली भांति ज्ञात ही है कि आर्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में ईसाई निरोध आन्दोलन का कार्य बिहार, राजस्थान, आसाम आन्ध्र आदि प्रदेशों मे प्रभाव शाली रूप मे चलाया जा रहा है ।

इस कार्य की सफलता के लिए जन मत जागृत कर जनता का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए सभा को आर्य समाज के पुराने कर्मठ कार्य कर्ता व आर्य वीर दल तथा हिन्दी रक्षा आन्दोलन के ख्याति प्राप्त श्री प० सुखदेव जी शास्त्री की सेवाए प्राप्त हो गई हैं ।

अत आर्य समाजो से प्रार्थना है कि शास्त्री जी के पहुँचने पर उन्हे अधिक से अधिक धन व सभी प्रकार का सहयोग देने की कृपा करे ताकि हम विदेशी पादरियों के कुचक्रो से राम कृष्ण की सतानो की रक्षा करने मे समर्थ हो सके ।

कालीचरण आर्य
उपाध्यक्ष
अराष्ट्रिय ईसाई प्रचार निरोध समिति
व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
दिल्ली

ईसाई निरोध आन्दोलन में धन भेजिये

आर्य जनता को ईसाइयत के भयंकर संकट का ज्ञान भली भांति है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में ईसाई निरोध का महत्वपूर्ण कार्य छोटा नागपुर (बिहार), उड़ीसा, आन्ध्र, राजस्थान (बांसवाड़ा) आदि स्थानों पर अत्यंत प्रभावशाली रूप में हो रहा है। इस कार्य के लिए लाखों रुपयों की आवश्यकता है। हमारी प्रार्थना है कि प्रत्येक आर्य राम-कृष्ण का भक्त इस महान् राष्ट्रीय कार्य को संचालित करने के लिए जो भी सहयोग दे सके दे। भले ही आप १) भेजें पर भेजें अवश्य। आपकी आहुति इस यज्ञ में अवश्य पड़े, यह हमारी प्रार्थना है। सभा ने १) ५) १०) २५) १००) २५०) रु० के नोट इस कार्य के लिए छपवाये हैं जो स्थानीय आर्य समाजों व सार्वदेशिक सभा से प्राप्त हो सकते हैं।

पूर्णचन्द्र एडवोकेट	रघुवीरसिंह शास्त्री	कालीचरण आर्य
प्रधान	मन्त्री	उपाध्यक्ष

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

(पृष्ठ ६० का शेष)

हम आर्य जगत् और 'सार्वदेशिक' परिवार की ओर से समवेदना प्रकट करते और दिवगत आत्मा की सद्गति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

श्री पं० रामचन्द्र जी शर्मा

श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार के पूज्य पिता श्री प० रामचन्द्र जी शर्मा के निधन का समाचार देते हुए दुःख होता है। श्री शर्मा जी आर्यसमाज मे आने से पूर्व वन-विभाग मे एक उच्च राज कर्मचारी थे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की प्रेरणा पर वे सरकारी नौकरी छोड कर गुरुकुल कागडी की सेवा मे आये। उनका यह त्याग अनूठा और प्रशसनीय था विशेषत उन दिनो जब कि राजकीय सर्विस के प्रति लोगों का अत्यन्त आकर्षण रहता था। उन्होने अपने बच्चो को सुशिक्षित करने और आर्यसमाज के साचे मे ढालने का जो कार्य किया उस पर वे उचित रीति से अभिमान कर सकते थे। गुरुकुल कागडी और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ दोनो मे उन्होने मुख्यत अग्रेजी का अध्यापन करके अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को अपने इस चुनाव पर कभी खेद नही हुआ। वे अपने पीछे सुयोग्य पुत्रो पुत्रियो और नातियो से भरा पुरा परिवार छोड गए हैं। मृत्यु के समय उनकी आयु ६२ वर्ष थी। इस लम्बी आयु का कारण उनका निर्यमित और पुरुषार्थमय जीवन था।

परमात्मा उनकी आत्मा को सद्गति और उनके परिवार को उनके वियोग को सहन करने की क्षमता प्रदान करे।

मनुस्मृति का अपमान

पिछले दिनो (४ ३-६० को) लोक सभा मे रिपब्लिकन दल के एक सदस्य श्री गायकवाड ने मनुस्मृति के पन्ने फाड दिये। उनके इस कृत्य की घोर निंदा का होना स्वाभाविक था। अत ससद के उपस्थित सदस्यो मे से अनेक ने तथा ससद के उपाध्यक्ष श्री सरदार हुकमसिंह जी ने इस कृत्य की बडी निन्दा की और इस घटना को दुर्भाग्यपूर्ण बतलाया। यह प्रसग उस समय उपस्थित हुआ, जब श्री प० प्रकाशवीर शास्त्री द्वारा प्रस्तुत किये गए एक विधेयक पर बहस हो रही थी। अनुसूचित जन जातियो और अन्य पिछडे वर्गों को धार्मिक कारणो के अतिरिक्त अन्य कारणो से धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य न होना पडे, इस प्रकार का सरक्षण देना इस विधेयक का उद्देश्य था। हरिजनो पर हिन्दुओ की ओर से अत्याचार होते रहे हैं इस बात की चर्चा करते हुए श्री गायक वाड आवेश मे आकर अपने को भूलगए और उन्होने मनुस्मृति के पन्ने फाड डाले। उन्होने कहा—"हरिजनो पर होने वाले अत्याचारो का मूल कारण मनुस्मृति है।" मनुस्मृति मे जन्मगत जात पात को कोई समर्थन प्राप्त नही है। उसमे गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। आज हम भले ही गला फाड-फाड कर वर्ण व्यवस्था को मिटाने का प्रचार करें तबभी इस की आवश्यकता बनी रहेगी और इस की उपादेयता स्वीकार करनी पडेगी, जैसा कि देश-विदेश के बडे २ समाज शास्त्री स्वीकार कर रहे हैं। यह ठीक है कि वर्ण व्यवस्था के बिगड़ जाने से जन्म की जात-पात का प्रादुर्भाव

हुआ और इस के कारण दलित भाईयों पर अत्याचार हुए। परन्तु इस का उपाय वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाली मनुस्मृति वा स्वय वर्ण व्यवस्था का अपमान व विनाश नही अपितु जन्म की जात-पात के उन्मूलन द्वारा उसे विशुद्ध रूपदेना है।

मनुस्मृति की श्रेष्ठता और वरीयता अक्षुण्य है। यह मिटाये न मिट सकेगी। इस सम्बन्ध में कृतिपय विदेशीय, इतिहासकारों और दार्शनिको के विचार प्रस्तुत कर देना पर्याप्त है —

"Bible in India" मे अकित है कि "मनुस्मृति वह नीव है जिसपर मिश्र, यूनान, फारस, और रोम के विधान शास्त्रो की नीव रखी गई थी। मनु के प्रभाव की युरोप और अमेरिका में प्रतिदिन अनुभूति होती है।" प्रो० विलसन कहते हैं कि "हिन्दुओं के पास ऐसा विधान शास्त्र था जो समाज सगठन की उच्चतम स्थिति मे ही निर्मित हो सकता है।"

(मिलका भारत का इतिहास, वाल्युम दो—पृष्ठ २८२)

श्रीयुत कोल मैन बताने है "मनुस्मृति की शैली एक विशेष आभा से दीप्तिमान् और उसकी भाषा विधायको की भाषा का रूप लिए हुए है जिसके प्रति स्वत ही आदर भाव उत्पन्न हो जाता है। प्राणी मात्र की स्वतत्रता, रक्षा और राजाओ तक को कठोर अनुशासन में रखने के सम्बन्ध मे जो भाव व्यक्त किय गए हैं वे सचमुच ऊ चे हैं।"

(कोलमैन्स मैथोलौजी आफ दी हिन्दूज पृष्ट ८)

श्री डा० राबटसन कहते हैं "मनुस्मृति में प्रत्येक बात के सम्बन्ध में जो निर्णय किये गए हैं, वे न्याय के महान् और अकाट्य सिद्धान्तों पर आश्रित हैं जिन्हें मानवीय मस्तिष्क स्वीकार करता, और जिनके प्रति प्रत्येक युग और भूमण्डल के प्रत्येक देश में आदर भाव रखता है। जो व्यक्ति मनुस्मृति के किसी विशेष शीर्षक का अध्ययन करता है उसे विश्लेषण की सूक्ष्मता और सुन्दरता पर आश्चर्य हुए बिना नही रहता। अनेक स्थान तो उसमें ऐसे हैं, जिनकी कल्पना यूरोप के विधान शास्त्रियो को भी न हुई। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि मनुस्मृति के अनेक विधान जो बहुत श्रेष्ठ हैं, सृष्टि के आदि काल में बनाये गए थे।"

(डिस्क्वीजीशन कनूसरनिग इ डिया, परिशिष्ट पृ० २१७)

आर्य कुमार सभा किंग्जवे दिल्ली (रजि०)

आर्य कुमार सभा किंग्जवे दिल्ली कुमारों के चरित्र निर्माण के लिये स्तुत्य कार्य कर रही है।

इस सभा की स्थापना २४ अप्रैल १६३६ को श्री इकबाल राय जी द्वारा हुई थी। इसके वर्तमान सदस्य ११५ हैं। विनयनगर व हडसन लाइन में इसकी दो शाखाए चलती हैं। सभा का एक पुस्तकालय तथा वाचनालय विनयनगर में है। साथ ही वही सभा एक आर्य धर्मार्थ चिकित्सालय भी चला रही है। इसके द्वारा एक मासिक पत्रिका 'जीवन-सन्देश' भी निकाली जाती है। प्रारम्भ में यह हस्तलिखित होती थी अब, इसके अपने हिन्दी टाइपराइटर से टाइप की जाती है। निर्धन विद्यार्थियो को

हिन्दी टाइप सीखने का अवसर दिया जाता हैं। नवयुवको के बौद्धिक तथा चारित्रिक विकास के लिये समय समय पर विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिनका मुख्य अङ्ग जयन्तिया, त्योहार व विद्वानो के भाषण होते हैं। सभा की प्रेरणा पर २३ सदस्य सेंट जान एम्बुलेंस की प्राथमिक सहायता परीक्षा पास कर चुके हैं। निर्धनो व विधवाओ को सहायता दी जाती हैं और इस कार्य में लगभग १३०६ रु० व्यय होचुके हैं। समय २ पर बाढ़ पीड़ितों की सहायता भी की जाती रही है और हिन्दी-आन्दोलन कार्य पर भी व्यय किया गया। धार्मिक परीक्षाओ व वर्ष में दो बार आर्यो-जनों द्वारा धर्म प्रचार किया जाता है। स्थापना दिवस के अवसर पर कथा, व खेल इत्यादि अन्य रोचक कार्य-क्रमो द्वारा प्रचार कार्य होता है। इस बार स्थापना दिवस श्री अटलबिहारी जी वाजपेयी की अध्यक्षता में मनाया गया। प्रचार कार्य का मुख्य अंग सभा का अपना प्रकाशन विभाग है। सभा वर्ष में चार प्रकाशन निकालती है। अब तक ऐसे १७ प्रकाशन निकल चुके हैं। प्रमुख आर्य विद्वानों ने अपनी रचनाए देकर इस विभाग के विकास में भाग लिया है। प्रकाशनों में मुख्य मुख्य, "बलिदान का राष्ट्रीय महत्त्व", "अनमोल मोती", "मुक्ति सोपान "नभ के तारे", "गुरु-दक्षिणा इत्यादि हैं। आर्य सज्जनों को ऐसे ट्रैक्ट मगा कर अवश्यमेव इस प्रचार कार्य में भाग लेना चाहिये। सभा के प्रधान श्री रमेश कुमार, चिकित्सालय सहायक श्री मनोहरलाल, मुद्रण कार्यकर्ता श्री रामलाल तथा उनके सहयोगी सर्वात्मना सभा की उन्नति में सलग्न हैं। हम इस सभा की उन्नति और अभिवृद्धि की कामना करते हैं।

"दो आर्य विद्वान पुरस्कृत"

उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने श्री स्वा० ब्रह्ममुनि जी और श्री प० इन्द्र विद्या-वाचस्पति जी को पाच पांच सौ रुपये के पुरस्कारों से पुरस्कृत किया है। श्री स्वा० ब्रह्ममुनि जी को अपने महान् ग्रन्थ "बृहद् विमान शास्त्र" पर और श्री प० इन्द्र विद्या वाचस्पति को "भारतीय सस्कृति का प्रवाह" नामक ग्रन्थ पर ये राशिया प्राप्त होगी। इस सम्मानपर हम दोनो महानुभावों को सार्वदेशिक' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई देते हैं। 'बृहद विमान शास्त्र' सार्व० आर्य प्रति० सभा का प्रकाशन है। अपने इस प्रकाशन पर सभा उचित रीति से अत्यन्त सन्तोष अनुभव कर सकती है। श्री स्वामी जी जिस मनोयोग और परिश्रम से आर्य समाज के श्रेष्ठ साहित्य में वृद्धि करके उसे अलकृत कर रहे हैं वह स्तुत्य है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की दिनांक २७-३-६० की अन्तरग बैठक के निश्चयानुसार सभा का आगामी साधारण अधिवेशन २६ जून १९६० को दिल्ली में होगा। जिन प्रान्तीय सभाओं के सदस्यों की सूचियाँ सभा के कार्यालय में नहीं भेजी गई है वे शीघ्र से शीघ्र भिजवा दे जिससे नियत अवधि के भीतर विज्ञापन भेजा जा सके।

'सार्वदेशिक सभा को एक और अनुकरणीय दान'

पीलवा (राजस्थान) के श्री प० मूलचन्द बजरंग लाल जी ने ५०००) का दान वेद प्रचारार्थ सार्व० आर्यप्रति० सभा को देकर अपने धर्मप्रेम और औदार्य का सुन्दर परिचय दिया है। श्री मूलचन्द जी आर्यसमाज के अनन्य प्रेमी है और परिवार वाले व्यक्ति हैं। इस दान के लिए निश्चय ही वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस प्रकार के दान जहा धन के सदुपयोगके सूचकहैं वहा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रति आर्यजनों की निष्ठा के भी द्योतक हैं। हम सार्वदेशिकके पाठकोंके समक्ष इन दानी महानुभाव का सक्षिप्त परिचय अगले अक में देने का प्रयत्न करेगें।

गुरुकुल कांगड़ी का हीरक जयन्ती महोत्सव

आगामी ६ से १३ अप्रैल तक गुरुकुल कागडी का हीरक जयन्ती महोत्सव मनाया जायेगा। इस महोत्सव में आर्यजनो को देश और आर्यसमाज के महान नेताओ, विद्वानो, सन्यासी महानुभावों, उपदेशको, और विशिष्ट जनो के दर्शन करने और उनके भाषणो और व्याख्यानो को सुनने का सुअवसर प्राप्त होगा। अत उन्हे बहु सख्या में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिये। इस अवसर पर उन्हें अपनी प्रिय सस्था की गतिविधियों को भी अपनी आंखों से देखने का अवसर प्राप्त होगा जो अपने अस्तित्व के गौरवपूर्ण ६०वर्ष व्यतीत कर रही है और जिसने देश और विदेश के शिक्षा जगत में क्रान्तिकारी एव प्रेरणाप्रद आदर्श प्रस्तुत करके आर्य समाज के इतिहास को गौरवान्वित करने का श्रेय प्राप्त किया है।

आर्य शिक्षा सम्मेलन

२६ जनवरी ६० को दयानन्द भवन दिल्ली में सार्वदेशिक विद्यार्य सभा के तत्वावधान में आर्य शिक्षा सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का सभापतित्व सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्रीयुत बा० पूर्णचन्द्र जी ने और उद्घाटन विद्यार्य सभा के कार्य कर्त्ता प्रधान श्री प० भीमसेन जी विद्यालकार ने किया। सम्मेलन में दिल्ली नगर तथा सार्वदेशिक सभा की बैठको के लिए आए हुए बाहर के अनेक आर्य विद्वानो, शिक्षाविज्ञो तथा आर्य शिक्षण सस्थाओंके मुख्याध्यापको एव आचार्यों ने भाग लिया। सम्मेलन में कई प्रस्ताव पारित हुए। इस सम्मेलन का आयोजन विद्यार्य सभा के मन्त्री श्री प० धर्मवीर जी वेदालकार तथा कार्यकारिणी के सदस्य श्री देवराज चड्ढा ने किया था। सम्मेलन बडा सफल रहा जिस की विस्तृत कार्यवाही सार्वदेशिक के आगामी अक में प्रस्तुत की जायगी।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

ओ३म्

हीरक जयन्ती महोत्सव

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आर्य जनता, शिक्षा-प्रेमी सज्जनों तथा धर्मपरायण जिज्ञासुओं के लिए यह विशेष हर्ष का समाचार है कि

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

अपने जीवन के ६० वर्ष समाप्त करके ६१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है।

इस उपलक्ष्य में ६ से १३ एप्रिल १६६० वैशाखी के पुण्य अवसर पर

हीरक जयन्ती महोत्सव

मनाने का आयोजन किया गया है। इस मङ्गलोत्सव पर अनेक सम्मेलन होंगे। देश के प्रसिद्ध विद्वान् पधारेंगे। उच्चकोटि के नेताओं के भाषण होंगे। गण्यमान्य महात्माओं के प्रवचन होंगे। अभी से इस उत्सव में भाग लेने का कार्यक्रम बना लेना चाहिये। ऐसे शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्धक उत्सवों मे भाग लेने का अवसर कभी-कभी प्राप्त होता है। इससे लाभ उठाना चाहिए। समाज की सर्वतोमुखी जागृति का यह अपूर्व अवसर होगा।

हम हैं आपके —

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
आचार्य

इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता

वार्षिक मूल्य ६)　　　　　　　　　　विदेश से वार्षिक १२ शिलिङ्ग या ८)

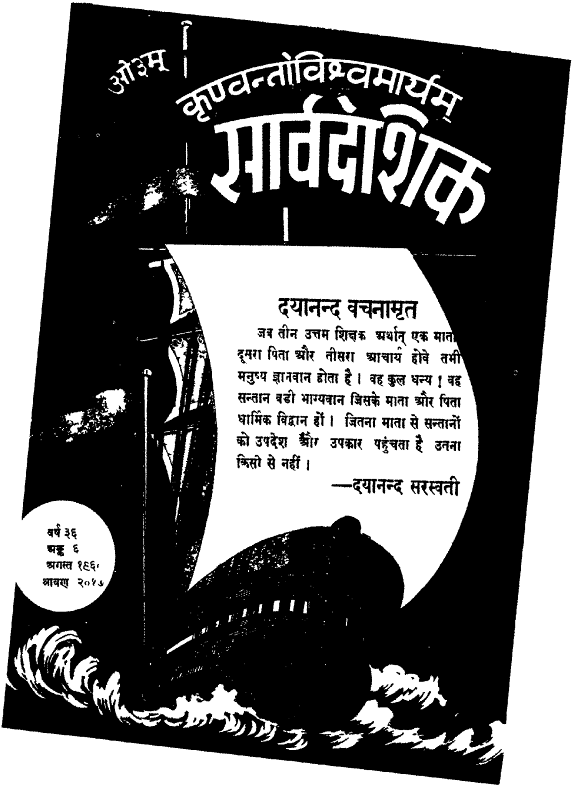
सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५९

विषय सूची

सम्पादक, सभा मन्त्री—रघुवीरसिंह शास्त्री,　　　　सहायक सम्पादक—रघुनाथ प्रसाद पाठक

Regd No D-51

सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज दिल्ली—७ में छपकर रघुनाथ प्रसाद जी पाठक प्रिंटर और पब्लिशर के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित।



ओ३म्

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्

सार्वदेशिक

दयानन्द वचनामृत

जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बडी भाग्यवान जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उनना किसी से नहीं।

—दयानन्द सरस्वती

वर्ष ३६
अङ्क ६
अगस्त १९६०
श्रावण २०१७

वार्षिक मूल्य ६)　　　　　　　　विदेश से वार्षिक १२ शिलिङ्ग वा ८)

सृष्टि सम्वत् १६७२६४६०६०

कहां ? क्या ?? किसका ???

सम्पादक, सभा मन्त्री—रघुवीरसिंह शास्त्री　　　　सहायक सम्पादक—रघुनाथ प्रसाद पाठक

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

(सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष ३६ } अगस्त १९६०, श्रावण २०१७ वि०, दयानन्दाब्द १३६ { अङ्क ६

वैदिक प्रार्थना

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४९ । मं० २ ॥

भावार्थ -(सं गच्छध्वं) देखो, परमेश्वर हम सबों के लिए धर्म का उपदेश करता है कि, हे मनुष्य लोगो ! जो पक्षपात रहित, न्याय, सत्याचरण से युक्त धर्म है, तुम लोग उसी को ग्रहण करो, उससे विपरीत कभी मत चलो, किन्तु उसी की प्राप्ति के लिए विरोध को छोड़के परस्पर सम्मति में रहो, जिससे तुम्हारा उत्तम सुख सब दिन बढ़ता जाय और किसी प्रकार का दुःख न हो । (सं वदध्वं) तुम लोग विरुद्ध वाद को छोड़ के परस्पर अर्थात आपस में प्रीति के साथ पढ़ना पढ़ाना, प्रश्न उत्तर सहित संवाद करो, तुम्हारी सत्यविद्या नित्य बढ़ती रहे । (सं वो मनांसि जानताम्) तुम लोग अपने यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो, जिससे तुम्हारा मन प्रकाशयुक्त होकर पुरुषार्थ को नित्य बढ़ावे, जिससे तुम लोग ज्ञानी होके नित्य आनन्द में बने रहो । और तुम लोगों को धर्म का ही सेवन करना चाहिये, अधर्म का नहीं । (देवा भागं य०) जैसे पक्षपात रहित धर्मात्मा विद्वान् लोग वेद रीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करो । क्योंकि धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है—एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा और तीसरा परमेश्वर की कही वेद विद्या को जानने से ही मनुष्यों को सत्य असत्य का यथावत् बोध होता है अन्यथा नहीं ॥

सम्पादकीय

श्रावणी का सन्देश

महर्षि दयानन्द ने अपने मन्तव्य, प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यक्रम का आधार वेद घोषित किया और आर्यसमाज के तीसरे नियम मे स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया कि "वेद का पढना-पढाना तथा सुनना-सुनाना सब आर्यो का परमधर्म है।' ऋषि के आगमन से पहले हिन्दू अथवा सनातनधर्मी कहलाने वाले सम्प्रदाय मे जो त्रुटिया, दुर्बलताये तथा पाखण्ड-आडम्बर प्रविष्ट हो गये थे, उनका एकमात्र मुख्य कारण यही था कि उस सम्प्रदाय का वेद से सम्बन्ध टूट चुका था। यद्यपि कहने को वह वेदानुयायी था तथा वैदिक शास्त्रो पर आस्था रखता था, परन्तु उसके मत में कही भी वेदानुकूलता न रह गयी थी। सस्कृत भाषा तथा शास्त्रो के तथाकथित अनेको धुरन्धर विद्वान् थे, परन्तु वेद का पठन-पाठन सर्वथा छूट चुका था और उसके सम्बन्ध मे उनका ज्ञान शून्य था। इस विषम स्थिति मे पडे वेदविमुख समाज तथा धर्म का उद्धार करने के लिये ऋषि ने उनका मु ह वेद की ओर किया। उन्होने कहा कि इस अविद्यान्धकार का विनाश वैदिक ज्ञान की प्रचण्ड ज्योति से ही हो सकता है।

अपने प्रवर्तक आचार्य के इस मन्तव्य को आर्यसमाज ने भी स्वीकार किया और उसके उत्तराधिकारी के रूप मे वेद के प्रचार को अपने कार्यक्रम का प्रमुख अङ्ग बनाया। इसी उद्देश्य से गुरुकुल-विद्यालय आदि अनेक सस्थाये खोली गयी जिनमें भारी सख्या मे प्रविष्ट आर्य सन्तानो को वेद तथा सस्कृत की उच्च शिक्षा दी जाने लगी। जिन वर्गों के लिये जन्मगत भेदभाव के कारण सनातनधर्मी पाठशालाओ के द्वारो के भीतर प्रवेश निषिद्ध था, उनको भी यथेष्ट रूप मे वैदिक विद्या के ग्रहण का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। बहुत वर्षों तक उन सस्थाओ ने वेद के अध्ययन अध्यापन की दिशा मे बडी सफल प्रगति की, सैकडो विद्वान् प्रचारक स्नातक समाज को दिये। इन सस्थाओ का वह सुनहरा युग था, इनकी एक निराली शान थी, अपूर्व प्रतिष्ठा तथा स्पृहणीय लोकप्रियता इन्हे प्राप्त थी। मानो सारे जनमन को इन्होने जीत लिया था। वेद, वैदिक सिद्धान्तो तथा सस्कृत प्रचार-प्रसार का यह आन्दोलन एक प्रबल अभियान के रूपमें चलता रहा। न केवल सस्थाये ही इस अभियान का केन्द्र बनी हुई थी, प्रत्युत व्यक्तिगत रूपेण प्रत्येक आर्य पर इसकी प्रतिक्रिया देखी जा सकती थी। सब के मन मे वेद तथा शास्त्रो के स्वाध्याय की एक अथक लगन थी। क्योकि प्रत्येक आर्य को प्रतिक्षण विरोधियो के साथ वाद-विवाद मे उलझने का प्रसग रहता था, अत उसकी मनोदशा युद्ध क्षेत्र मे प्रविष्ट सैनिको की सी बनी रहती थी और वह हर समय किसी भी आक्रमण का उत्तर देने अथवा आत्मरक्षा के लिये शस्त्रसज्जित सा रहता था। स्वाध्याय की इस प्रवृत्ति का यह सुपरिणाम था कि खेत मे हल चलाने वाले साधारण किसान अथवा साधारण दुकानदार तक अध्ययन एव श्रवण के बाद यह पूरे शास्त्रार्थी बन

गये थे। प्राय प्रत्येक स्थान पर ऐसे आर्य सज्जन सुलभ थे कि जो पहले सर्वथा निरक्षर थे और पीछे आर्य समाज के सत्सग के प्रभाव से स्वाध्याय के बल पर इतने ऊचे उठे कि दर्शनों और वेदों तक में प्रवेश पा लिया और फलस्वरूप जो कोई भी दूसरे मत का प्रचारक इनके गाव या कस्बे में आ जाता था, झट उसे ललकार कर पछाड़ते थे। इनका इतना आतङ्क छा गया था कि दूसरे लोग उनसे बचकर निकलने में ही अपना हित समझते थे। यह है, कुछ समय पूर्व के आर्यों की वेद प्रचार सम्बन्धी प्रवृत्ति एव लगन का सुन्दर चित्र।

परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आज हमारी यह प्रवृत्ति बहुत शिथिल हो गयी है। वेद के विद्वान् प्रचारकों को उत्पन्न करने वाले सस्था रूपी कारखाने भी हतप्रभ से हो गये हैं। उनके विशाल भवन खाली पड़े हैं। उत्साह की बहुत कम मात्रा वहा पायी जाती है। साधारण आर्य जनता की भी यही दशा है। वेद के पठन-पाठन की प्रवृत्ति सर्वथा निरुद्ध सी प्रतीत होती है। उसका मुख्य कारण पश्चिमी आर्थिक एव औद्योगिक युग की प्रवृत्तियों का प्रसार है। वेद कोई पढ़े भी तो किस लिये ? वेदज्ञ को अर्थोपलब्धि की बात तो दूर, समाज में अपने लिए सम्मान का भी स्थान नही है। धार्मिक साहित्य के प्रति अभिरुचि बिलकुल नहीं रही, इसीलिए उसके प्रकाशकों तथा प्रचारकों की स्थिति भी डांवांडोल हो रही है। यह बात चाहे कटु है, पर है सत्य कि आर्य समाज की वेद प्रचार की भावना शिथिल हो रही है, व्यापारिक मनोवृत्ति छा रही है। धार्मिक विषयों को भी बाजार भाव से आंका जाता है। हमारे उत्सवों की वेदि तक इस दुर्बलता का ग्रास बन रही है।

अब हमारा श्रावणी पर्व उपस्थित है, सारे आर्य जगत् में वेद-प्रचार सप्ताह मनाया जायगा। इस सम्बन्ध में यही निवेदन है कि वेद सम्बन्धी यह पर्व भी निरी प्रथा-पूर्ति के रूप में मनाया गया तो निष्प्राण रूढि हो जायगा और केवल लकीर पीटने वाली कहावत बन जायगी। इस पर्व से प्रत्येक आर्य को एक प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिलनी चाहिए, उसका मुह वेद की ओर मुड़ना चाहिए। आगामी वर्ष भर के लिये वेद के अध्ययन तथा प्रचार की दशा में उसे अपना कोई निश्चित सकल्प बनाना चाहिये। यह ठीक है कि आर्यसमाज को विश्व, राष्ट्र, समाज तथा समय की प्रत्येक समस्या के समाधान के सबन्ध में सचेष्ट रहना चाहिये, परन्तु उसे यह मान कर चलना चाहिए कि उसके जीवन का मुख्य ध्येय वेद-प्रचार है। यदि सामान्य आर्य जनता का भी वेद से सम्बन्ध टूट गया तो फिर एक सनातन धर्मी तथा एक आर्यसामाजिक में कोई अन्तर न रह जायगा और वे सारी त्रुटिया तथा दुर्बलतायें हमें भी घेर लेगी। अत श्रावणी पर्व का यह सन्देश प्रत्येक आर्य को अपने मानस-पटल पर अकित कर लेना चाहिये—"वेद का पढ़ना-पढ़ाना तथा सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

रघुवीरसिंह शास्त्री

❀　　❀

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय

सार्वजनिक मार्ग पर स्थित मस्जिद के सामने से वाद्य वादन सहित सामाजिक अथवा धार्मिक जलूस निकालने का अधिकार न्यायपूर्ण है इस प्रकार का निर्णय २८-७-६०को प्रदानकर तथा छोटी अदालत के निर्णय का समर्थन कर अम्बिका नगर (अहमद नगर) के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश श्री डी एम अणे ने मुसल-मानों की ओर से प्रस्तुत अपील व्यय सहित अस्वीकार कर दी है। सन् १९५७ में गणेश चतुर्थी के दिन हिन्दुओं के बाजे सहित जलूस को मस्जिद के सामने रोक दिया गया था। छोटी अदालत ने २९-८-५८ को हिन्दुओं के अधिकार को मान्यता दी थी तब मुसलमानों की ओर से अपील की गई थी

इस्लाम और ईसाइयत के बीच की खाड़ी

न्यूयार्क टाइम्ज के १४ मार्च ६० के अ क में अमेरिकन पादरी डा० विली ग्राहम ने अफीका में लगभग २ मास पर्यन्त भ्रमण करके यह समाचार प्रकाशित कराया कि "अफ्रीका के निवासी ईसाई बनने के स्थान में मुसलमान अधिक सख्या में बनते जा रहे हैं।" इस प्रकार का एक समाचार लडन के ओब्जर्वर नामक पत्र के २० मार्च ६० के अंक में छपा था जिसमें बताया गया था कि अफ्रीका में ईसाइयत का प्रभाव कम और इस्लाम का प्रभाव बढता जा रहा है।

लडन के 'डेली टेलीग्राफ' पत्र में इस विषय पर बडी मनोरजक बहस हुई। यह सुझाव दिया गया कि ईसाइयत और इस्लाम दोनों को आपस में झगडने के स्थान में नास्तिकता और जडवाद के विरुद्ध मिलकर युद्ध करना चाहिए क्योंकि दोनों में अनेक बातों में आपस में समा-नता है, दोनों में मित्रता, आदर सहिष्णुता, घृणा, विरोध और खिचाव के सम्बन्ध भी रहे हैं। दोनों में से कोई भी एक दूसरे को न मिटा सका है और न मिटा सकेगा। ईसाई और मुसलमान दोनों ही 'ईसा' की उच्चता में विश्वास रखते हैं। फिर भी दोनो के मध्य एक बहुत बडी खाई है जिसके कारण दोनों का मिलना असम्भव नही तो दु साध्य अवश्य है। मुसलमान यह स्वीकार नही करते कि ईसा परमात्मा का बेटा था। वे पवित्रात्मा पिता और पुत्र की ईसाइयो की स्थापना को भी मिथ्या मानते हैं। मौलाना अलगजली ने इस आपत्ति का समाधान करते हुए लिखा कि बाइबिल के जिन स्थलों में ईसा के मानव-प्रेम का वर्णन है उनको शब्दश स्वीकार कर लेना चाहिए और जिन स्थलो में उसके देवत्व का वर्णन है। उसे अलङ्कार मानकर उनकी व्याख्या होनी चाहिए। (देखें इस्लाम और ईसाइयत विषयक अल गजली के सिद्धान्तो पर जे० विन्डरो स्वीट मैन की व्याख्या पुस्तक भाग २ वा० १ लटरवर्थ प्रेस लडन १९५५ पृ०२६७)ईसाई विद्वान इस सुझाव के अनुसार व्याख्याए करने भी लगे हैं। परन्तु वे मुसलमानों को शका का समाधान करने में समर्थ होसकेंगे इसमें सन्देह है। मुसलमानों की यह मान्यता है कि हमें ईसाइयों की अपेक्षा 'ईसा' का अधिक ठीक ज्ञान है अत ईसाई प्रचारक मुसलमानों को 'ईसा' विषयक अपनी

मिथ्या मान्यताओं के विषय मे आश्वास्त नही कर सकते। महर्षि दयानन्द ने तो बहुत पहले ही सत्यार्थप्रकाश के १३ वे समुल्लास मे ईसाइयत के अनेक लचर सिद्धान्तो का खण्डन करके पवित्रात्मा, पिता और पुत्र की मान्यता को मिथ्या और सृष्टिक्रम विरुद्ध प्रतिपादित कर दिया था।

श्रीयुत पं० विष्णुमित्र जी

वयोवृद्ध श्रीयुत प० विष्णुमित्र जी के निधन से आर्य समाज के एक संस्कृत तथा व्याकरण के उद्भट विद्वान का स्थान रिक्त हो गया है। श्रीयुत प० जी ने गुरुकुल कागडी तथा कन्या गुरुकुल देहरादून आदि २ संस्थाओं में वर्षों पर्य्यन्त संस्कृत अध्यापन का कार्य किया। उनका जीवन एक प्रकार से गुरुकुल सेवा मे ही व्यतीत हुआ। आर्य समाज और गुरुकुल उनकी अनथक सेवाओ के लिए चिर-पर्यन्त उनका ऋणी रहेगा। परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें। —रघुनाथप्रसाद पाठक

सार्वदेशिक आर्य वीर दल का कार्य समाप्त नहीं हुआ है।

ज्ञात हुआ है कि आर्य जगत् में यह भ्रम फैल रहा है कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य वीरदल का कार्य समाप्त कर दिया है। यह बात नितान्त असत्य है। तथ्य यह है कि आर्यवीर दल का कार्य १९२९ से ही इस सभा की प्रगतियों का मुख्य अग है। सभा की इच्छा और यत्न यह रहा है कि आर्यवीर दल अधिक से अधिक उपयोगी बने। परन्तु खेद है यह आर्य जगत में अभी तक वह स्थान न बना सका जो ३० वर्ष के इस लम्बे काल में इसे बनाना चाहिए था।

यह प्रश्न समय २ पर सभा के समक्ष प्रबल रूप में आता रहा और सभा इसके संगठन में आवश्यक परिवर्तन करती रही। परन्तु स्थिति बहुत आशाजनक न रही। आर्यसमाजों की शिकायत रही कि "दल" की उनके लिए कोई उपयोगिता नहीं है क्योंकि "दल" के प्रबन्ध और शासन में उनका हाथ नहीं है। आर्यवीर दल के संचालकों को शिकायत रही कि आर्य समाजों का उन्हें सहयोग नहीं मिलता।

प्रारम्भ में जब यह दल स्थापित हुआ था तो यह आर्यसमाजों के ही अधीन रहकर कार्य करता था। उसका उद्देश्य भी मुख्य रूप से सेवा सहायता ही था। बाद में आर्य समाजों के सीधे प्रबन्ध और शासन से दल मुक्त कर दिया गया और इसका मुख्य उद्देश्य युवकों में क्षात्र धर्म का प्रचार बन गया। इस परीक्षण का भी कोई विशेष सुफल सामने न आया।

सार्वदेशिक सभा समस्त स्थिति पर विचार करके आर्यवीर दल को ऐसा रूप देने के लिए प्रयत्नशील है जिससे कि आर्य जगत् में यह एक शक्ति बने, समाजें और प्रान्तीय सभाएं इसे उत्सुकता पूर्वक अपनायें और इसे जीवित-जाग्रत संस्था बनने की अवस्थायें उत्पन्न हों। इसके लिए आवश्यक होने पर इसके उद्देश्यों और नियमों में भी परिवर्तन करने पर सभा विचार कर रही है। सभा का "दल" को समाप्त करने का विचार नहीं है। सभा इसे उपयोगी और दृढ़ संस्था का रूप देने के लिए प्रयत्नशील है। इस प्रसंग में यह भी लिखना आवश्यक है कि श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी सभा की सेवा से त्यागपत्र दे कर मुक्त हो गये हैं। उनका अब आर्य वीर दल से कोई सम्बंध नहीं है। अब दल के रक्षा सचिव श्री मिहिरचन्द जी धीमान् तथा प्रधान संचालक श्री देशराज जी चौधरी हैं।

पंजाब की भाषा समस्या

इस सारे मास पंजाब में भाषा-समस्या के समाधान को लेकर बड़ी उथल-पुथल और दौड़धूप रही। ऐसे वातावरण में भांति-भांति की कल्पनाओं, अनुमानों तथा चर्चाओं का चलना स्वाभाविक था। विचित्र बात यह हुई जिस मार्ग पर सरकार गत

फरवरी मास से चलकर इस समस्या को निबटाना चाहती थी, वह उसने छोड़ दिया। वह मार्ग यह था कि इस प्रश्न को राजनीतिक दलदल से निकाल कर विशुद्ध सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक स्तर पर सुलझाया जाय। इसलिये दो शिक्षाशास्त्रियों की सद्भावना समिति नियुक्त की गयी। उस समिति के प्रतिवेदन पर विचार करके कोई सर्वसम्मत समाधान प्राप्त करने के लिये राज्यपाल महोदय की अध्यक्षता में एक २६ सदस्यीय समिति नियुक्त की गई। इसकी पहली बैठक गत मार्च में हुई तो सरकार की ओर से कहा गया कि अन्तिम निर्णय तक लगातार बैठकें होंगी। परन्तु उसके बाद भी मार्च तथा मई में दो बार बैठकें हो चुकी हैं।

इसी बीच न जाने सरकार का रवैया क्यों बदला और यह प्रश्न फिर उसने अपने हाथ में ले लिया। मुख्यमन्त्री श्री प्रतापसिंह कैरों ने नये-नये फार्मूले निकालने आरम्भ किये। इनसे गुत्थी और अधिक उलझ गयी तथा बड़ा ही अप्रिय विवाद उठ खड़ा हुआ। इस बीच सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति के अधिकारी भी सारी स्थिति का मुकाबला करने के लिये सतर्क एवं सचेष्ट रहे। आर्य समाज का पक्ष स्पष्ट है कि वह किसी भी ऐसे निर्णय को कदापि स्वीकार न करेगा जिसमें उसकी सहमति न हो या जो जबरदस्ती थोपा जाय। अब श्री प्रतापसिंह कैरों के फार्मूलों की चर्चा समाप्त हुई और यह प्रश्न फिर चक्कर काटकर राज्यपाल-समिति के विचारार्थ आ रहा है। आशा है कि यदि सद्भावना तथा विवेक से काम लिया गया तो इस समस्या का समुचित समाधान हो सकेगा। हमारा विचार है कि सरकार इस मामले में जितनी ढील बरत रही है, उतना ही यह पेचीदा बनता जा रहा है। अत उचित है कि तुरन्त राज्यपाल-समिति की बैठक बुलाकर इस दिशा में ठोस एवं गंभीर प्रयास किया जाय।

रघुवीरसिंह शास्त्री

पंजाब में आर्य कुमार संगठन

आर्य कुमार सभा पंजाब के तत्त्वावधान में दिल्ली, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश के आर्य युवक कार्यकर्ताओं का एक नैमित्तिक सम्मेलन रविवार १२ जून, १९६० को आर्य समाज नरवाना (संगरूर) में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में दिल्ली, रोहतक, हिसार महेंद्रगढ़, दादरी, नरवाना, लुधियाना, अंबाला, गुरदासपुर तथा धर्मशाला इत्यादि स्थानों के ५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

पर्याप्त विचार विमर्श के अनन्तर सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सीमाक्षेत्र—पंजाब, दिल्ली, हिमाचल-प्रदेश, जम्मू काश्मीर—में आर्य युवकों को संगठित करने के उद्देश्य से एक प्रांतीय संगठन की स्थापना की जाय। इस सगठन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निश्चय इस प्रकार है —

(क) इस संगठन का नाम पंजाब प्रांतीय आर्य कुमार परिषद् होगा।

(ख) सम्प्रति भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् द्वारा निश्चित प्रांतीय परिषदों का विधान ही इस परिषद् का विधान होगा।

(ग) परिषद् का प्रधान कार्यालय दयानन्द मठ, रोहतक में होगा तथा दिल्ली, रिवाड़ी, लुधियाना और पर्वतीय क्षेत्र के किसी एक उपयुक्त स्थान पर—चार उपकार्यालय स्थापित किए जाएँगे।

परिषद् का कार्य सुचारू रूपेण चलाने के लिए सम्मेलन ने अंतरिम काल के लिए (जब तक परिषद् का चुनाव विधिवत् रूप में स्वीकृत प्रतिनिधियों द्वारा नहीं होता) सर्वसम्मति से निम्न चुनाव सम्पन्न किया—

१ प्रधान—श्रद्धेय स्वामी सुरेन्द्रानन्द जी महाराज, दादरी (महेंद्रगढ़)

२. उपप्रधान—श्री परमानन्द जी वसु, अहीर कालेज, रिवाड़ी

सार्वदेशिक सभा का स्पष्टीकरण

कुछ पत्रों में निरन्तर कुछ दिनों से सार्वदेशिक सभा सम्बन्धी आरोप ववक्तव्य प्रकाशित हो रहे हैं जिससे भ्रान्ति पूर्ण वातावरण उत्पन्न होने की समावना है अत मैं अधिकृत रूप से कहना चाहता हूं कि यह आरोप निर्मूल हैं, सही स्थिति इस प्रकार है —

१—कहा गया है कि २४ मई १९५९ को सार्वदेशिक सभा के चुनाव में हरियाणा ग्रुप ने बोगस सदस्यों के आधार पर सभा पर कब्जा कर लिया, किन्तु सभी भली भांति जानते हैं कि जिन प्रतिनिधियों ने २४ मई ५९ का चुनाव किया वे प्रतिनिधि सन् १९५७ में श्री ला० रामगोपाल जी ने ही स्वीकार किए थे ? और वे स्वयं भी उन्हीं प्रतिनिधियों में थे।

५७ व ५८ के चुनाव में इन्हीं प्रतिनिधियों के द्वारा ही वे स्वयं मन्त्री चुने गए थे। यदि प्रतिनिधियों

---

३ — " देवीदयाल जी आर्य, खारी बावली, दिल्ली

४ उपप्रधान—(iii) श्री महाशय आशानन्द जी, आर्य समाज दाल बाजार, लुधियाना।

५ मन्त्री—श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु बी ए बी टी, नरवाना (संगरूर)

६. उपमन्त्री—" जगदीशमित्र जी, दयानन्द मठ, रोहतक

७. प्रचार मन्त्री—" कृष्ण जी, आर्य समाज, दाल बाजार, लुधियाना

८. साहित्य मन्त्री—" श्याम लाल जी एम ए २/३१, रूपनगर, दिल्ली

९. कोषाध्यक्ष—" जयदेव जी आर्य दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार

१०. लेखानिरीक्षक—श्री जगन्नाथ जी बी ए. एल एल बी, सी, ३२५, किदवई नगर, नई दिल्ली

इसके अतिरिक्त प्रांत के प्रत्येक जिले से एक २ दिल्ली क्षेत्र से ३ तथा ५ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अंतरंग सभा में चुना गया।

सम्मेलन ने अपने एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव में सार्वदेशिक सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का उनके क्रियात्मक सहयोग के लिए आभार प्रकट किया तथा आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब से भी सहयोग के लिए प्रार्थना की।

इस प्रकार अत्यंत ही उत्साहपूर्ण तथा आशाप्रद वातावरण में इस सम्मेलन के द्वारा प्रात में नवयुवक शक्ति को संगठित करने का सूत्रपात हुआ। आशा करनी चाहिए कि शीघ्र ही इसका सुफल सामने आयगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद का चुनाव

दिनाक १२-६-६० को आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण हैदराबाद की अन्तरंग व साधारण सभा श्री प० विनायकराव जी विद्यालंकार एम०पी० प्रधान सभा की अध्यक्षता में हिन्दी हाईस्कूल सिकन्दराबाद में संपन्न हुई। साधारण सभा में मराठवाड़ा, कर्नाटक और आन्ध्र से (५६) प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

बैठक में पिछले वर्ष का कार्य विवरण तथा आय व्यय प्रस्तुत होकर स्वीकृत हुए। अगले वर्ष के लिये ५८०००, का अनुमानिक आय-व्यय भी स्वीकार किया गया। तत्पश्चात् प्रचलित वर्ष के लिये प्रधान श्री पं० विनायकराव जी एम० पी० तथा मन्त्री श्री प० नरेन्द्रजी निर्वाचित हुए।

रघुनाथप्रसाद पाठक

ने सन् ५६ के चुनाव में श्री ला० रामगोपाल जी को मन्त्री न चुनकर श्री पं० रघुवीरसिंह जी को चुन लिया तो वे प्रतिनिधि एक दम बोगस कैसे बन गए ? यह आप स्वयं सोचें।

२—सार्वदेशिक सभा के वर्तमान २६ जून १६६० के चुनाव के सम्बन्ध में बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, पंजाब, हैदराबाद, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं को किसी भी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं है। अत इन समाजों में से किसी सभा के सम्बन्ध में किसी अन्य का कोई वक्तव्य न उचित है न विचारणीय ही।

३—आपत्ति दो सज्जनों ने प्रकट की है जिनमें एक हैं बम्बई प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री वेणी भाई आर्य व दूसरे हैं श्री बालमुकन्द जी आहूजा आजीवन सदस्य।

बम्बई प्रतिनिधि सभा की स्थिति यह है कि उसने इस बार ६ प्रतिनिधियों के स्थान पर १५ चुनकर भेजे। सार्वदेशिक सभा को प्रतिनिधियों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ी होने पर सन्देह हुआ। संदेह निवारण के लिए बम्बई सभा से आवश्यक सूचनाएं मांगी गयी किन्तु उन्होंने सभा की मांग पर कोई ध्यान न दिया। तब सार्वदेशिक सभा को विवश होकर पुराने प्रतिनिधि ही स्वीकार करने पड़े। यह पग सर्वथा वैध एवं विधान की धारा ३८ के अनुसार है अत इस सम्बन्ध में भ्रांति फैलाना सर्वथा अनुचित है।

जहा तक श्री बालमुकन्दजी आहूजा का प्रश्न है उनके द्वारा लगाए आरोप केवल प्रचारात्मक है जिनका समाधान मेरे इस वक्तव्य से हो जाएगा।

आडिट रिपोर्ट पढ़कर न सुनाए जाने के सम्बन्ध में जो बात लिखी गयी है वह निराधार है। आडिट रिपोर्ट एक सदस्य की मांग पर पढ़कर सुनाना आरम्भ किया गया किन्तु शेष सब उपस्थित सदस्यों ने यह प्रस्ताव किया कि सारी रिपोर्ट पढ़ने में अनावश्यक विलम्ब होगा अत सुनाने की आवश्यकता नहीं कार्यालय में जो देखना चाहे देख ले। यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। यहाँ यह भी निवेदन कर दूं कि आडिट रिपोर्ट पूरी आज से पहले भी कभी साधारण अधिवेशनों में नहीं सुनायी जाती रही विशेष मांग पर सदस्यों की अनुमति से कभी सुनायी गयी है।

४—पंजाब सभा की जांच सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य प्रो० रत्नसिंह जी एम० ए० ने की थी और उन्हें वहां कार्यालय में २ दिन रहकर जांच करने पर भी कोई बात ऐसी न मिली जो आपत्तिजनक हो। अत पंजाब सभा की जांच नहीं करायी गयी, यह बात भी निराधार है।

मैं निवेदन करना चाहूंगा कि जिन महानुभाव को सार्वदेशिक सभा के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की कोई शंका हो वे सज्जन पहले सभा कार्यालय से अपनी शंका का निवारण करने की कृपा करें। निराधार, असत्य प्रचार से किसी को कोई लाभ न होगा और न यह परम्परा आर्य समाज के गौरव के अनुरूप ही है।

आशा है आर्य जन भ्रांति में न पड़ सत्य को समझने का यत्न करेंगे।

भवदीय
कालीचरण आर्य,
उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रति० सभा

दर्शनविज्ञान एवं ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

दर्शनविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो केवल पुस्तकों को गुरुओं से पढ़ लेने मात्र से नहीं आता। इस में इसी प्रकार की प्रतिभा की भी आवश्यकता है। काशी एवं अन्य स्थानों पर भारत में विद्यार्थी गुरुमुख से दर्शनो को पढ़ते हैं। परन्तु रहस्य तक वही पहुँचता है जिसमें दार्शनिक प्रतिभा पायी जाती है। महर्षि ने भी दर्शनों को एक ब्रह्मर्षि महान् दार्शनिक गुरु से ही पढा था। परन्तु कहा महर्षि की दार्शनिक विद्वत्ता और कहां आज के गुरुओं से पढ़ने वालों की। दोनो में आकाश पाताल का अन्तर है। दयानन्द ने जहा वेद के विषय में हमें एक वास्तविक दृष्टिकोण दिया है वहा दर्शन-विज्ञान के अध्ययन में भी एक उपादेय दृष्टिकोण दिया है। जब तक उस दृष्टिकोण को न अपनाया जावे तब तक दर्शनतत्व के अन्तस्तल में प्रविष्ट होना कठिन है। कितना भी कोई अनुसधान का दावा करे विचार समञ्जसता और वास्तविकता एव सबद्धता बिना उस दृष्टिकोण के अपनाये हुए आ ही नहीं सकती।

एक बार एक आर्य पत्र में एक लेख दर्शन के सम्बन्ध में पढ़ा। लेख में योग और सांख्य के विषय में विचार प्रकट किया गया था। लेखक भी कोई पी० एच० डी० ही महोदय थे। "योग" पद पर विचार करते हुवे मैक्समूलर का आधार लेकर लेखक ने लिखा था कि योगदर्शन का "योग" पद व्यापक है और यह "युजिर् योगे" धातु से निष्पन्न होता है। बहुत विस्तार भी दिया गया था। जनसाधारण उसे पढ़कर अकस्मात् कह पडे—वाह! कितना उत्तम विचार है। परन्तु एक दार्शनिक जिसने योगदर्शन को पूर्वापर आद्यन्त पढ़ा है वह इस पर आश्चर्य करेगा कि लेखक की यहा पर कितनी अन-भिज्ञता है। योगदर्शन मे "योगश्चित्तवृत्ति-निरोध" सूत्र से योग का लक्षण चित्तवृत्ति-निरोध किया गया है। व्यासभाष्य में लिखा है कि—योग समाधि स च सार्व भौमश्चित्त-धर्म—अर्थात् योग का अर्थ समाधि है और वह चित्त का सार्वभौम धर्म है। व्यास के लेख और सूत्रकार के कथन से प्रकट है कि यहा पर "योग" पद "युज्" समाधौ धातु से निष्पन्न है—"युज् योगे" से नही। फिर भी लेखक ने अपने लेख में लिखा ही था और लोगो ने पढ़ा भी होगा। "युजिर् योगे" से भी योग पद बनता है। परन्तु योगदर्शन में ऐसा है—यह कहना उचित नहीं। फिरभी कहने वाला कह ही देता है। यह तो एक उदाहरण है। इस प्रकार की अनेको बातें पत्रो में निकलती रहती हैं।

वेद वाणी पत्रिका जो बनारस से निकलती है उसमें भी समय समय पर दार्शनिक चर्चा अच्छे ढग से पायी जाती है। सार्वदेशिक पत्र

में भी अच्छे अच्छे लेख समय समय पर आते हैं। आर्य मित्र मे भी दार्शनिक लेख कभी कभी रहते हैं। आर्य जनता एवं मनीषीजन पढ़ते होंगे और विचार भी करते होगे।

वेदवाणी के वर्तमान अक मे पृष्ठ १४ पर एक विचार देखा। उसको देखने से उसमें भी ऐसी ही कुछ असम्बद्धता और अयुक्ति-युक्तता प्रतीत हुई। वहा पर ऐसा विचार स्फुट किया हुआ मिला "वैज्ञानिक प्रक्रिया में विशेष" शब्द पारिभाषिक हैं। उसका प्रयोग पंचतन्मात्राओं के पश्चात् उत्पन्न होने वाले पञ्च महाभूतो के लिए होता है। (विशेषा इन्द्रियग्राह्या, वायु पुराण ४। ७०, पृष्ठ ४३)। इसी विशेष सञ्ज्ञक तत्व का व्याख्यान होने से कणादमुनिप्रोक्त दर्शन वैशेषिक कहाता है। (पृष्ठ ४४) अर्थात् सूक्ष्ममहाभूतो के प्रादुर्भाव से लेकर स्थूलमहाभूतों की उत्पत्ति का ही वर्णन वैशेषिक में किया गया है। पंचसूक्ष्म पचमहाभूत से पूर्व की सृष्टि का वर्णन उसके क्षेत्र से बाहर का विषय है। इस लिए उसमें उसका व्यापार ही नही है। यह क्षेत्र प्रधान रूप से सांख्य का है।"

यहां पर यह लेख वस्तुत वैशेषिक के सिद्धान्त के विरुद्ध है। सांख्य में परिणाम अर्थात् प्रकृति में विकार के उत्पन्न होने के दो प्रकार हैं। एक तत्वान्तरपरिणाम और दूसरा धर्म, लक्षण और अवस्था का परिणाम। जहा तक तत्व से तत्व उत्पन्न होता है वहाँ तक तत्वान्तर परिणाम है। जब केवल कार्य ही उत्पन्न होता है तत्व नहीं तब यह दूसरा परिणाम है। धर्म अर्थात् कार्यमात्र का परिणाम क्रम यह दूसरा परिणाम क्रम है। पचसूक्ष्म तन्मात्राओ पर्यन्त तत्वान्तरपरिणाम है। उसके बाद धर्मान्तरपरिणाम है। इस दृष्टि से सांख्यो ने पचसूक्ष्म तन्मात्राओ को अविशेष कहा है और पचमहाभूतों को विशेष कहा है। सांख्य का सूत्र भी है अविशेषाद् विशेषारम्भ। अर्थात् अविशेष से विशेष का आरम्भ होता है। परन्तु सांख्यों की यह परिभाषा वैशेषिको को इसी रूप में अभिप्रेत है और इसी के आधार पर शास्त्र का नाम वैशेषिक पडा-यह उल्टी और विपरीत बात है। वैशेषिक के "विशेष और सांख्य के विशेष का एक ही अर्थ नही। सांख्य में पंचमहाभूत विशेष हैं। परन्तु वैशेषिक मे नित्यद्रव्य में वर्तमान रहने वाला तथा कार्यों में व्यावहारिकी बुद्धि की अपेक्षा से भेद दिखलाने वाला पदार्थ विशेष है। इसलिए कहा गया है कि सामान्य-विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् अर्थात् सामान्य-जाति (सत्ता) और विशेष बुद्धि-व्यावहारिकी बुद्धि की अपेक्षा से जाने जाते हैं। यद्यपि यह विशेष नित्यद्रव्यो में वर्तमान है परन्तु बुद्धि की अपेक्षा से होने वाला भेद उनमें नहीं जान पडता अत. उनमें यह विशेष व्यावर्तक नहीं मालूम पडता। लेकिन कार्य पदार्थों में व्यावहारिकी बुद्धि की अपेक्षा पायी जाती है अत विशेष व्यावर्तक रूप में ज्ञात होते है। वैशेषिक में सामान्य अर्थात् जाति के दो भेद हैं परसामान्य और अपरसामान्य। वस्तुत्व परसामान्य है क्योंकि सभी वस्तुओं में पाया जाता है। परन्तु घटत्व और महिषत्व अपर सामान्य हैं। यह अपर-सामान्य ही विशेष के नाम से वैशेषिक में वर्णित है। यदि अविकृत और [illegible]

दर्शनविज्ञान में दो समस्यायें खड़ी होती हैं। एक तो यह कि सृष्टि में भेद एवं भिन्नता कहाँ से आते। यह कल्पित–मिथ्या है अथवा तात्त्विक है। दूसरी समस्या यह थी कि इसका कारण सत्तात्मक है अथवा शून्यात्मक एवं केवल जडात्मक और चेतनात्मक। वैशेषिक ने भेद को विशेष के द्वारा सिद्ध किया तथा यह बतलाया कि जगत् का कारण सत्तात्मक है। जड परमाणु और चेतन–आत्मा-परमात्मा कारण के रूप मे विद्यमान हैं। अत. वैशेषिक का उद्देश्य जगत् के भेद को वास्तविक और जगत् को सत्तामय कारण–जन्य सिद्ध करने का है। न्याय और वैशेषिक दर्शनों का एक विशेष स्वरूप है। वह यह है कि इन में मनोविज्ञान, तर्कविज्ञान और वस्तुतत्त्वविज्ञान सम्मिलित रूप से वर्णित हैं। इन को पृथक् करके जब तक न देखा जावे, ये दर्शन समझ में नहीं आते। उदाहरण के रूप में वैशेषिक के छ. पदार्थों को ही लिया जा सकता है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय—ये ६ पदार्थ हैं। इनमें द्रव्य, गुण और कर्म वस्तुतत्व सम्बन्धी पदार्थ विभाग हैं। परन्तु अन्त के सामान्य, विशेष और समवाय सम्बन्ध-सम्बन्धी पदार्थ हैं। सामान्य विशेष वस्तु में रहने वाले सत्ता और भेद के सम्बन्ध को बतलाते हैं। समवाय कारण और कार्य के सम्बन्ध को प्रकट करता है। ये तीनों सम्बन्ध (Relations) हैं। इस प्रकार वैशेषिक में वर्णित विशेष सम्बन्ध है जो भेदक अथवा व्यावर्तक है। महर्षिदयानन्द सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं—

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्-(अर्थात्) सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसा मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष... इत्यादि इस प्रकार वैशेषिक प्रतिपादित विशेष वह पदार्थ है जो वस्तुओं मे रहते हुए अपने स्वरूप को भिन्न दिखलाते हुए वस्तुओं की भिन्नता को प्रकट करता है। वैशेषिक का सूत्र भी है—अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्य·। इस विशेष के प्रतिपादन के कारण शास्त्र का नाम वैशेषिक है। वैशेषिक का विशेष सम्बन्ध है जब कि सांख्य का विशेष द्रव्यात्मक है। अतः सांख्य के विशेष की परिभाषा के आधार पर वैशेषिक की प्रक्रिया दिखलाना और उसे वैशेषिक के नाम का कारण बताना सगत नहीं। ऋषि ने तृतीयसमुल्लासमें प्रथम प्रमाणों का वर्णन किया पुन वैशेषिक के पदार्थों और द्रव्यों का वर्णन किया है। पुनः अन्त मे व्याप्ति का वर्णन किया और इसी प्रसग में पूर्व अभावों का वर्णन किया। यह क्रम दर्शन के समझने में सहायक है। मनोविज्ञान और तर्क को जान कर ही मनुष्य सत्तासम्बन्धी दर्शन को समझ सकता है। सत्ता में कार्य कारण का नियम (Law of causality) का ज्ञान आवश्यक है। इसमें समवाय और व्याप्ति सम्बन्धों का जानना नितराम् आवश्यक है। अनुमान इन्हीं सम्बन्धों पर आधारित है। मनोविज्ञान मन की विभिन्न प्रवृत्तियों का विज्ञान है। प्रत्यक्ष आदि कार्यों में वह अगत होता है। परन्तु अनुमान आदि में हमें विचार-विज्ञान=तर्क को अपनाना पड़ता है। तर्क विचार का विज्ञान है। इसका कार्य बाक्य

सक्षेप और समञ्जस करना, अपने विचार की त्रुटियों से बचना और दूसरे की त्रुटियो को पकडना है। जब तक इसका ज्ञान न हो दर्शन का मर्म नहीं समझा जा सकता।

इसी प्रकार वेदवाणी के पृष्ठ २ पर लिखा कि 'इस पर प्रश्न हो सकता है कि यदि वैशेषिक निर्दशित नित्य अणुओं का भी लय होता है तो वैशेषिककार उन्हे नित्य कैसे कहते हैं। इसका उत्तर है—नित्यत्व दो प्रकार का होता है पारमार्थिक और तात्त्विक। नित्य का किसी अवस्था में नाश नही होता किन्तु तात्त्विक नित्य के स्थिर रहने की एक सीमा होनी है और वह सीमा है–यस्मिस्तत्व न विहन्यते—इत्यादि ।

यहाँ पर यह वैशेषिक के परमाणुओ की नित्यता को सिद्ध करने का प्रकार भी वैशेषिक सिद्धान्त के विपरीत है। इस विषय का प्रतिपादन वैशेषिक की दृष्टि से ही करना समुचित है। वैशेषिक और न्याय में परमाणु नित्य हैं। यही नहीं वैशेषिक में परमाणुगत परिमाण पारिमाण्डल्य का भी वर्णन है। वैशेषिक दर्शनकार स्वय नित्यत्व की व्याख्या भी कर देते हैं--सदकारणवन्नित्यम्– अर्थात् जो सत् है और कारण से रहित है वह नित्य है। महर्षिदयानन्द ने तृतीय समुल्लास में इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की है— "जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात् सत्कारणवदनित्यम्" जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी ऋषि ने ऐसी ही व्याख्या इस सूत्र की की है। न्याय में परमाणुओं की नित्यता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन में भीतर-बाहर, अन्त-बहि आदि पदों का भी व्यवहार नहीं हो सकता क्योंकि ये कार्य द्रव्य में व्यवहृत होते हैं कारणद्रव्य में नहीं। भीतर बाहर पद का प्रयोग भी स्वय कारण का कथन करना है परन्तु परमाणु किसी के कार्य नही। इसपे ज्ञात हो गया कि वैशेषिक और न्याय परमाणुओ की किस प्रकार की नित्यता मानते हैं। एक तरफ यह वर्णन और दूसरी तरफ वेदवाणी में लिखा वर्णन। दोनों की सगति किस प्रकार लगती है। इसके अतिरिक्त महर्षि ने प्रकृति और परमाणु को एक माना है। सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास। (गोविन्दराम सस्करण) पृ० २७७ पर लिखते हैं "उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब ससार के बनाने की सामग्री कहते हैं।" पुन पृष्ठ २७९ पर लिखते हैं–"वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर बाहर स्थूलरूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है।" इस प्रकार जब प्रकृति, परमाणु एक हैं तो पचमहाभूतो को परमाणु मानकर प्रकृति से उत्पन्न इन को वैशेषिक की प्रक्रिया का आधार बताना और फिर इन की तात्त्विकी नित्यता सिद्ध करना कहा तक युक्तिसगत हो सकता है। लेखक ने नित्यता दो प्रकार की मानी है–यह तो ठीक ही है। परन्तु उसने जो परमार्थिक और तात्त्विक नाम दिये हैं वे संगत नहीं हैं। वास्तविक रूप में पारमार्थिक और तात्त्विक का अर्थ मिलता जुलता सा ही है। हाँ उसे "कूटस्थनित्य" और "परिणामीनित्य" शब्दों

का प्रयोग करना चाहिए था ।

तात्त्विक नित्य के उदाहरण में "यस्मिंस्तत्त्व न विहन्यते" आदि महाभाष्य वाक्य का उदाहरण दिया है साथ ही योगभाष्य का भी नाम लिया है । यह वाक्य वस्तुत महाभाष्य और योग के व्यासभाष्य में पाया जाता है । परन्तु उन स्थलों पर जो प्रतिपादन है उससे वैशेषिक के इन पचमहाभूतों की नित्यता की उसी प्रकार सिद्धि नही होती जिस प्रकार वेदवाणी के लेखक महोदय ने किया है । योगदर्शन में एक सूत्र है "सूक्ष्मविषयत्वञ्चलिंग पर्यवसानम्" अर्थात् सूक्ष्मविषयता प्रकृतिपर्यन्त है । यह सूत्र सूक्ष्मता का विवेचन कर रहा है । योगी को सूक्ष्म वस्तु का ज्ञान होता है तो सूक्ष्मता क्या है ? इसके उत्तर के लिए यह सूत्र है कि सूक्ष्मता प्रकृतिपर्यन्त है । व्यास भाष्य में प्रश्न उठाया गया कि यदि प्रकृति पर्यन्त ही सूक्ष्मता है तो फिर पुरुष की सूक्ष्मता का क्या होगा । इस पर व्यास कहते है कि अन्यदि कारण-अर्थात् कार्यद्रव्य के उपादानकारण की सूक्ष्मता प्रकृतिपर्यन्त है । पुरुष उपादान कारण नहीं है अत उसकी सूक्ष्मता का निषेध नहीं । फिर दोनो नित्य किस प्रकार इस पर व्यास कहते हैं कि दो प्रकार की नित्यता होती है—कूटस्थनित्यता और परिणामिनित्यता । पुरुष-आत्मा-परमात्मा की नित्यता कूटस्थ नित्यता है और प्रकृति की नित्यता परिणामिनित्यता है । इससे यह ज्ञात हुआ कि उपादान कारणभूत मूलकारण तत्त्व परिणामी नित्य होता है कूटस्थनित्य नहीं । परन्तु इसको इस सीधे रूप मे न लेकर वैशेषिक के पच महाभूतों की नित्यता को सिद्ध करने में लगाया गया । यह उल्टा है । क्योंकि वेदवाणी के लेखक के अनुसार सूक्ष्म पचमहाभूत प्रकृति के कार्य होते हुए भी नित्य हैं और उसकी सिद्धि में वह महाभाष्य और योग भाष्य का पूर्वोक्त प्रमाण दे रहा है । परन्तु ये प्रमाण प्रकृति के कार्य की नित्यता के साधक नही अपितु प्रकृति की नित्यता के साधक हैं । कितनी असगतता है ।

उसी स्थलपर "विशेषा इन्द्रियग्राह्या" वायु पुराण ४/७० का प्रमाण दिया गया है । यह प्रमाण भी विचित्र ही है । यहाँ पर दो तरह से इसका अर्थ हो सकता है । प्रथम अर्थ यह होगा कि जिनका इन्द्रियों से ग्रहण हो वह विशेष हैं । दूसरा अर्थ होगा कि विशेष इन्द्रियों से ग्राह्य हैं । प्रथम अर्थ से समस्त कार्य वस्तुओ में लक्षण जावेगा केवल पचस्थूलभूतों में ही नही । दूसरे अर्थ में यह भाव निकलेगा कि विशेष का इन्द्रियों से ग्रहण होता है । इन दोनो में कौनसा भाव है जो वैशेषिक के विशेष के साथ मेल खाता है—यह प्रकट नही किया गया ।

यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि फिर षड्दर्शनों में समन्वय किस प्रकार हो सकेगा ? इसका समाधान यह है कि यह समन्वय महर्षि के दिखाये मार्ग से होगा । ऋषि अष्टम समुल्लास में लिखते हैं—परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे । छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है । मीमासा में ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय" वैशेषिक में समय न लगे विना बने ही नहीं । न्याय में

श्री प० युधिष्ठिर जी मीमांसक की ऋग्गणना तथा
सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का निर्णय

(आचार्य विश्वश्रवा. मन्त्री)

ऋग्वेद में कितने मन्त्र हैं इस सम्बन्ध में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपने ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भ में विस्तार से वर्णन किया है। प० युधिष्ठिर जी मीमांसक आदि विद्वानों ने इस सम्बन्ध में कुछ ग्रन्थ प्रकाशित किये जिनमें यह विचार प्रकट किये हैं कि ऋषि की ऋग्वेद मन्त्रों की गणना अशुद्ध है। ऋषि की भूलों का विवेचन प० युधिष्ठिर जी मीमांसक आदि ने इस प्रकार किया है —

१–स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्विपदाओं और चतुष्पदाओं को समझ नहीं सके।

२–स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जो द्विपदाओं पर संख्या डाली है उसको भी वे ठीक नहीं समझ सके।

३–स्वामी जी ने स्वय न समझ कर पाश्चात्यों के छापे ऋग्वेद का अविचारित अनुकरण किया है।

सार्वदेशिक धर्मार्यसभा में इस सम्बन्ध में विचार होकर प० युधिष्ठिर जी की धारणा के विरुद्ध निश्चय हुआ।

प० युधिष्ठिर जी ने ऋग्गणना के सम्बन्ध में तथा द्विपदाओं के सम्बन्ध में एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है वह इस दिशा में प्रथम योग्यता-पूर्ण ग्रन्थ है। आर्य समाज में ही नहीं भारत

उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता, सांख्य में तत्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता, और वेदान्त में बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके। इस लिए सृष्टि छ. कारणों से बनती है। इन छ कारणों की व्याख्या एक एक की एक एक शास्त्र में है॥

ऋषि का बतलाया मार्ग कितना प्रशस्त है इसके अनुसार सृष्टि के छः कारणों की दृष्टि से छ शास्त्रों का समन्वय होगा। सबकी अपनी अपनी शैली और अपनी अपनी परिभाषाएं और लक्षण हैं। पुन परिभाषाओं और लक्षणों को एक २ करके समन्वय नहीं किया जा सकता। फिर तो तोड़ फोड़ करने की बात ही आवेगी। अत ऋषि के मार्ग से समन्वय करना उचित है। इधर उधर की बातों से कोई कार्य चल नहीं सकता है। ऋषि ने दर्शन के विषय में हमें जो दृष्टिकोण दिया है उसको अपना कर हम इस दिशा में कृतकार्य हो सकते हैं। केवल अनुसधान का नाम लेकर कल्पित बातों से दर्शन का रहस्य नहीं खोला जा सकता।

❀

तथा विदेशों में गिने हुए ही विद्वान् हैं जो इस विषय को समझते हैं। युधिष्ठिरजी ने योग्यतापूर्ण इस ग्रन्थको लिखकर अच्छा पूर्वपक्ष स्थापित कर दिया है। मतों का अच्छा संग्रह भी इसमें है। प० युधिष्ठिर जी से इतना ही निवेदन है कि वे अपने विचार को अन्तिम निर्णय न समझ लिया करे।

अभी मेरा ध्यान प० युधिष्ठिर जी के उस लेख की ओर आर्य जगत् के विद्वानो ने दिलाया जिसमें उन्होंने यह लिखा है कि धर्मार्यसभा ने ऋग्वेद के मन्त्रो के सम्बन्ध मे जो निर्णय किया है वह गलत है, मेरा जो निर्णय है वह ठीक है धर्मार्यसभा इसको ठीक करे। अच्छा होता कि वे यह पूछते कि धर्मार्यसभा ने मेरा लिखा ग्रन्थ विचार करते समय देखा होगा। किन हेतुओं और प्रमाणोंके आधार पर उसका खण्डन करके निर्णय किया है वह प्रकाशित किया जावे जिससे उस पर मैं भी पुन: विचार करू।

(अन्तिम निर्णय)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जो निर्णय किये हैं वे धरती के अन्तिम निर्णय हैं। हम लोग इसलिये हैं कि उनको बिस्तार से अनुसन्धान करके पुष्ट करे। ऋषि दयानन्द के निर्णय ठीक हैं या नही इस पर विचार करना ऋषिके शिष्योका पेशा नहीं हो सकता। यह महत्वपूर्ण कार्य विद्रोही लोग कर ही रहे हैं उस दिशा में हम भी परिश्रम करें यह वृथा पुष्टि या पिष्टपेषण ही होगा। प० युधिष्ठिर जी अब स्वतन्त्र वे कुछ भी लिखते रहते। प० सातवलेकरजी, आचार्य विश्वबन्धु जी आदि भी लिखते रहते हैं। पर अब प० युधिष्ठिर जी टंकारा अनुसन्धान विभाग में बैठे हैं उन्हें चाहिये कि वे शीघ्र यह घोषणा करदें कि टंकारा आने से पूर्व जो कुछ उन्होंने लिखा है वे उनके पूर्व के विचार थे अब उन सब पर पुन: विचार कर रहा हूं। टंकारा जैसे स्थान की पवित्रता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा आर्य समाज का क्या इतिहास बनेगा कि ऋषि जन्म भूमि टंकारा में आर्यों ने जो वेद का कार्य किया उसके अध्यक्ष के इस प्रकार के विचार थे इसका उत्तर अगली शताब्दी में बैठा कोई व्यक्ति न समझ सकेगा।

"अन्यथा काबे में कुफ्र" ही कहलावेगा। आर्य समाज के लिये यह सौभाग्यपूर्ण होगा, यदि प० युधिष्ठिर जी ऋषि के उत्तराधिकारी के रूप में टंकारा में बैठेंगे अन्यथा न वे अपना ही इतिहास बना सकेंगे और न आर्यसमाज का।

स्वर्ग में बैठे प० शिवशंकर काव्यतीर्थ और प० भीमसेन शर्मा इटावा निवासी यदि देख सके तो घोषणा करदे कि मरने के बाद दोनों की स्थिति धरती पर क्या है। विद्वान् दोनों ही बराबर कोटि के थे।

मैं प० युधिष्ठिर जी को यह बताना आवश्यक समझता हूं कि ऋग्वेद की ऋग्गणना के सम्बन्ध में महर्षि के जिस पक्ष का समर्थन धर्मार्यसभा ने किया है वह पूर्ण सत्य है। मध्यकाल की वैदिक धारणाओं में व्यापृतमति उससे आगे नहीं जा सकता। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी को समझने के लिये आदि सृष्टि में बैठकर विचार करना होगा। किसी भी आर्ष ग्रन्थ को समझने के लिए उस युग में बैठना होगा। जब उस ग्रन्थ पर कोई टीका नही लिखी गई थी। जो व्यक्ति दुर्गाचार्य और स्कन्द

महेश्वर के युग में बैठकर निरुक्त को समझना चाहेगा उसे निराश होना पडेगा।

धर्मार्यसभा ने विचार करते समय प० युधिष्ठिर जी के ग्रन्थ को खूब पढ रखा था और जिन ग्रन्थो की सहायता से प० युधिष्ठिर जी का ग्रन्थ लिखा गया था उनका भी यथार्थ ज्ञान था। परन्तु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारित्व पूर्ण श्रद्धा से उत्पन्न धर्मार्यसभा के सदस्यो की प्रतिभा के आगे प० युधिष्ठिर जी के विचार 'न खद्योतो न चन्द्रमा' हो गये **और धर्मार्यसभा यह घोषित करती है कि—**

१—प० सातवलेकर जी ने ऋग्वेद की ऋक्सख्या जो १०५५२ दस हजार पाच सौ बावन छापी है और जिसका समर्थन करते हुए प० युधिष्ठिर जी ने अपना ग्रन्थ लिख कर इस पक्ष को पुष्ट किया है यह ऋग्वेद के मन्त्रो की सख्या अशुद्ध है।

२—जिन ग्रन्थो को प्रमाण मानकर ऋग्वेद की ऋक्सख्या १०५५२ ये लोग मानते हैं वे ग्रन्थकार द्विपदाओ और चतुष्पदाओं को समझते ही न थे और कुछ ग्रन्थों को ये दोनो न समझ सके।

३—द्विपदाओं का वास्तविक स्वरूप महर्षि पूर्ण रूप से समझते थे।

४—द्विपदाओं में दो प्रकार की सख्या डालना महर्षि की प्रतिभा बुद्धि का अद्भुत चमत्कार है।

५—जो ग्रन्थकार द्विपदाओ को नित्य और नैमित्तिकरूप में समझते है उनका दौर्भाग्य-पूर्ण अधूरा ज्ञान है।

६—महर्षि ने किसी पाश्चात्य विद्वान् के लिखे का अनुकरण किया है यह ऐसा कहने वालों का भ्रम मात्र है।

७—जिस प्रकार आज कल के श्रद्धालु भक्त अपने प्रवर्त्तक के ग्रन्थ को बदलते रहते हैं इस पाप से पाश्चात्य विद्वान् अधिकतर डरता रहा है और परम्परागत जैसे के तैसे को छापने और समाधिदृष्टि से देखने का परिणाम यदि एक हो जावे तो वह घुणाक्षर न्याय कोई कहे तो कहले पर अन्धानुकरण नहीं कर सकता।

मेरी यह निश्चित धारणा है कि "महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आदि ऋषियो ने जो लिखा है वह पूर्ण सत्य है क्योंकि वे आप्तवक्ता थे" ऐसा विचार जब तक नहीं बनता है तब तक प्रतिभा उत्पन्न नहीं होती।

मनुष्यपन

मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वदा झूठ व्यवहारों को छोड़ कर सत्य व्यवहारों को सदा ग्रहण करे।

क्योंकि सर्वदा सत्य ही का विजय और झूठ का पराजय होता है इसलिये जिस सत्य से चल के धार्मिक ऋषि लोग जहा सत्य की निधि परमात्मा है, उसको प्राप्त होकर आनन्दित हुए थे और अब भी होते हैं, उसका सेवन मनुष्य लोग क्यों न करें। यह निश्चित है कि न सत्य से परे कोई धर्म और न असत्य से परे कोई अधर्म है। इससे धन्य वे मनुष्य हैं जो सब व्यवहारों को सत्य से ही करते और झूठ से युक्त कर्म किञ्चिन्मात्र भी नहीं करते हैं।

(व्यवहार भानु में—महर्षि दयानन्द सरस्वती)

व्रती और यति

(श्री प० गगाप्रसाद उपाध्याय)

सार्वदेशिक (जुलाई १९६०) के पृ० २४२ पर श्री रामेश्वर दयाल जी बी० एस० सी० का एक लेख छपा है। मुझे उनका सुझाव अच्छा लगा यदि गृहस्थी लोग एक एक वर्ष भी समाज की सेवा के लिए निस्वार्थ भाव से निकाल सकें तो हजारो प्रचारको की सेवा समाज को उपलब्ध हो सकती है। गृहस्थ में कितना ही व्यस्त मनुष्य क्यो न हो उसको घर के कामो से एक वर्ष छुट्टी लेना कठिन नही है। मेरे सुझाव यह हैं कि उनको सन्यासी न कहा जाय। यति मण्डल के नाम से पुकारा जाय। इसमें आदर्श सन्यास के पक्षपातियों को भी कोई आपत्ति न होगी। यति लोग पीले वस्त्र भी धारण कर सकते है और भिक्षा माग कर भी रह सकते हैं वर्ष के उपरान्त वह पूर्ववत् गृहस्थ में गृहस्थी बन कर रह सकते हैं जैसा कि बौद्धो में होता है। एक बात और होनी चाहिए कि यति बनने से ठीक पहले या कुछ वर्ष पहिले उनको कुछ शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए कि वे एक वर्ष की सेवा द्वारा समुचित लाभ पहुँचा सकें। यदि सुशिक्षित सिद्धान्तप्रेमी, सिद्धान्तों से परिचित और नीतिज्ञ न हुए तो उनका एक वर्ष व्यर्थ ही जाएगा और जनता को कोई लाभ न होगा। इसके लिए यति बनने वाले को एक साल के लिए व्रती बनना चाहिये अर्थात वह गृहकार्य छोड़ कर कुछ कुछ वानप्रस्थी जैसे बनकर किसी विशेष सस्था या गुरु के आधीन कुछ सस्कृत और कुछ सिद्धान्त अध्ययन करे जो भोजन वृत्ति अपने पास से खर्च कर सकते हों वे अपने पास से करें अन्यथा उस स्थान विशेष पर रहने वाले अन्य गृहस्थी बारी बारी से उनके भोजन का प्रबन्ध कर दें। भारत वर्ष में ऐसे चालीस या पचास विद्वान् वृद्ध पुरुष मिल सकेगे जो दो चार व्रतियो को साल भर तक सुशिक्षित करने का भार अपने ऊपर ले सकें। दो चार का मैं भी ले सकता हूँ यदि वे उत्सुक हो और अपने रहन सहन और खान पान का प्रबन्ध स्वय कर लें। ऐसे व्रतियों को अध्ययन काल में आन्दोलनो से पृथक् रहना चाहिए और यतियों को भी अपने प्रचार कार्य में इन दल बन्दियों में न पडना चाहिये। उनको अपना प्रचार क्षेत्र ऐसे स्थानो को बनाना चाहिये जहा वैदिक धर्म की अभी तक रोशनी नही पहुँची इससे एक लाभ यह होगा कि अन्य कर्ताओं के साथ उनका सघर्ष नहीं होगा। साराश यह है कि सुझाव अच्छा है उस पर कार्य होना चाहिये। जटिल विधान बनाने की आवश्यकता नही है। बहुत सोच विचार के बिना ही परीक्षण का आरम्भ हो सकता है।

"जितना भ्रमण का अवकाश सन्यासी को मिलता है, उतना गृहस्थ ब्राह्मणादि को कभी नहीं मिल सकता। जब ब्राह्मणादि वेद विरुद्ध आचरण करे तब उनका नियन्ता सन्यासी होता है।" —महर्षि दयानन्द

श्री विनोबा जी और गीता-प्रवचन

(श्री बाबूलाल दीक्षित एम० ए०)

अतरौली में २६-४-६० को श्री विनोबा जी पधारे थे। हमने उनसे ५ प्रश्न उनकी लिखी पुस्तक 'गीता प्रवचन' से सम्बन्धित शंकाओं के समाधान के लिये पूछे थे। इन प्रश्नों को छपवा कर जनता में बंटवा भी दिया था, एक प्रति आपकी सेवा में भी भेज रहा हूँ। श्री विनोबा जी ने इस सम्बन्ध में बातें करने के लिए २७-४-६० को प्रातःकाल का समय दिया था। मैं निश्चित समय पर पहुंचा और एक घण्टे तक बातें हुईं जो निम्नलिखित हैं—

मैंने श्री विनोबा जी से कहा—"बाबा जी! आपके दर्शनों के लिए मुझे बहुत दिनों से उत्सुकता थी। कुछ शंकाओं का समाधान चाहता हूं। मैं इसी कालिज में अध्यापक हूं। सत्य को मनवाने के लिये शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। वह दिव्य होती है तो अधिक प्रभाव कर सकती है। तदर्थ विभूतियों की प्राप्ति का यत्न अपेक्षित है। उसका साधन बताने की कृपा करें, सन्तों के पास ही ऐसे साधन मिल सकते हैं।

श्री विनोबा जी अरे! विभूतियों की ओर मत जा। परमात्मा की ओर चल, उससे विभूतियां अपने आप आयेंगी। विभूतियों की ओर चलने से परमात्मा छूट जायगा। पाश्चात्य लोग विभूतियों की ओर जा रहे हैं। हमारे ऋषि परमात्मा की ओर जाते थे।

मैंने कहा—ऐसे साधन के लिए तो आहार की शुद्धि परमापेक्षित है। क्योंकि "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।"

श्री विनोबा जी—आहार में भोजन के अतिरिक्त अन्य सब इन्द्रियों का आहार सम्मिलित है। सब में शुद्धि होनी चाहिये।

मैंने पूछा—बाबा जी! वेदमन्त्रों के जो देवता ऋषियों ने नियत कर दिये हैं उनके अतिरिक्त और भी हो सकते हैं।

श्री विनोबा जी—नहीं हो सकते। हां, जिन मन्त्रों के देवता विश्वेदेवा हैं उनमें और देवताओं की कल्पना की जा सकती है।

मैंने कहा—बाबा जी! आपने तो अपनी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में लिखा है कि ऋषि मास खाते थे। मास खाकर तो बुद्धि सात्विक नहीं रह सकती, फिर उन्हें वेद मन्त्रों का दर्शन कैसे सम्भव है।

श्री विनोबा जी—उन्हें ईश्वर की प्रेरणा से कभी २ वेद मन्त्रों का दर्शन हुआ करता था। हमें तुम्हें तो मन्त्र दर्शन अधिक हो सकता है। क्योंकि हम मास नहीं खाते। मन्त्र दर्शन के समय मन, बुद्धि से साधक परे हो जाता है।

मैंने कहा—मन बुद्धि से परे असम्प्रज्ञात समाधि में होता है। सम्प्रज्ञात में पदार्थ का साक्षात्कार करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि रहती ही है। ईश्वरीय प्रेरणा मांसाहार से उत्पन्न तामसिक बुद्धि में सम्भव नहीं वह तो शुद्ध सात्विक बुद्धि में ही चाहिये।

श्री विनोबा जी—प्राचीन अनेक ग्रन्थ मांसाहार का प्रतिपादन करते हैं। ब्राह्मणादि में भी विधान है उन्हें कहाँ ले जाओगे। आयुर्वेद में भी मांसाहार लिखा है।

मैंने कहा—बाबा जी! वाममार्गियों ने ग्रन्थों को भ्रष्ट किया है। ऋषि स्वयं न मास खाते थे और न उसका समर्थन ही करते थे। स्वार्थी तथा इन्द्रिय लोलुपों ने बाद में ग्रन्थों में मिलाया है वह प्रक्षेप है।

श्री विनोबा जी—अश्वमेध यज्ञ में घोड़े के प्रत्येक अङ्ग को काटते थे। उसका विधान तो स्पष्ट ही है।

मैंने कहा—महाराज जी! अश्व तो राष्ट्र को कहते हैं और यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म होता है ऐसा शत पथ ब्राह्मण में लिखा है। राष्ट्र का विभाजन करके उसका प्रबन्ध ठीक २ चलाना ही यज्ञ में उसके अङ्गों का काटना है। मेध नाम पवित्रता का है और गो नाम पृथ्वी का है। उसका परिष्कार करना तथा उसको उर्वरा बनाना ही 'गोमेध' यज्ञ है।

श्री विनोबा जी—ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है।

मैंने कहा—आपने लिखा है पहले सारी प्रजा मांस खाती थी। ऋषि भी मांस खाते थे। बाद में उन्हें सूझा कि मांस खाना मानवता नहीं है। अत उन्होंने खेती करना आरम्भ किया। बाबा जी! ईश्वर ने मनुष्य रचना से पूर्व वनस्पतियों की रचना कर दी थी। फलों से लदे हुए सुन्दर दृश्य वाले वृक्षों की ओर न देख कर मनुष्य अपनी भूख शान्त करने को खरगोश लोमड़ी, बकरों तथा गायों की ओर क्यों झपट पड़ा।

श्री विनोबा जी—यदि फलों से लदे वृक्ष मौजूद थे तो मनुष्य गाय को पकड़ कर उसे बन्धन में डालने से उसे कष्ट पहुंचा कर उसके दूध को लेने को क्यों प्रवृत्त हुआ। दूध तो उसके बछड़े के लिए ही है। कोई भी जीव अन्य जीव का दूध नहीं पीता। मनुष्य का दूध पीना हिंसा ही है।

मैंने कहा—गाय का दूध विशेष गुणकारी है। गौ की सेवा करके उसे विशेष खुराक देकर और बछड़े के पेट को भर कर उससे दूध लेना हिंसा कैसे हो सकती है।

श्री विनोबा जी—अधिक भोजन देने से गाय की उम्र कम होती है। बिना दूध पिये प्रारम्भ में कैसे मालूम हुआ कि गो दुग्ध गुणकारी है।

मैंने कहा—ऋषियों की बुद्धि सूक्ष्म थी उन्होंने संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) द्वारा गो दुग्ध का गुण तथा उपयोग जान लिया था। औषधियों का पता गुण और उपयोग भी ऋषियों ने समाधि द्वारा ही लगाया था न कि चख २ कर। योग दर्शन में इसका पूरा २ वर्णन है।

श्री विनोबा जी—योग दर्शन में कौन सा सूत्र है जिससे गाय के दूध का गुण आदि जाना जाता है।

मैंने कहा—गाय के दूध के गुण को ही नहीं प्रत्येक पदार्थ के गुण को सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा जाना जा सकता है। जिस पदार्थ पर ऋषि संयम करेगा उसको वह सब प्रकार से जान लेगा क्योंकि उसका चित्त तदाकार हो जाता है। इतना ही नहीं ऋषि तो प्रकृत्यापूट भी जानते थे। कैवल्य-पाद का पहला तथा दूसरा सूत्र इसमें प्रमाण है। विभूति पाद में भी 'प्रवृत्त्या लोकन्यासात सूक्ष्म, व्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम्' आदि अनेक सूत्र हैं।

श्री विनोबा जी—यह सब तुम्हारी धार्मिक भावुकता है। तुम्हें भी समाधि में पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। यदि तुम यह सब जानते हो तो मेरे पास क्यों आये हो।

मैंने कहा—बाबा जी! आपने लिखा है सच्चा ज्ञान तो सन्तों के पास है पुस्तकों में नहीं। मुझे तो पुस्तक ज्ञान ही है। मैं अभी समाधि तक नहीं पहुंचा हूं। पुस्तक ज्ञान को ही क्रियात्मक रूप देने के लिए आपकी सेवा में आया हूं।

श्री विनोबा जी—आदि सृष्टि ध्रुव पर हुई थी वहाँ तो बर्फ ही बर्फ है वनस्पति का नाम नहीं। ऐसा श्री लोकमान्य तिलक ने लिखा है। उस समय मनुष्य पशुओं के मांस पर ही निर्वाह करता था।

मैंने कहा—श्री लोकमान्य जी का कथन प्रमाण नहीं माना जा सकता। उन्होंने जो वेद रचना काल लिखा है, उसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने ही अमान्य कर दिया है। उनकी सृष्टि रचना

स्थान सम्बन्धी बात में तो विशेष बल है ही नहीं। बाबा जी! वेद रचना काल आपके मत में कितना है?

श्री विनोबा जी—१५, २० हजार वर्ष।

मैंने कहा—पाश्चात्य विद्वानों में तो इस विषय पर बड़ा मतभेद है। रेले साहब ८० हजार वर्ष मानते हैं। जर्मनी विद्वान् वेबर साहब कहते हैं कि वेद इतने पुराने हैं कि उनका काल निश्चित करने के लिये हमारे पास पर्याप्त प्रमाण नहीं है।

श्री विनोबा जी—तुम कितना काल मानते हो।

मैंने कहा—वेद ज्ञान को कहते हैं, वह नित्य है, अनादि है, सृष्टि रचना के समय ईश्वर ने उसे पवित्रतम सात्विक बुद्धि वाले ऋषियों की बुद्धि में प्रगट किया। उन्होंने यह ज्ञान औरों को दिया।

श्री विनोबा जी—नम्रता आदि सदाचरण को ग्रहण करो कर्त्तव्य में लगे रहो। मासाहार इन बातों में रोक नहीं लगाता है। सदना कसाई पर तो भगवान मास बेचने पर भी प्रसन्न हुए और सहायता की।

मैंने कहा—मांस व्यवसायी पर भगवान कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते।

श्री विनोबा जी—तुम्हारे भगवान प्रसन्न नहीं होते उसके तो होते थे।

मैंने कहा—बाबा जी! भगवान तो सब का एक ही है।

श्री विनोबा जी—तुम जो गेहूं खाते हो उसमें भी तो प्राण है, जीव है, क्या वह हिंसा नहीं है? भोजन करने में ही हिंसा हो सकती है।

मैंने कहा—बाबा जी! भगवान ने हमारे लिए यही खाद्यान्न बनाया है। भोक्ता के साथ २ भोग्य भी परमात्मा बना देता है। गेहूँ के पकने पर उसे काट कर खाने में हिंसा नहीं है।

श्री विनोबा जी—तो फिर तुम्हें भी पकने पर काट २ कर खाया जाय। सिंह का भोजन हम हैं फिर उससे क्यों बचते हैं।

मैंने कहा—आप मुझे यही आशीर्वाद दें कि मैं पक जाऊ और मुझे काट २ कर सब खाय। जैसा कि हम सब आपको अब जब कि आपकी बुद्धि और अनुभव पक गया है काट २ कर खा रहे हैं। आप रोगी हैं और यह प्रात काल है फिर भी आपको चैन नहीं लेने देते तग कर रहे हैं। कचाई सीमाबद्ध और सकुचित होती है पक्वता सीमा को छोड़ सार्वजनिक होती ही है। हिंसकों से अपनी रक्षा करने के लिए भगवान् ने हमें बुद्धि दी है उनसे बचने और बचाने में बुद्धि का प्रयोग करना ईश्वर की ही आज्ञा है।

श्री विनोबा जी—तुमसे बातें करके मुझे प्रसन्नता हुई।

मैंने कहा—यह आपकी कृपा ही है। मैं इस प्रात वेला में अपनी ईश्वराराधना छोड़ कर आपसे प्रार्थना करने आया हूँ कि आप अपनी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में से ऋषियों के मास खाने की बात निकाल दें तो पुस्तक अधिक उपादेय हो जायगी सब का उपकार होगा। मेरे हृदय में यह पढ़ कर बड़ी ठेस लगी कि ऋषि मास खाते थे। मेरी समझ में नहीं आ सकता कि मास खाते हुए ऋषियों में ऋषित्व कैसे रहा होगा आप भी तो मासाहार का निषेध ही करते हैं।

श्री विनोबा जी—तुम सन्तरे के छिलके और बीज को निकाल कर रस खा लेते हो उसी प्रकार मेरी पुस्तक में से अपने काम की बातों को पढ़ लो और ऐसे स्थलों को मत पढ़ो। काट दो।

मैंने कहा—बाबा जी! पुस्तक आपने लिखी है, मैं कैसे उस स्थल को काट सकता हूं। आप ही उसे निकाल दें अति कृपा होगी।

———

सम्पूर्ण विश्व का एक आदर्श राज्य है

(श्री प० सातवलेकर जी)

वेद को समझने के लिए 'वेद की सच्ची पद्धति' जानने की सब से प्रथम आवश्यकता है। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन तीन क्षेत्रों में वेद अपना गूढ़ ज्ञान प्रकट करता है। विश्व के अन्दर सूर्य, चन्द्र पृथिवी आदि ग्रह उपग्रह हैं, उनका ज्ञान 'आधिदैविक ज्ञान' कहलाता है, 'आधिभौतिक ज्ञान' में मानव समुदाय के व्यवहार का ज्ञान समाविष्ट हुआ है और 'आध्यात्मिक ज्ञान' में एक मानवी देह में जो देवगण हैं उनका ज्ञान है।

आधिदैविक ज्ञान को विश्व का ज्ञान, आधिभौतिक ज्ञान को राष्ट्र का ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान को मानव शरीर के अन्दर के देवतांशों का ज्ञान हम कह सकते हैं। जो विश्व में है वही राष्ट्र में है और वही व्यक्ति के देह में है, तीनों स्थानों पर एक ही तत्त्व-ज्ञान है।

विश्व में पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीन लोक हैं, और उनमें सृष्टि के अन्तर्गत सब पदार्थ हैं। जो कुछ सृष्टि में है, वह सब इसमें है, जो कुछ था और जो कुछ होगा, वह सब इस आधिदैविक वर्णन में समाविष्ट होता है। मनुष्य इस सृष्टि को देख सकता है। सृष्टि के अन्दर जो दीख रहा है, उन पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि का वर्णन वेद में है। ये ही देवताएं हैं और इन देवताओं का वर्णन वेद में है। यही वर्णन 'विश्व की राज्य व्यवस्था का वर्णन' है।

विश्व का एक राज्य है और उसकी एक उत्तम व्यवस्था है। इसका वर्णन हम वेद में देखते हैं। राज्य शासन की विधान सभा की सुव्यवस्था के अनुसार उस विश्व राज्य व्यवस्था को हम निम्न-लिखित तालिका में रखते हैं, ऐसा रखने से पाठकों को वैदिक सूक्तों में जो विश्व राज्यशासन का वर्णन है, उसकी ठीक-ठीक कल्पना आ सकती है। देखिये विश्व राज्य व्यवस्था की यह तालिका है—

विश्वराज्य का राज्य शासक मण्डल

१ राष्ट्रपति

१ परब्रह्म—विश्वराज्य के सम्माननीय राष्ट्रपति

२ परमात्मा—विश्व राज्य के आदरणीय उप-राष्ट्रपति,

३ अदिति—(प्रकृति, देवमाता)=विश्व राज्य के मन्त्री तथा उपमन्त्रियों का निर्माण करने वाली आदि शक्ति, प्रकृति, शक्ति।

२ ध्येय दर्शन

१ पुरुष—विराट् पुरुष, मानवसमाज रूपी पुरुष (राष्ट्रपुरुष), व्यक्ति पुरुष (विश्वशान्ति के लिए सम्पूर्ण सहकार्य का ध्येय दर्शन)।

३ संसदध्यक्ष

१ सदसस्पति—विश्वराज्य के विधान सभा के अध्यक्ष।

२ क्षेत्रपति—विश्वराज्य के विधान सभा के उपाध्यक्ष, लघुसमिति के अध्यक्ष।

देवमाता अदिति के द्वारा मंत्रीमंडल में भेजे गये मन्त्री

१ शिक्षा विभाग

१ जातवेदा अग्नि—शिक्षामन्त्री, विद्यामन्त्री, ज्ञान मन्त्री (१)।

२ ब्रह्मणस्पति—सहायक उपविद्यामन्त्री।

३ बृहस्पति —सहायक उपविद्यामन्त्री।

२ संरक्षण विभाग

४ इन्द्र —प्रधान युद्धमन्त्री, अन्तर्बाह्य संरक्षण-मन्त्री (२)

५ विष्णु उपेन्द्र—उपयुद्धमन्त्री (३)

६ रुद्र —सेनासंचालन मन्त्री (४)

७ मरुत—सैनिक, गणविभाग में रहने वाले सेना के गण,

३ आरोग्य विभाग

८ अश्विनौ—आरोग्य मन्त्री (१ शस्त्र कर्म में प्रवीण और २ औषधि चिकित्सा में निपुण) (५) ।

९ औषधि औषधियों की व्यवस्था करने वाला ।

१० सोम —औषधियों का राजा ।

११ अन्नम्—वैद्यों द्वारा सुपरीक्षित खान-पान ।

१२—गौ —राष्ट्र में हर एक को गोदुग्धादि मिले इसकी व्यवस्था करने वाला ।

४ पोषण विभाग

१३ पूषा—पोषण मन्त्री, अन्नमन्त्री (६)

१४ सूर्य —शोधनमन्त्री (७)

१५ सविता—

१६ आदित्य —

५ धन विभाग

१७ भग—अर्थमन्त्री (८)

६ उद्योग विभाग

१८ विश्वकर्मा —उद्योग मन्त्री (९)

१९ वास्तोस्पति —गृहमन्त्री (१०)

२० त्वष्टा—शस्त्रास्त्र-निर्माण मन्त्री (११)

२१ ऋभुः—लघु उद्योग मन्त्री (१२)

७ सागर विभाग

२२ वरुण —सागर मन्त्री, नौका-युद्ध मन्त्री (१३)

२३ चन्द्रमाः—मानस समाधान मन्त्री (१४)

२४ पर्जन्य —कृषि मन्त्री (१५)

२५ आपः

२६ नद्यः, सरस्वती

८ जीवन विभाग

२७ वायु —जीवन मन्त्री (१६)

९ प्रकाश विभाग

२८ विद्युत्

१० स्त्री विभाग

२९ उषा—बालिका संरक्षण मन्त्री,

११ बाल विभाग

३० वेन —बालसंरक्षण मन्त्री (१७)

१२ गुप्त संरक्षण विभाग

३१ क —गुप्त संरक्षण मन्त्री (१८)

१३ वाहन विभाग

३२—अश्व

१४ मातृभूमि गीत

३३ पृथिवी

विश्व के इस राज्य में जो मन्त्री हैं, उनके वर्णन वेद मन्त्रों में इस तरह किये हैं । वे वर्णन के पद ये हैं —

१ शिक्षा विभाग

१ अग्नि—'अ-दब्ध' (१।७६।२) किसी के दबाव से न दब जाने वाला, 'अ-द्रोघ-वाक्' (६।५।१) द्रोह रहित भाषण करने वाला, 'धर्मणां अध्यक्ष.' (८।४३।२४) धर्मों का अध्यक्ष, 'उषर्बुध' (१।१२७।१०) उषाकाल में उठने वाला, 'ऋषि-कृत्' (१।३१।१६)—ऋषियों को निर्माण करने वाला, 'कवि तम.' (३।१४।१)—श्रेष्ठ ज्ञानी, 'जात वेदा.' (१।४४।१)—जिससे ज्ञान प्रसृत होता है, 'दमूना:' (१।६०।४)—मन स्वाधीन रखने वाला, 'नेता चर्षणीनां' (३।६।५) मानवों का नेता, 'मेधिर:' (१।३१।२) बुद्धिमान्, 'विपश्चित्' (१।३१।६)—विशेष विद्वान्, 'विद्वान्' (१।१४५।५)—ज्ञानी, 'सत्यवाक्' (७।२।३) सत्य भाषण करने वाला, 'सभ्य' (अ० १९।५५।६)—सभा में जाने योग्य, 'सुवीर.' (१।३१।१०)—उत्तम वीर, 'सु-मेधः' (४।७।६)—उत्तम ज्ञानी, 'सूरि' (२।६।४) ज्ञानी

विद्वान्।

ये अग्नि के वर्णन वेदमन्त्रों में हैं। ज्ञान प्रसार से इसका सम्बन्ध स्पष्ट दीखता है। अत यह विश्व राज्य का 'विद्या मन्त्री' है।

((२) 'ब्रह्मणस्पति' और (३) 'बृहस्पति' ये ज्ञान की देवताएं हैं, यह इन शब्दों से ही पता लगता है, इस कारण इनके अधिक गुण यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है।

२ संरक्षण विभाग

४ इन्द्र —यह संरक्षण मन्त्री है। यह आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से संरक्षण करता है। इसके वेद में ऐसे गुण वर्णन किये हैं — 'अ-क्षित-ऊति' (१।५।९) जिसके पास संरक्षण के साधन अनन्त हैं, 'अ-च्युत-च्युत्' (२।१२।९)-जो न हिलने वाले शत्रुओं को अपने स्थान से हिला देता है, 'अत्कं वसान' (४।१८।५)- कवच धारण करता है, 'अ-दय' (१०।१०३।७)-शत्रु पर दया न करने वाला, 'अन्-अपच्युत' (८।९२।८)-जो अपने स्थान पर स्थिर रहता है, 'अ-पराजित' (१।११।२)-जिसका पराजय नहीं होता, 'अभिमाति-षाह' (१०।४७।३)-शत्रु का पराभव करनेवाला, 'अ-भीरु' (४।२९।२) जो कभी भयभीत नहीं होता, 'अ मित्र-हा' (६।४५।१४)-शत्रु का नाश करने वाला, 'अ-युध्य' (१०।१०३।७)-जिसके साथ युद्ध नहीं किया जा सकता, 'अविता' (१।१२९।१०)-जो रक्षण करता है, 'इषु-हस्त' (१०।१०३।२)-बाण हाथ में लेने वाला, 'उग्र' (१।७।४) उग्रवीर, 'उग्रबाहु' (१।६१।१०)-बलशाली बाहु वाला, 'ऋभु-क्षा' (१।६३।३)-कारीगरों को पास रखनेवाला, 'गोत्रभित्' (६।१७।२)शत्रुके किलों को तोड़नेवाला, 'तिग्मायुध' (२।३०।३)-तीक्ष्ण शस्त्र धारण करने वाला, 'दर्तो पुरां' (१।१३०।१०) शत्रु के नगरों को तोड़ने वाला, 'धृष्णु' (१।३०।१४)-शत्रु का नाश करने वाला, 'पुरां भत्ता' (८।१७।१४)-शत्रु के नगरों को तोड़ने वाला, 'मायी' (१।११।७)-दुष्ट शत्रु के कपट करके उसका नाश करने वाला, 'युध्म' (२।२१।३)-युद्ध करने में कुशल, 'वज्र-हस्त' (१।१०७।१२)-हाथ में वज्र धारण करने वाला, 'वावृधान सहोभि' (१०।११६।६) अपने सामर्थ्यों से बढ़ने वाला, 'वीरतम' (३।५२।८) वीरों में श्रेष्ठ वीर, 'वृत्रघ्न' 'वृत्र-हन्ता' (४।२१।१०)-वृत्रको मारने वाला, 'संक्रन्दन' (१०।१०३।१)-युद्ध करने में उत्तम कुशल, 'पृतनासु सासहि' (१।१०२।९)-युद्धों में पराक्रम करने वाला।

इन पदों से स्पष्ट होता है कि यह इन्द्र 'युद्ध, मन्त्री' ही है जो अन्तर्बाह्य शत्रुओं का नाश करता है।

५ विष्णु-उपेन्द्र

विष्णु ही उपयुद्ध मन्त्री है। इसका नाम 'उपेन्द्र' है। यह नाम ही बताता है कि यह इन्द्र के साथ रह कर कार्य कर सकता है। जैसा अध्यक्ष के साथ उपाध्यक्ष कार्य करता है—

वृषशिप्रस्य दासस्य माया' पृतनाज्येषु जघ्नथु'।

ऋ० ७।९९।४

'बलवान शत्रु के कपट जाल युद्धों में तोड़े' तथा—

शंबरस्य द'हिता नव नवति च पुरः श्रथिष्ट।

ऋ० ७।९९।५

शंबर असुर के ९९ नगरियों को विनष्ट किया।'

और—

'असुरस्य सहस्र वीरान् अप्रति साक हथ।'

ऋ० ७.९९.५

'असुर के हजारों वीर अप्रतिम रीति से मारे।' यह विष्णु ने इन्द्र के साथ रहकर युद्ध का कौशल्य बताया था।

६ रुद्र—सेना संचालक मन्त्री

'मरुतों को रुद्र-पुत्र ही कहते हैं। रुद्र पिता है और उसके पुत्र मरुत हैं। इससे रुद्र का शौर्य कैसा है इसका पता लग सकता है। इसका वर्णन वेद में ऐसा है— 'स्थिर धन्वा' (७।४६) रुद्र का

धनु स्थिर रहता है, 'क्षिप्र-इषु' शीघ्र बाण चलाता है, 'अषालह सहमान' असह्य आक्रमण करने वाला, शत्रु के हमले को सहने वाला, 'तिग्मायुध' तीक्ष्ण शस्त्र वाला रुद्र है। इस वर्णन से सिद्ध होता है कि रुद्र उत्तम वीर है।

७ मरुत् सैनिक हैं

'रिशादस' (३।३६) शत्रु का नाश करने वाले, (रुद्रा) शत्रु को रुलाते हैं। इस तरह सैनिकों का वर्णन है।

३ आरोग्य विभाग

८ अश्विनौ-आरोग्य मन्त्री।

ये दो होते हैं। इनमें एक शस्त्र कर्म करने में कुशल है और दूसरा औषधों से चिकित्सा करने में प्रवीण है। इन दोनों का यह आरोग्य विभाग का बड़ा कार्यालय है। इनके ये कार्य हैं—

'गा पिन्वतं' (१।११८) गौओं को दुधारू बनाया 'अर्वत जिन्वतं' घोड़ों को वेगवान् बनाया, 'वीरं वर्धयत्'-पुत्रोंको हृष्ट पुष्ट किया,'ताग्र्यं समुद्रात् निः पारवथ' तुग्र के पुत्र को समुद्र से पार करके घर पहुंचाया, 'च्यवानं युवान चक्रथु' वृद्ध च्यवन को तरुण बनाया, 'कण्वाय चक्षु प्रत्यधत्त' कण्व को आंख लगा दिये, 'विश्पलायै आयसीं जंघा प्रत्यधत्त' विश्पला की टांग टूटी थी, उसको लोहे की टांग लगा कर उसको चलने फिरने योग्य बनाया।

अश्विनौ स्वास्थ्य मन्त्री है और उनके ये ऐसे कार्य हैं। इस स्वास्थ्य मन्त्री के साथ सम्बन्ध रखने वाले '६ औषधि, १० सोम, ११ अन्न और १२ गौ ये देवताएं इसके साथ हैं।

४ पोषण विभाग

१३ पूषा यह पोषण मन्त्री है। 'अस्य कोश न अवपद्यते (६।५४।३) इसका खजाना रीता नहीं होता। सदा भरपूर अन्न का कोश रहता है।'

इसके साथ सम्बन्ध रखने वाले '१४ सूर्य, १५ सविता, १६ आदित्य हैं। वास्तव में आदित्य १२ हैं पर उनमें से यहाँ थोड़े ही लिये हैं। क्योंकि इनसे ही अन्य आदित्यों का कार्य जाना जा सकता है।

५ धन विभाग

१७ भग—यह अर्थमन्त्री है।

'भग सत्य राध' (७।४१।३)-भग सत्य रूप से धनवान् है। 'तेन वयं भगवन्त स्याम' इसकी सुव्यवस्था से हम सब प्रजाजन उत्तम धनवान् हो जायेंगे, यह सत्य है। जिस राष्ट्र का अर्थमन्त्री उत्तम होगा, वहां के लोग निःसन्देह धनवान् या भाग्यवान् होंगे।

६ उद्योग विभाग

१८ विश्वकर्मा—यह उद्योग मन्त्री है। इस विश्वकर्मा पद से ही यह सब उद्योग के कार्य करने वाला है, यह सिद्ध है।

१९ वास्तोष्पति—'वास्तु' का अर्थ गृह है। वास्तु के सम्बन्ध के—गृह के सम्बन्ध के—सब कार्य यह करता है। आज की राजकारण की भाषा में 'गृहमन्त्री' का अर्थ राष्ट्र के अन्दर की सब व्यवस्था देखने वाला ऐसा है। पर इस 'वास्तोष्पति' का अर्थ रहने के घरों की सुव्यवस्था देखने वाला ऐसा है।

२० त्वष्टा—यह शस्त्रास्त्रों की निर्मिती करने वाला मन्त्री है।

२१ ऋभु—यह लघु उद्योगों का मन्त्री है।

ये सब उद्योग विभाग के मन्त्री हैं।

७ सागर विभाग

२२ वरुण—यह सागर मन्त्री है, नौका विभाग का कार्य यह करता है, सागर के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले कार्य यह करता है।

२३ पर्जन्य—२४ आप (जल), २५ नद्य, २६ सरस्वती—ये सब जल सम्बन्धी देव हैं। उनका सम्बन्ध वरुण के साथ ही है।

८ जीवन विभाग

२७ वायु—यह सब को जीवन देता है, इस-

लिये यह जीवन मन्त्री है।

९ प्रकाश विभाग

२८ विद्युत्—सर्वत्र प्रकाश करती है।

१० स्त्री विभाग

२९ उषा—घर में पुत्री किस तरह क्या क्या कार्य करे, और क्या क्या कार्य न करे, यह इस देवता के वर्णन में कहा है। इस कारण इसको बालिका-संरक्षण मन्त्री कहा है।

११ बाल विभाग

३० वन—घर में बालक कैसे हों, कैसे बढ़ें, कैसे कार्य करें यह इसके वर्णन में है। इस कारण इसको बाल संरक्षण मन्त्री कहा है।

१२ गुप्त संरक्षण विभाग

३१ क—यह गुप्त संरक्षण का कार्य करने वाला है। यह कौन है ? इसका पता लगता नहीं। यह गुप्त रह कर सब कार्य करता रहता है। इस लिये ये कार्य करने वाला 'क' कौन है ऐसा इनके मन्त्रों में प्रश्न पूछा है।

१३ वाहन विभाग

३२ अश्व—आदि वाहन साधन हैं और—

१४ मातृभूमि गीत

३३ पृथिवी—मातृभूमि का गीत अन्त में दिया है जो सब श्रेष्ठ कार्यों के अन्त में गाया जाता है।

इस तरह ये मन्त्री मण्डल के कार्यकर्ता देव विश्व के राज्य में हैं। ये सब विश्व का राज्य चलाते हैं। ये सुस्ती नहीं करते, अपना कार्य समय पर करते हैं, दूसरे के कार्य में दखल देते नहीं, रिश्वत लेकर कुछ कार्य का नाश नहीं करते, सृष्टि के प्रारम्भ से इनका कार्य शुद्ध हुआ है वह विश्व के अन्त तक चलता रहेगा। इस कारण ये आदर्श मन्त्री हैं। हमारे मानवी राज्य के मन्त्रियों के सामने रखने योग्य ये आदर्श मन्त्री हैं।

'आधिदैविक विश्वराज्य' का यह वर्णन 'आधि-भौतिक मानवी राज्य' के लिए आदर्श है। ये ही देव मानवी शरीर में रहते हैं, इसलिए यही वर्णन अध्यात्म में लगाने से अर्थात् मनुष्य के शरीर में घटाने से, मानव का जीवन कैसा उन्नत हो सकता है इसका ज्ञान हो सकता है। इस तरह तीनों क्षेत्रों के अर्थ वेद मन्त्रों के होते हैं। वे देखने से वेद का गुह्य अर्थ ध्यान में आ सकता है।

इसलिए प्रथम आधिदैविक अर्थ सब वेदों का प्रकाशित होना आवश्यक है। इससे अन्य अर्थ भी सुबोध रीति से ज्ञात हो सकते हैं।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के उपकुलपति प्रो० सत्यव्रत का वक्तव्य

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के पूर्व उपकुलपति श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के अपना कार्यकाल पूरा करके सेवा निवृत्त होने पर प्रोफेसर सत्यव्रत जी सिद्धान्तालकार को नया उपकुलपति तथा मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया है। प्रो० सत्यव्रत जी इस सस्था के पुराने स्नातक हैं और देश के जाने माने शिक्षाशास्त्री और समाजशास्त्री हैं। इन्होने शिक्षा, समाजशास्त्र और सस्कृति पर अब तक लगभग एक दर्जन विशाल ग्रन्थ लिखे हैं और इस लिखित साहित्य के कारण उन्होने एक प्रतिभाशाली विचारक के रूप में ख्याति पायी है। समाजशास्त्र के विषयों के अद्वितीय लेखक के रूप मे उन्हे मगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है। इसके अतिरिक्त इन्हे अपनी सभी पुस्तकों पर राज्य सरकारो ने और केन्द्रीय सरकारों ने पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया है। इनकी प्रतिभाशाली पत्नी श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल हिन्दी की ख्याति प्राप्त लेखिकाओं में हैं और राज्यसभा की सदस्य हैं।

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालकार ने गुरुकुल विश्वविद्यालय के उप-कुलपति पद का कार्य संभालने के लिये हरद्वार को रवाना होने से पहले एक प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के युग से पूर्व गुरुकुल ने भारत के ही नहीं विश्व के शिक्षा-विज्ञों का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया था। जो विदेशी यात्री इस देश में आते थे वे गुरुकुल कागडी को देखे विना नहीं जाते थे। यह सस्था भारतीय सस्कृति की प्रतीक समझी जाती थी, देश-भक्ति तथा राष्ट्रीयता का गढ़ समझी जाती थी, ब्रिटिश शासक इस सस्था से जितना घबराते थे, राष्ट्रीयतावादी उतना ही इस सस्था का आदर करते थे। महात्मा गांधी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत आये तब उन्हें यह सस्था अपने इतने निकट की अनुभव हुई कि उनके विद्यार्थी कई मास तक गुरुकुल में निवास करते रहे। जिस प्रकार आजकल देश के नेता कांग्रेस के अधिवेशनो मे एकत्रित होते हैं उस प्रकार उस काल में यही नेता गुरुकुल के उत्सवो मे आया करते थे। शिक्षा के क्षेत्र मे गुरुकुल ने जिन नवीन परीक्षणो को प्रारम्भ किया वे अद्वितीय थे। मातृभाषा मे उच्चतम शिक्षा देना, गुरु-शिष्य का दिन-रात का साथ रहना, सदाचार को शिक्षा का ध्येय बनाना—ये ऐसे विचार थे जिनकी आज तक चर्चा तो सब जगह होती है। परन्तु जिन्हे गुरुकुल के अतिरिक्त क्रिया में कहीं परिणित नही किया जा सका। अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली की सम्भावनाए बहुत अधिक बढ़ गई हैं। गुरुकुल जिन सिद्धान्तों को पिछले साठ साल से क्रियात्मक रूप में करता चला आ रहा है उन्हें

देश-व्यापी बनाने की भावना चारों तरफ जाग उठी है। अब सब विश्व विद्यालय मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं। इस बात को अनुभव किया जा रहा है कि गुरु-शिष्य के निकट के सम्बन्ध के बिना अनुशासन हीनता की समस्या का समाधान नहीं होसकता, सदाचार-सच्चरित्र तथा ब्रह्मचर्य का पालन शिक्षा का ध्येय होना चाहिये। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यो गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली के सिद्धान्त निखरते चले आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के इस युग में गुरुकुल-सस्था शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा-विज्ञों का मार्ग-प्रदर्शन करने के लिये सब से उपयुक्त सस्था है।

गुरुकुल के सम्बन्ध में कई क्षेत्रों में अभी तक कई प्रकार के भ्रम फैले हुए हैं। इन भ्रमो में सब से प्रबल भ्रम यह है कि इस सस्था में सस्कृत और व्याकरण रटाने के सिवाय कुछ नहीं पढाया जाता, यहा के विद्यार्थी ससार के सम्पर्क में नहीं रहते। ये सब बातें गलत हैं। गुरुकुल कांगडी ने अपने को परिस्थितियों के अनुसार आश्चर्य जनक तौर पर बदला है। इस समय गुरुकुल में सस्कृत की उच्चतम शिक्षा के साथ-साथ अग्रेजी, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि की भी ऊची से ऊची शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त गुरुकुल में आगरा विश्व-विद्यालय से सबधित साइन्स-कालेज हैं, जिसमें बी० एस० सी० की शिक्षा देने का प्रबन्ध है। इस कालेज का उद्घाटन प्रधान मन्त्री श्री० जवाहरलाल जी ने किया था। जीवशास्त्र की पूरी सामग्री यहां के सग्रहालय में मौजूद हैं। आयुर्वेद महाविद्यालय, कृषि महाविद्यालय आदि अनेक सस्थाएं कई वर्षों से गुरुकुल के अन्तर्गत खुली हुई हैं। गुरुकुल कागडी के अन्तर्गत कन्याओं की सस्था "कन्या गुरुकुल" नाम से पिछले ३६ वर्षों से देहरादून में खुली हुई है जिनकी स्नातिकाये सीधा एम० ए० में दाखिल हो सकती हैं। गुरुकुल में पूर्व तथा पश्चिम की शिक्षा का अपूर्व समिश्रण है जो अन्य किसी सस्था में नहीं पाया जाता। गुरुकुल के स्नातकों का सस्कृत तथा आंगलभाषा का ज्ञान इतना सतुलित होता है कि देश की वर्तमान सक्रान्ति-कालीन अवस्था में जब कि हम अग्रेजी से हिन्दी की तरफ बढते जा रहे हैं इस सस्था में शिक्षा-दीक्षा पाये हुये स्नातक तथा स्नातिकायें हिन्दी पत्रों में सपादन, शिक्षा-सस्थाओं में शिक्षण, नव-साहित्य के निर्माण आदि कार्यों के लिये अत्यधिक उपयुक्त हैं। जो लोग गुरुकुल के स्नातक तथा स्नातिकाओं के सम्पर्क में आते हैं उनके गुरुकुल सम्बन्धी भ्रम इनकी योग्यता तथा विद्वत्ता को देखकर अपने आप दूर हो जाते है।

यह हर्ष का विषय है कि अपनी सरकार गुरुकुल को अपने स्वतन्त्र रूप में देखना चाहती है और गुरुकुल को अपनी गुरुकुलीयता कायम रखते हुए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार इसे पर्याप्त आर्थिक सहायता दे रही है। इस समय गुरुकुल कागडी तथा उसके अन्तर्गत कन्या-गुरुकुल को जो सरकारी सहायता मिल रही है, आशा है कि वह उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी और ये संस्थायें जनता तथा सरकार की कृपा का पात्र बनी रहेंगी।

❀

प्राचीनता

(हिन्दी सुपीरियारिटी का धारावाहिक अनुवाद)

(अनुवादक—श्रीमाधवचन्द्र पाठक)

(१)

आर्य संस्कृति की प्राचीनता आश्चर्यजनक और उसकी सजीवता चामत्कारिक है। यूनान का काल्पनिक युग और मिश्र का सूफीकाल आर्य संस्कृति के इतिहास की तुलना में कल की बातें जान पड़ती हैं। पृथ्वी की आयु की गणना कतिपय सहस्रों वर्षों की गिनती से नहीं अपितु लाखों करोड़ों वर्षों की गिनती से ही ठीक प्रकार से हो सकती है आर्य संस्कृति इस जगत् में सबसे पहली संस्कृति है। राष्ट्रों का उत्थान और पतन हुआ, साम्राज्य स्थापित और नष्ट हुए, जातियो का उदय और अस्त हुआ परन्तु आर्य संस्कृति जिसने उनका उत्थान और पतन, उदय और विनाश सभी कुछ देखा अब तक जीवित है। प्राचीन राष्ट्रो के प्रति प्राचीनता के दावो पर विचार करने के पश्चात् काउ ट जोन्सजर्ना कहते हैं। "कोई भी देश आर्यों की संस्कृति और उनके धर्म्म की प्राचीनता की तुलना में खड़ा नहीं रह सकता।"[१]

अमेरिका के येल कालेज के प्रधान डा० स्टाइल्ज आर्य ग्रन्थों की आश्चर्यजनक प्राचीनता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने श्रीयुत डवल्यू जोन्स को लिखकर उनसे अनुरोध किया कि वे अ ग्यों के धर्म्म ग्रन्थों में आदम के समय के ग्रन्थो की खोज करे।"[१]

श्रीयुत हालहेड आर्यों के चारो युगों का वर्णन करने के उपरान्त बडी श्रद्धा के साथ यह कहने के लिए वाध्य हुए कि "इस प्राचीनता के समक्ष मूसा द्वारा प्रतिपादित सृष्टि की आयु बडी आधुनिक जान पड़ती है और इस प्रकार के युगों के समक्ष ईसाइयों की सृष्टि रचना का काल एक मात्र क्षणिक झाकी है।"

प्लाइनी (Pliany) का कथन है कि वकस (Bacchus) के समय से लेकर सिकन्दर के समय तक १५४ राजाओं ने भारतवर्ष पर शासन किया और उनका शासन काल ६४५१ वर्ष से अधिक रहा।

राजतरङ्गिणी के अनुवाद में अब्बुल फजल उन राजाओं के नाम उद्धृत करते हैं जिनका नाम इस इतिहास में अ कित है और जिनके सम्बन्ध मे यह कहा जाता है कि इन्होंने निरन्तर ४१०६ वर्ष ११ मास और ६ दिन तक राज्य किया। प्रोफेसर हीरेन (Heeren) कहते हैं "डाइनीसियस (भारतीय राजा) से

---

१ थियोगोनी आव् दी हिन्दूज पृ० ५०
(हिन्दू देवताओं की वशावली।)

१ वार्डस माइथोलोजी वा०१ पृ० १४४

लेकर चन्द्रगुप्त के समय तक ६०४२ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।" मैगस्थनीज कहते हैं कि स्तम्बों और चन्द्रगुप्त के मध्य ६०४२ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।"[१]

प्रोफेसर मैक्स डन्कर [२] कहते है कि "स्तम्बोज ने,जो डाइनोसियस का दूसरा नाम है, अपना शासन ईसा से ६७७० वर्ष पूर्व आरंभ किया था । उनके मतानुसार युधिष्ठिर का सम्वत् विक्रमादित्य के सम्वत् से ३००० वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था ।"[३]

काउन्ट जोन्सजर्ना कहते हैं "सिकन्दर के राजदूत मैगस्थनीज ने जो चन्द्रगुप्त के दरबार मे रहे थे पटना के (Polybhottea) राजाओ के शासन काल की तालिका ज्ञात की थी जिसमे १५३ राजाओ की नामावली अंकित है । इस तालिका में उनके शासन की अवधि का स्पष्ट रूप से उल्लेख है और यह शासन लगभग ६४५१ वर्ष रहा । इस तालिका के अनुसार डाइनिसियस का शासन काल ईसा के जन्म से लगभग ७००० वर्ष और मिश्र के सबसे पहले शासक के शासन से १००० वर्ष पूर्व माना जाता है जिसने गाइजेह नामक पिरेमिड का निर्माण किया था और जिसने ईसा से ५८६७ वर्ष और सूफी से २००० वर्ष पूर्व शासन किया था ।"[४]

पुराणो के अनुसार बृहद्रथो के वंश ने प्रद्योतों (श्रीयुत डब्लू, जोन्स के मतानुसार । जिन्होंने ईसा के जन्म से पूर्व लगभग २१०० वर्ष तक शासन किया था) से पूर्व सोमापी से लेकर रिपुन्जय तक १००० वर्ष पर्यन्त मगध पर शासन किया था । "बृहद्रथ वंश के प्रथम राजा से पूर्व सहदेव, जरासन्ध और बृहद्रथ ने मगध पर राज्य किया ।"[१]

गणना की इकाई वंश माने गए हैं न कि व्यक्ति । इस तथ्य से प्राचीन आर्य साम्राज्य की प्राचीनता सहज ही प्रतिपादित हो जाती है ।

काउन्ट जोन्सजर्ना आर्यों के ज्यामिति शास्त्र की प्राचीनता पर विचार करने के पश्चात कहते है "आर्यों की सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध मे जो प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रबल हेतु विद्यमान है, उदाहरणार्थ उनके विशाल मन्दिर एलीफेन्टा और अलौरा की गुफाए आदि जो ऊँची पर्वत चट्टानो को काटकर बनाए गए हैं और जिनमें किए गए परिश्रम को देखकर दातो तले उङ्गली दबानी पड़ती है उनकी मिश्र के पिरामिड़ो के साथ तुलना की जा सकती है और वे मन्दिर निर्माण की श्रेष्ठता की दृष्टि से उन पिरामिडों से बढ़े चढे हैं ।"[२]

कैप्टेन ट्रयर कहते हैं । मै इस बात को स्वीकार करता हूँ कि सभ्यता में बढे चढ़े

१ हिस्टोरिकल रिसर्च, वा० २ पृ० २१८
२ हिस्ट्री आव एन्टीक्यूटी, वा० ४ पृ० ७४
३ " " " वा० ४ पृ० २१६
४, आर्यो की वंशावली पृ० ४५

५ मैक्सडन्कर का प्राचीनता का इतिहास (History of Antiquity)वा १ पृ०७६
१ मैक्स डन्कर का प्राचीनता का इतिहास (History of Antiquity) वा० १ पृ० ७६
२ हिन्दुओं के देवताओं की वंशावली (Theogony of Hindus) पृ० ३८

साम्राज्य हमारे ईस्वी सन् से कम से कम ३००० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। इस सीमा से परे मैं 'रामायण' के नायक महात्मा राम को देखता हूँ।"[३]

महाभारत के अनुसार अयोध्या के वैभव का प्रसार १५०० वर्ष तक व्याप्त रहा। इसके पश्चात सगर के वशज एक राजा ने कन्नौज के राज्य की स्थापना की। इन्द्रप्रस्थ के नगर की नीव भी बहुत प्राचीन काल में रखी गई थी (पोवर वाल्यूम १ पृ २६३) उस समय यह नगर अपने वैभव के लिए प्रसिद्ध था। (वाल्यूम १ पृ० ६०६) रनेल का कथन है कि ईसा के जन्म से १००० वर्ष पूर्व कन्नौज बसाया गया था।

यूरोपियन लेखकों की इन मान्यताओ को एक ओर रख दीजिए जो प्रो० विल्सन के कथनानुसार इस भय से कि कही हम भोले लेखक न समझ लिए जांय सहसा ही अविश्वास की बुराई में ग्रस्त हो जाते हैं और जिस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं होता उसे स्वीकार नही करते विशेषत भारत के सम्बन्ध में जिसका इतिहास युगो पुराना है और जिसके राजाओं की वशावली और उसकी प्राचीनता के विषय में जो धारणाए बनाई जाती हैं वे बडी गलत सिद्ध हो जाती हैं। भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के पक्ष में एक और महत्वपूर्ण साक्षी है। काउन्ट जार्नस्टजर्ना कहते हैं दबिस्तान [१] नामक लेख में जो काश्मीर में मिले हैं और जिन्हें श्रीयुत डब्लू जोन्स यूरोप में ले गए थे वेक्टिया में राज्य करने वाले हिन्दू राजाओं की नामावली अकित है जो सिकन्दर के भारत पर आक्रमण से ५६०० वर्ष और सिकन्दर के समय के इतिहास में वर्णित पृथ्वीतल पर सबसे पहले मनुष्य के आविर्भाव से कई सौ वर्ष पूर्व वहां शासन कर चुके थे।

ये राजा आर्य थे इस बात को प्राय सभी स्वीकार करते हैं।[२] इस प्रकार दबिस्तान के अनुसार ईसा के जन्म से ६००० अथवा विक्टोरिया के काल से लगभग ८००० वर्ष पूर्व भारत की सभ्यता बढी चढी थी।

अकेली यह बात यह सिद्ध करने के लिए पर्य्याप्त है कि प्राचीन आर्य जाति निर्विवाद रूप से ससार की सर्वप्रथम सभ्य जाति थी। आर्य जाति की अद्भुत प्राचीनता का एक दूसरा अकाट्य प्रमाण यह है कि प्राचीन काल की समस्त जातियों की सभ्यताओ का स्रोत भारतवर्ष था। भारत ने ससार के समस्त भागों में उपनिवेश स्थापित किए थे और बाद में ये उपनिवेश मिश्र, यूनान, फारस, अमेरिका आदि के नाम से प्रख्यात हुए थे। स्कैन्डीनेबिया, चीन और अन्यदेशों ने अपनी सस्कृति और धर्म की प्रेरणा हिन्दुओं से ग्रहण की। सक्षेप में जैसा कि आगे वर्णन किया जायगा भारत ने ही शेष ससार को ज्ञान-विज्ञान धर्म और सस्कृति प्रदान की।

ससार का सबसे पुराना सिक्का आर्यो

३. मैक्स डन्कर का प्राचीनता का इतिहास वा ४ पृ० ७७ (Max dunkers History of antiquity)

१ हिन्दुओं के देवी देवता—पृ० १३४,

२ मिल कृत 'भारत का इतिहास' वो० २ पृ० २३७,२३८

का ही माना जाता हैं [1] और प्राचीन भारत के सिक्कों के सम्बन्ध में हुए आधुनिक अनुसधान आर्य सस्कृति की प्राचीनता के ज्वलन्त प्रमाण है ।

श्रीयुत प्रिंसप (Princep) कहते है "ईसा के जन्म से ठीक ८०० वर्ष पूर्व अथवा उसके आस पास आर्य्य जनों में लेन देन की ऐसी रीति प्रचलित थी जिसमे धातु के सुनिश्चित और सही बट्टे प्रयुक्त हुआ करते थे । इतना ही नही उन दिनों धातु के बने बहुत छोटे २ सुविधापूर्ण सिक्को का प्रचलन था ।"[4]

परन्तु भारत की प्रत्येक वस्तु यूरोपियनो को आश्चर्य में डालने वाली होती है । बर्बरता पूर्ण धार्मिक उन्माद के विध्वसकारी उपद्रवो के होते हुए भी ऐसी पर्य्याप्त सामग्री अवशिष्ट रह गई है जिसके आधार पर हम पृथ्वी की वर्तमान आयु ज्ञात कर सकते हैं ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका ग्रन्थ मे इस विषय पर साङ्गोपाङ्ग विचार किया है और चादापुर में बरेली के ईसाई पादरी श्रीयुत् स्काट महोदय के साथ भी इस विषय पर उनका शास्त्रार्थ हुआ था । (देखे आर्य्य दर्पण का १८८० के मार्च मास का अक पृ० ६७, ६८) भारत में प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को सकल्प का ज्ञान होता है जिसका प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर यहा तक कि गगा मे डुबकी लगाते समय भी उच्चारण किया जाता है । 'सकल्प' वह कुजी है जिससे वर्तमान सृष्टि की आयु का भेद सहज ही खुल जाता है ।

"ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वतरेऽष्टाविशतितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे आर्य्यावर्त्तान्तर्गतैकदेशे अमुकनगरे अमुक-सवत्सरायनर्त्तुमासपक्षदिननक्षत्रमुहूर्तेऽवेद कार्य्य कृत क्रियते वा ।"

आगे के विषय को समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि आर्य्यों के सृष्टियोत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि की आयु नियत होती है और एक के उपरान्त दूसरी सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया का क्रम चलता रहता है । सृष्टि निश्चित अवधि तक एक रूप में स्थिर रहती है और उसके पश्चात इतनी अवधि तक अपने कारण में विलीन रहती है । पहली अवधि ब्राह्म दिन और दूसरी अवधि ब्राह्म रात्रि कहलाती है ।

अथर्ववेद के अनुसार ब्राह्म दिन ४,३२०,०००,००० वर्ष का होता है ।

"शत तेऽयुत हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्य."

अथर्व० प्र० ८ । अनु० २ । म० २१ ॥

ब्राह्म दिन में १००० चतुर्युगी (४ युग) होती है । मनुस्मृति के अध्याय १ में बताया गया है ।

दैविकानां युगानान्तु सहस्र परिसख्यया ।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेय तावती रात्रिमेव च ॥

मनु० अ० १ श्लोक ७२ ॥

एक चतुर्युगी वा दिव्य युग का अभिप्राय

१ –आर्यों का सिक्का निश्चित रूप से बहुत पुराना है भले ही इसका मूल्य और स्वरूप कोई क्यों न हो—ऐलफिन्सटनका भारत–पृ० १७६

४ –भारतीय प्राचीनता पर लिखे प्रिंसप के निबन्ध पृ० २२३

है ४ युगो का काल—सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग और इन चार युगो मे १२००० दिव्य वर्ष होते हैं—सत्युग में ४८००, त्रेता मे ३६००, द्वापर में २४०० और कलियुग मे १२०० दिव्य वर्ष होते हैं।

मनुस्मृति के अध्याय १ श्लोक ७१ और ७२ को देखे।

"यदेतत् परिसख्यातायादावेव चतुर्युगम्।
एतद् द्वादश साहस्र देवाना युगमुच्यते ॥७१॥

चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा तु कृत युगम्।
तस्य तावच्छती सध्या सन्ध्याशश्च तथाविध ॥
इतरेषु स ससध्यांशेषु च त्रिषु। एकापायेन
वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥७०॥

एक दिव्य वर्ष ३६० साधारण वर्षो के बरावर होता है।

सत्युग	४८०० × ३६० =	१,७२८,००० वर्ष
त्रेता	३६०० × ३६० =	१,२९६,०००
द्वापर	२४०० × ३६० =	८६४,०००
कलियुग	१२०० × ३६० =	४३२,०००
	१ चतुर्युगी =	४,३२०,००० वर्ष

इस प्रकार ब्राह्म दिन मे ४,३२०,०००,००० वर्ष हुए वर्तमान सृष्टि इसी रूप मे इतनी अवधि तक रहेगी।

ब्राह्म दिन मे १४ मन्वन्तर होते हैं और १ मन्वन्तर मे ७१ चतुर्युगी होती है। मनुस्मृति में बताया गया है —

यत् प्राग् द्वादशसाहस्रमुदित दैविक युगम्।
तदेक सप्ततिगुण मन्वन्तरमिहोच्यते ॥
मनु० अ० १ । श्लो० ७९ ॥

सूर्य सिद्धान्त मे भी बताया गया है।

युगानां सप्तति सैका मन्वन्तर मिहोच्यते। कृताब्दसङ्ख्या तस्यान्ते सन्धि प्रोक्तो जलप्लव। ससन्धयस्ते मनव कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश। कृतप्रमाण कल्पादौ सन्धि पञ्चदश स्मृत ॥ इत्थ युगसहस्रेण भूतसहार कारक। कल्पो ब्राह्ममह प्रोक्त शर्वरी तस्य तावती ॥

सूर्यसि० अ० १ श्लोक। १८। १९। २० ॥

सकल्प के अनुसार जो ऊपर उद्धृत किया गया है, वर्तमान सृष्टि की उत्पत्ति के समय से अब तक ६ मन्वन्तर* व्यतीत हो चुके हैं, ७वा मन्वन्तर इस समय चल रहा है और शेष ७ और व्यतीत होने है। १ मन्वन्तर मे ४,३२०,००० × ७१ = ३०६ ७२०,००० वर्ष होते है। अब तक ६ मन्वन्तर, १८४०,३२०,००० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कलियुग की इस समय २८वी चतुर्युगी चल रही है। इस चतुर्युगी मे कलियुग के ५०१६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। (१९०९)इस समय विक्रम सम्वत १९७३ है और कलियुग के ४,३२,०००-५०१६=४२६९८४ वर्ष और व्यतीत होने हैं। इस प्रकार ७ वे मन्वन्तर के ११६,६४०,००० (४,३२०,००० × २७) + ३८९३००१६ (२८ वी चतुर्युगी + का ४,३२०,०००-४२६९८४= ३८९ ३०६०) १२०,५३३,०६० वर्ष व्यतीत होचुके हैं। प्रलय के दिन तक २१४,७०४,०००० (शेष ७ मन्वन्तर) + १८६४८६९४० (७वे मन्वन्तर का शेष) २३३३२२६९८४ वर्ष का समय व्यतीत होना शेष रह जायगा।

यूरोप के निवासियो को, जिनका दृष्टिविन्दु सीमित अवधि पर केन्द्रित रहता है, यह प्राची-

* स्वायम्भव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष।

गीता में वेदों की उपेक्षा

(श्री मंगलदेव जी शास्त्री)

गीता के दूसरे अध्याय में निष्काम कर्मयोग का उपदेश अर्जुन को देते हुए श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि —

हे ! अर्जुन इस निष्काम योग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नही है और उलटा फलरूप दोष भी नही होता है। इसलिये इस निष्काम कर्मयोग रूप धर्म का थोडा भी साधन, जन्म, मृत्युरूप महान भय से उद्धार करता है ॥ (गीता अ० २ । ४०)

और हे अर्जुन ! इस कल्याण मार्ग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है और आसानी (सकामी पुरुषो की) बुद्धिया बहुत भेदो वाली, अनन्त होती है और है ! जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में

नता आश्चर्यजनक प्रतीत होगी। निश्चय ही उन कानोको अविश्वनीय जान पडेगी जो उस अवधि को सुनने के अभ्यस्त है जिसकी उच्चतम सीमा ६ हजार वर्ष से आगे नही जाती। परन्तु अब स्थिति में सुधार हो रहा है और ये लोग समय आने पर ऐसे जगत् में प्रविष्ट होगे जिसमें सैकडो का स्थान हजार लेगे। (अब तक विज्ञान की ऊहापोह से वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी की आयु लगभग ४ अरब वर्ष की हैं और यही आयुवेद में प्रतिपादित है–अनुवादक)।

श्रीयुत वाल्डविन कहते हैं—"नि सन्देह मानव जाति की प्राचीनता उस समय से कही अधिक है जिसका प्रतिपादन उन लोगो के द्वारा होता है जिनकी भूतकाल विषयक मान्यताए अब मध्ययुग की घटनाओ पर आधारित काल निर्णय की प्रणालियो से प्रशासित और नियमित होती हैं। भूगर्भ शास्त्र को छोड भी दें तब भी भवन-निर्माण-विद्या और भाषा विज्ञान से यह निश्चित हो जाता है कि मानव जाति की उत्पत्ति और ईसा के प्रादुर्भाव के बीच के काल की ठीक २ गणना तभी हो सकती है जबकि यहूदियो के धर्माधिकारियो द्वारा निर्णीत अधिक से अधिक काल की शताब्दिया सहस्राब्दियो में परिवर्तित होजाय। भवन निर्माण विद्या और भाषा विज्ञान से इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि मानव सभ्यता अति प्राचीन है और प्राचीन युगों में यह उन क्षेत्रो में सुविकसित रूप लिये हुये थी जिन्हे अब वर्बर और असभ्य बताया जाता है। अटकल वा कल्पना से काम लेने वालों का यह कथन है कि पृथ्वीतल पर आविर्भूत होने के समय से लेकर लगभग अब तक मनुष्य की अवस्था घोर बर्बरता और असभ्यता की रही है। यह कथन कपोल कल्पना मात्र है जो मानव की उत्पत्ति के अप्रतिपादित और प्रतिपादित न हो सकने वाले सिद्धान्त के समर्थन में प्रयुक्त हुआ करता है।❀

❀ वाल्डविन की एनशियन्ट अमेरिका पृ० १८१ (प्राचीन अमेरिका)

❀

(गी० अ० २ । ४१) प्रीति रखने वाले स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ माननेवाले, इससे बढ़कर और कुछ नहीं है, ऐसे कहने वाले वे अविवेकी-जन, जन्मरूप, कर्म-फल को, देने वाली, (और) भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, बहुत सी क्रियाओं के विस्तार वाली इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभा युक्त वाणी को कहते हैं।

(गी० अ० २ । ४२ । ४३)

उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्तवाले, तथा भोग और ईश्वर में आसक्ति वाले, (उन पुरुषो के) अन्त करण में, निश्चयात्मक बुद्धि नही होती है ॥ (गी० अ० २ । ४४)

टिप्पणि—गीता के दूसरे अध्याय में ४८ वे श्लोक तक सांख्य का निरूपण कर ३९ वें श्लोक से गीताकार ने योग (निष्काम कर्मयोग) के वर्णन का उपक्रम किया है। गीता में योग नाम निष्काम कर्म का है। फल की कामना न करते हुए कर्तव्य बुद्धि से जो कर्म किया जाता है उसे निष्काम कर्म कहते हैं। इस ध्येय को ध्यान में रखकर इस अध्याय के ४१ वे श्लोक से लेकर ४० वें श्लोक तक फल की कामना से किये हुए कर्म को बुद्धि में विक्षेप पैदा करने वाला कहकर, निन्दित कहा है और फल की कामना से ही कर्म करना चाहिये, इसके बिना कुछ किया ही नहीं जा सकता "ऐसा कहने वाले लोगों को वेद के ज्ञानी न कहकर, "वेदवादरत" अर्थात् श्रुति (वेद) में प्रीति रखने वाले कहा है। इस द्वितीय अध्याय के ४५ वे और ४३ वे श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा है कि —

त्रैगुण्य विषया वेदानिस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्थोनिर्योग क्षेमआत्मवान् ॥
गी० अ० २ । ४५ ॥

हे अर्जुन! सब वेद तीनो गुणों के और कार्यरूप ससार को विषय करने वाले हैं (इसलिए तू) असंसारी अर्थात् निष्कामी (और) सुख दुःखादि द्वन्दों से रहित, नित्यवस्तु में स्थित (तथा) योग क्षेम को न चाहनेवाला (और) आत्म परायण हो ॥

यावानर्थ उद्पाने सर्वत सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वे देषु ब्राह्मणस्य विजानत ॥

क्योंकि (मनुष्यका) सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर, छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का, (भी) सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है। अर्थात् जैसे बडे जलाशय के प्राप्त हो जाने पर, जल के लिये छोटे जलाशयों की आवश्यकता नही रहती वैसे ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होने पर, आनन्द के लिये वेदो की आवश्यकता नही रहती।

टिप्पणी—इन उपरोक्त दोनो श्लोको का गीतोक्त प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है, और उक्त श्लोक गीताकार के मत के अनुकूल भी नही हैं, क्योकि ऊपर से निष्काम कर्म योग का वर्णन चला आता है, ऊपर के श्लोको में फल की आकाक्षा से कर्म करने वालो की निन्दा की गई है और ४७ वे श्लोक में निष्काम करने का विधान किया गया है। ऐसी अवस्था में इन बीच के दो श्लोकों में भी निष्काम कर्म के सम्बन्ध में ही कुछ कहना चाहिए था। परन्तु

इनमें स्पष्ट ही वेदों को निन्दा की गई है और उनके विषय में उपेक्षा का भाव प्रकट किया गया है। इसलिये प्रकरण के साथ सम्बन्ध न होने से ये श्लोक वेद के निन्दकों ने मिला दिए हैं। ये श्लोक गीता कारके मत के अनुकूल भी नहीं हैं क्योंकि त्रैगुण्य से ऊंचा उठे हुए अधिकारी के लिए भी कृष्ण भगवान् ने वेदविहित-कर्मों का अनुष्ठान आवश्यक बतलाया है। अपने ही विषय में उन्होने कहा है कि —

न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषुलोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्तएव च कर्मणि ॥
गी० अ० ३। २२ ॥

अर्थ —हे अर्जुन ! दोनो लोकों में मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है और न कोई वस्तु हीं ऐसी है जिसकी प्राप्ति की मुझे इच्छा हो परन्तु फिर भी कर्म करता हूँ ॥ इसी प्रकार १८ वें अध्याय में भी यज्ञ आदि सब (वेदोक्त) कर्मों का विधान किया है। परन्तु यहा कर्मों का विधान करने वाले वेद को ही छोड देने की अनुमति दी गई है ॥

उपरोक्त श्लोको में यह भी कहा गया है कि वेदो मे तीन गुणो का ही विधान है और विज्ञानीकों वेदो की आवश्यकता नही है। पर यह विचार भी गीताकार के मत के विरुद्ध है। गीताकार ने वेदो में तीन गुणो का ही नहीं, परमेश्वर का भी वर्णन माना है—

यथा —यदक्षर वेदविदो वदन्ति,
विशन्ति यद्यतयोबीतरागा।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्तेपद सग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ गीता अ० ८।११॥

अर्थ —वेद के ज्ञाता लोग जिस अविनाशी ब्रह्म का व्याख्यान् करते हैं, वीतरागयति, जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसकी प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, वह सक्षेप से कहता हूँ।

टिप्पणी —इस श्लोक से स्पष्ट है कि वेद के जानने वाले ही ब्रह्म का वर्णन कर सकते हैं। इसलिए गीताकार वेद में ब्रह्म का पूर्ण वर्णन मानते हैं। गीताकार यह भी नहीं मानते कि विज्ञानी के लिए वेदोकी आवश्यकता नही है।

१४ चौदहवें अध्याय से लेकर अठारहवें अध्याय तक गीता में विज्ञान का वर्णन किया गया है और वह विज्ञान है सत्यादि गुणों, और आत्मा का विवेक। परन्तु इस विज्ञान के बाद भी इस वर्णन के अन्त में उन्होने ईश्वर की शरण में जाने की आवश्यकता बतलाई है और ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होता है वेदों से, इसलिए विज्ञानी के लिए भी गीता के मत में वेदों की आवश्यकता है अत उपरोक्त गी० अ० २ के श्लोक ४५ व ४६ जो वेदो की निन्दा और उपेक्षा करने के लिये लिखे गये है वेद निन्दकों का प्रक्षेप है ॥ वेदोंहि अखिलो धर्म मूलम् ॥ वेद ही सब धर्मों का मूल है। सर्ववेदात् प्रसिद्धति। वेद से ही सब की प्रसिद्धि होती है। वेद ही सब सत्य विद्याओ के पुस्तक हैं। वेदो का पढ़ना पढाना, सब आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषो) का परमधर्म्म है।

महा मानव कृष्ण

महर्षि दयानन्द ने अपनी आर्ष दृष्टि से श्री कृष्ण के चरित्र की महत्ता, दिव्यता और पवित्रता को भी स्पष्ट रूप से देखा। उसमें उन्हें आप्त गुणों की अभिव्यक्ति दृष्टि गोचर हुई। साथ ही कृष्ण विषयक जन-प्रचलित धारणाओं को देखकर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। कृष्ण के विषय में उन्होंने निम्नलिखित मार्मिक उद्गार प्रकट किए—

'देखो' श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम पर-स्त्रियों से रास मंडल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाए हैं। इसको पढ़ पढ़ा-सुन-सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती। सत्यार्थप्रकाश पृ० २१५ वै० य० २६ वां सस्करण

कृष्ण चरित्र के प्रसिद्ध लेखक बङ्किम चन्द्र का मत भी ऋषिदयानन्द के उपर्युक्त कथन से शत प्रतिशत मिल जाता है। वे लिखते —

"कृष्ण को हम लोग क्या समझते हैं यही कि वे बचपन में चोर थे–दूध, दही, मक्खन चुरा कर खाया करते थे। युवावस्था में व्यभिचारी थे, और उन्होंने बहुतेरी गोपियों के पतिव्रत धर्म्म को नष्ट किया, प्रौढ़ावस्था में वचक और शठ थे। उन्होने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिए। क्या इसी का नाम भगवच्चरित्र है।'

आर्य जीवन का सर्वांगीण विकास कृष्ण चरित्र में दिखाई देता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नही जिसमें उन्हें सफलता न मिली हो। राजनीति और समाज नीति, धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रो में श्री कृष्ण की अद्भुत प्रतिभा दिखाई पडती हैं। एक ओर वे महान् राजनीतिज्ञ' क्रान्ति-विधाता और नवीन साम्राज्य स्रष्टा के रूप में दिखाई पडते है तो दूसरी ओर अध्यात्म पथ के निराले पथिक के रूप में। उनके समय में भारत मे गाधार से लेकर सह्याद्रि पर्वत माला तक क्षत्रिय राजाओं के छोटे २ स्वतन्त्र राज्य थे। इनको कोई एक सूत्र में बाधने वाला न था एव चक्रवर्ती सम्राट के न होने से अनेक राजा अत्याचारी, स्वेच्छाचारी और प्रजा पीडक हो गए थे। मथुरा का कस, मगध का जरासध, चेदि का शिशुपाल और हस्तिनापुर के कौरव सभी दुष्ट, विलासी और दुराचारी थे। श्री कृष्ण ने अपने अद्भुत

श्री भवानी लाल भारतीय कृत 'श्री कृष्ण चरित्र' ग्रन्थ पर आधारित

चातुर्य्य से इन सब राजाओं का मूलोच्छेद कराया और धर्मराज अजात शत्रु युधिष्ठिर का अखंड एकच्छत्र चक्रवर्ती सार्व भौम राज्य स्थापित किया।

जिस प्रकार वे नवीन साम्राज्य-निर्माता और युग-प्रवर्त्तक थे उसी प्रकार अध्यात्म और तत्त्व चितन के क्षेत्र में भी उनकी प्रवृत्तिया चरम-सीमा तक पहुँच चुकी थी। जल में रहने वाले कमल पत्र के समान, ससार से निर्लेप स्थित प्रज्ञ व्यक्ति का जैसा वर्णन उन्होंने अपने गीता-दर्शन में किया है उनके मूर्त्त उदाहरण वे स्वय थे। उनके जीवन की यह विशेषता है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म आदि प्रत्यक्ष में विरोधी दीखने वाली वृत्तियों का भी उनमें अद्भुत सामञ्जस्य था।

कृष्ण ने देश की सामाजिक और ऐहिक परिस्थिति को भी अपने सामने से ओझल न होने दिया। उन्होने पतनोन्मुख समाज को उद् बोधन किया। स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रो के मिटते अधिकारों का बल पूर्वक प्रतिपादन और समर्थन किया। वर्ण व्यवस्था में उत्पन्न होने वाली शिथिलता, विकृति और अव्यवस्था को यथा शक्य दूर करने का प्रयत्न किया। महाभारत काल मे वर्ण साकर्य का बोल बाला था। द्रोणाचार्य जैसे ब्राह्मण शस्त्राभ्यास करते और कराते हुए जीविका निर्वाह कर रहे थे। क्षत्रिय राजकुमारों को अपने अभिजात कुलोत्पन्न होने का बड़ा भारी गर्व था। भीमने कर्ण का अपमान इसी आधार पर किया कि वह सूत पुत्र था। क्षत्रिय कुमारों के इस मिथ्या गर्व को सतुष्ट करने के लिए ही एक लव्य जैसे शास्त्र विद्या प्रेमी परन्तु शूद्रकुलोत्पन्न छात्र की जिज्ञासा वृत्ति को कुठित किया जा रहा था। भीष्म जैसे धर्म्म-परायण पुरुष भी अपने आपको दुर्योधन के अन्न से पालित समझकर अधर्म का पक्ष ग्रहण करने में नहीं हिचकते थे।

समाज के इस नैतिक पतन को देखकर मानव बन्धुत्व के प्रबल समर्थक श्री कृष्णका हृदय यदि पीडित और शोषित वर्ग की दयनीय दशा को देखकर पिघल गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? कृष्ण उच्चकुल के गौरव और राजवश की प्रतिष्ठा को भुलाकर सामान्य जनता के पक्ष-पोषक बने। वे गोपालो के सखा थे। उन्होने ही सम्राट दुर्योधन का आतिथ्य अस्वीकार किया और दासी पुत्र विदुर के घर को पवित्र किया। सचमुच ही कृष्ण सामाजिक क्रांति के अनोखे सूत्रधार थे।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कृष्ण के इस दिव्य चरित्र का अधिक से अधिक मनन और अनुशीलन किया जाय। न केवल मनन ही अपितु उनके जीवन और उनकी शिक्षा को प्रकाश-स्तम्भ-मानकर हम अपने लक्ष्य की ओर बढे। कृष्ण की शिक्षा में ही न केवल देश का अपितु समस्त विश्वका कल्याण निहित है।

❀ ओ३म् ❀

कार्यालय—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान)
नई दिल्ली—१
दिनाङ्क २७-७-१९६०

सत्याग्रह बलिदान—स्मारक दिवस

रविवार ७ अगस्त १९६० को मनाइये

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली के दिनाक १३–१०–४० के स्थायी निश्चयानुसार हैदराबाद सत्याग्रह में अपने प्राणों की आहुति देने वाले आर्य वीरों की पुण्य स्मृति में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार रविवार ७ अगस्त १९६० को आर्यसमाज मन्दिरों में सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस मनाया जायगा। इसीदिन श्रावणी का पुण्य पर्व है। इसका कार्यक्रम आर्य पर्व पद्धति के अनुसार श्रावणी उपाकर्म के साथ मिलाकर निम्न प्रकार किया जाय —

प्रात: ८॥ बजे आर्य समाज मन्दिरों में सभाएं की जायें जिनमें उपाकर्म की कार्यवाही के पश्चात् सब उपस्थित भद्र पुरुष तथा देवियां मिलकर निम्न पाठ करें।

१—ओ३म् ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विष ।
तेषां व सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नर स्याम ये च सूरय ॥ ऋग्वेद ७। ६६। १३॥

२—ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रत चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ यजुर्वेद १। ५॥

३—ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुर कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्ण: ॥ ऋ० ९। ६३। ५॥

४—ओ३म् उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूता ।
दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्यं बलिहृत स्याम्॥ अथर्ववेद १२। १। ६२॥

आर्य समाजों के पुरोहित अथवा अन्य कोई वेदज्ञ विद्वान् उपर्युक्त मन्त्रों का तात्पर्य इन शब्दों में पढ़ कर प्रार्थना करायें —

१—जो विद्वान् सदा सत्य के मार्ग पर चलते हुए सत्य की निरन्तर वृद्धि और असत्य के विरोध में तत्पर रहते हैं, उनके सुखदायक उत्तम आश्रय में हम सब सदा रहें तथा हम भी उनकी तरह मन, वचन और कर्म से पूर्ण सत्यनिष्ठ बनें।

२—हे ज्ञानस्वरूप सब उत्तम सकल्पों और कर्मों के स्वामी परमेश्वर! हम भी आज से एक उत्तम व्रत ग्रहण करते हैं जिसके पूर्ण करने की शक्ति आप हमें प्रदान करें ताकि उस व्रत के ग्रहण से हमारी सब तरह से उन्नति हो। वह व्रत यह है कि असत्य का सर्वथा परित्याग करके हम सत्य की ही शरण में आते हैं। आप हमें शक्ति दें कि हम अपने जीवनों को पूर्ण सत्यमय बना सकें।

३—हे मनुष्यो! तुम सब आत्मिक शक्ति तथा उत्तम ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए श्रमशील बन कर उन्नति में बाधक आलस्य प्रमादादि दुर्गुणों का परित्याग करते हुए सारे संसार को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ सदाचारी, धर्मात्मा बनाओ।

४—हे प्रिय मातृ भूमे! हम सब तेरे पुत्र और पुत्रियां तेरी सेवा में उपस्थित होते हैं। सर्वथा नीरोग, स्वस्थ तथा ज्ञान सम्पन्न होते हुए हम दीर्घायु को प्राप्त हों और तेरी तथा धर्म की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की बलि देने को भी तैयार रहें।

धर्मवीरों के प्रति श्रद्धाञ्जलि

श्रद्धांजलि अर्पण करते हम, करके उन वीरों का मान।
धार्मिक स्वतंत्रता पाने को, किया जिन्होंने निज बलिदान॥
परिवारों के सुख को त्यागा, युवक अनेकों वीरों ने।
कष्ट अनेकों सहन किये पर, धर्म न छोड़ा वीरों ने॥
ऐसे सभी धर्म वीरों के, आगे सीस झुकाते हैं।
उनके उत्तम गुण गण को हम निज जीवन में लाते हैं॥
अमर रहेगा नाम जगत् में, इन वीरों का निश्चय से।
उनका स्मरण बनायेगा फिर, वीर जाति को निश्चय से॥
करे कृपा प्रभु आर्य जाति में, कोटि कोटि हों वीर।
धर्म देश हित जोकि खुशी से, प्राणों की आहुति दें वीर।
जगदीश को साक्षी जान कर, यही प्रतिज्ञा करते हैं।
इन वीरों के चरण चिन्ह पर, चलने का व्रत करते हैं॥
सर्वशक्ति दें बल ऐसा, धीर वीर सब आर्य बनें।
पर उपकार परायण निशिदिन, शुभ गुणधारी आर्य बनें॥

(ध० दे०)

❀ धर्मवीर नामावली ❀

श्यामलाल जी महादेव जी राम जी श्री परमानन्द।
माधव राव विष्णु भगवन्ता, श्री स्वामी कल्याणानन्द॥
स्वामी सत्यानन्द महाशय मलखाना श्री वेदप्रकाश।
धर्म प्रकाश रामनाथ जी पाण्डुरंग श्री शान्तिप्रकाश॥
पुरुषोत्तम जी ज्ञानी लक्ष्मण राव सुनहरा वेंकट राव।
भक्त अरुड़ा मातुराम जी नन्हूसिंह श्री गोविन्दराव॥
बदनसिंह जी रतीराम जी मान्य सदाशिव ताराचन्द।
श्रीयुत छोटेलाल अशर्फीलाल तथा श्री फकीरचन्द॥
माणिकराव श्री भीमराव जी महादेव श्री अर्जुनसिंह।
सत्यनारायण वैजनाथ ब्रह्मचारी दयानन्द नरसिंह॥
राधाकृष्ण सरीखे निर्भय अमर हुए इन वीरों का।
स्मरण करें विजयोत्सव के दिन, सब ही वीरों धीरों का॥

रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

आडिट नोट्स तथा उनके समाधान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक हिसाब की आडिट रिपोर्ट के सम्बन्ध में सर्व प्रथम यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सभा की २६-६-६० की वार्षिक साधारण सभा मे जिसमें इसबार १०५ सदस्य उपस्थित थे और यह उपस्थिति अब तक के समस्त अधिवेशनो में सबसे अधिक थी, एक सदस्य ने आडिट रिपोर्ट सुनाने की माग की थी। ज्योही सभा मन्त्री ने आडिट रिपोर्ट पढनी आरम्भ की, शेष सदस्यो ने यह प्रस्ताव किया कि सारी रिपोर्ट पढने से अनावश्यक विलम्ब होगा, वह न सुनाई जाय। कार्यालय मे रखी है जो देखना चाहे देख ले। इस प्रस्ताव के सर्व सम्मति से स्वीकृत हो जाने पर रिपोर्ट का सुनाया जाना स्थगित हो गया था। मैं यह भी सूचित करना आवश्यक समझता हूँ कि अब तक की परम्परा के अनुसार यह रिपोर्ट पहले भी साधारण सभा मे कभी नही सुनाई गई थी। अवश्य विशेष माग होने पर कभी २ सुनाई जाती रही है। जब कि कार्यालय सदस्यो को इस रिपोर्ट को सुनाने, दिखाने और उनका समाधान करने के लिए उद्यत था और है तब बिना कार्यालय के नोटिस में लाए रिपोर्ट का प्रकाशन कितना अनुचित और जनता को भ्रम में डालने वाला है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। इसके इस प्रकार प्रकाशन के मूल में द्वेष और अधिकारियो को बदनाम करने की भावना के अतिरिक्त और क्या भावना हो सकती है?

आडीटर महोदय ने अपनी रिपोर्ट वृहदधिवेशन से १ दिन पूर्व ही दी और कार्यालय के लिखित समाधान प्राप्त किए बिना ही अधिकारियो को देदी। प्रथा यह है कि आडिटर की आपत्तिओ पर कार्यालय अपना उत्तर देता है और जिस २ आपत्ति का समाधान हो जाता उसको वह अपने नोट में से या तो निकाल देता है या उसके सामने अपनी सहमति लिख देता है। इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में यह कार्यवाही नही की गई।

इस आडिट रिपोर्ट के सम्बन्ध में कार्यालय का समाधान निम्न प्रकार है—

आडिट नोट	समाधान
१–भूमि और भवन	**१–भूमि और मकान**
सभा की निम्नलिखित जायदादो का कोई प्रमाण पत्र मुझे प्राप्त नहीं हुआ १—श्रद्धानन्द नगरी पाठशाला भवन २७४७) २—श्रद्धानन्द नगरी आर्य समाज मन्दिर ३६१६)	गत २०-२५ वर्ष पूर्व से श्रद्धानन्द नगरी की जायदाद जिस स्थिति में सभा के कागजों में अकित चली आती है उसी स्थिति में अब भी है। इसका प्रमाण पत्र इस कार्यालय में स्व० श्री ला० नारायणदत्त जी से प्राप्त

३—चन्दोदेवी भवन (कागजात अदालत में बताये जाते हैं) ८४३३)

नहीं हुआ था और ये भवन उन्हीं के द्वारा बनवाए गए थे। अब न्यायालय द्वारा सभा का अधिकार प्रमाणित कराने का यत्न किया जा रहा है।

चन्दोदेवी भवन सभा को दान में सन् १९५५ में प्राप्त हुआ है। दान देने से पूर्व ही उस मकान पर चन्दोदेवी के रिश्तेदार का अधिकार था। सभा ने किरायेदारों को निकलवाने के लिए कानूनी कार्यवाही की हुई है और असल दस्तावेज (दान पत्र) न्यायालय में पेश किया हुआ है।

२ – इन्वैस्टमेन्ट्स

सभा के पास सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड देहली के १३२० हिस्से १०) प्रति हिस्से जिन पर ७५ प्रतिशत रुपये अदा हो चुके है। ३ हिस्से १०)प्रति हिस्सा आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर के हैं जिनका सम्पूर्ण भुगतान हो चुका है। हिस्से मुझे निरीक्षण के लिये पेश किए गये और सभा के पास हैं।

सार्वदेशिक प्रकाशन केसबसे अधिक हिस्से सभा के हैं मगर सभा का कोई आफिशल प्रतिनिधि उनके बोर्ड आफ डाइरेक्टर पर नहीं है। सभा के हित को सुरक्षित रखने के लिए अति आवश्यक है कि सभा का कम से कम १ प्रतिनिधि बोर्ड आफ डायरेक्टर पर होना चाहिए।

२-इन्वैस्टमेन्ट्स

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड में सभा का मन्त्री सभा के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिनिधित्व करता है। बोर्ड आव डाइरेक्टर्स पर सभा का आफिशियल प्रतिनिधि लिया जा सकता है या नहीं इस विषय में प्रकाशन लिमिटेड के विधान पर निर्भर करना होगा। यदि विधान में व्यवस्था न हुई तो इसमें व्यवस्था कराने का प्रयत्न किया जायगा। गत १०-१२ वर्ष से अभी तक सभा का कोई प्रतिनिधि डाइरेक्टर नहीं। आडीटर महोदय का यह सुझाव ठीक है।

३—ऋण

१—सुरक्षित　　१०००००)

सभा के पास ३ मकान और एक प्लाट

३-ऋण

सुरक्षित से अभिप्राय है वह ऋण है जो मार्गेज लोन के रूप में अन्तरग सभा के

जमीन रहन बाकब्जा है उनमें से वाइटल केमिकल लिमिटेड से ३६०००) लेने थे जिसमें से चालू वर्ष मे ६०००) प्राप्त हो चुके हैं और २ मकान श्री राजेन्द्रनाथ जी जौहर और बन्शीलाल जी शिव्वल के रहन के मकानो के २५०००) वापिस प्राप्त हो गए है।

सभा ने सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड से २४१८)८१ लेने थे। सभा के पास ५०००) का प्रोनोट है जो कि मुझे प्रमाण पत्र के रूप मे दिखाया गया है।

४ — प्राप्तव्य भवन किराया

निम्नलिखित सज्जनो से सभा ने मकानो का किराया लेना है —

१ लाο हरिश्चन्द्र जी ७२७८)
अभियोग चल रहा हैं।

२ लाο श्री राम जी २२७२५)
अभियोग चल रहा है

३ लाο श्रीराम जी २२७२५)
अभियोग चल रहा है।

शेष किरायेदारो से जो किराया ५९-६० का प्राप्तव्य था वह ६०-६१ में प्राप्त हो चुका है।

श्री बी० धर्मसिह एण्ड कम्पनी और अन्य बलिदान भवन के किरायेदारो से अभी रैन्ट डीड लिखवाकर रजिस्टरी नही कराई गई है। इस पर शीघ्र कार्यवाही की जाय।

निश्चयानुसार स्व० लाला नारायणदत्त जी सभा कोषाध्यक्ष द्वारा विविध पार्टियों को सभा की आय को बढाने के उद्देश्य से अब से १०-१२ वर्ष पूर्व दिया गया था। पहले यह राशि लगभग ३ लाख थी जिसमें से अब तक लगभग २ लाख प्राप्त कर लिया गया है।

४-प्राप्तव्य भवन किराया

लाο हरिश्चन्द्र जी को १० हजार रुपया तथा लाο श्रीराम को ६० हजार रुपया उपर्युक्त ऋण के रूप में मकानो व जायदाद की एवज में दिया गया था। जब किराया मकान आना बन्द हुआ तो सभा ने बिना अदालत की शरण लिए ब्याज व असल रकमों की प्राप्ति का यत्न किया। जब ये यत्न सफल न हुए और अदालत के द्वार खटखटाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न रहा तो अदालती कार्यवाही की गई। अदालतों में गत ६ वर्ष से अभियोग चल रहे हैं। पहला तथा इस बीच का मकान किराया मिलाकर उतनी राशियां प्राप्तव्य हो गई हैं जिनका शेष-पत्र में उल्लेख है।

बलिदान भवन की दूसरी मजिल का कोलोनेड तथा कार्यालय वाला कमरा सन् १९५८ में गाजियाबाद के किसी मिल मालिक को श्री लाο रामगोपाल जी मन्त्री तथा श्री लाο बालमुकन्द जी आहूजा कोषाध्यक्ष सभा ने किराये पर दे दिया था। उनसे कोई किरायानामा नहीं लिखाया था। केवल कार्या-

५—अभियोग व्यय

सभा १३२८५)७२ अभियोग व्यय में खर्च कर चुकी है परन्तु विभिन्न अभियोगों का अभी तक कोई निर्णय नही हुआ है इसलिए अगाऊ अभियोग व्यय के अन्तर्गत दिखाया गया है।

लय को मौखिक सूचना दी थी और १ साल के किराये का चैक भेज दिया था। जब इस किरायेदार ने अपना कारोबार न चलने के कारण मकान खाली किया तो ला० बालमुकन्दजी आहूजा ने किसी अन्य किरायेदार को जो स्वय आहूजा था बिना किसी किरायानामा के वह सारे का सारा भाग पुन किरायेपर दे दिया। उससे क्या २ शर्तें तय हुई इसकी कोई सूचना तक कार्यालय में प्राप्त नही हुई। जब सभा के वर्तमान अधिकारियो को यह बात विदित हुई तो उन्होने श्री आहूजा जी को प्रेरणा की कि वे किरायानामा भिजवा दें जिससे पता चले कि किन शर्तों पर नये किरायेदार को मकान दिया गया है। परन्तु खेद है कि आहूजा जी ने सभा के पत्र का उत्तर तक नही दिया। वर्तमान अधिकारियो ने ५-३-६० से किरायानामा लिखा लिया है।

श्री बी० धर्मसिह एण्ड को० प्राइवेट लि० से भी किरायानामा सभा के पूर्व अधिकारियों श्री ला० बालमुकन्द जी आहूजा तथा श्री ला० रामगोपाल जी ने समय पर नही लिखवाया। सभा के वर्तमान अधिकारियो के प्रयत्न से वे लोग अब किरायानामा लिखने के लिए उद्यत हो गए हैं।

५-अभियोग व्यय

बगाल रिलीफ फड का १० हजार रुपया आर्य प्रतिनिधि सभा बगाल के पास सन् १९३५ से है, जो कलकत्ता की किसी कम्पनी में शेयर्स के रूप में है। इसका डिवीडेड बगाल सभा को प्राप्त होता है और वही उसे व्यय

बगाल रिलीफ फड के १००००) सभा ने बगाल आर्य प्रतिनिधि सभा को दिए हुए हैं। बताया जाता है कि यह राशिया किसी फर्म के शेयर्स के रूप में हैं। इन शेयर्स से जो मुनाफा आता है वह सभा कोष में जमा नही हो रहा।

प्राप्तव्य खातो की शेष राशियो की सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा सम्पुष्टि नही हो रही।

प्राप्तव्य राशियों में कई ऐसी राशिया भी हैं जिनकी वसूली की अब कोई आशा नहीं रही ऐसी राशियो को अन्तरग सभा की मजूरी से बट्टे खाते में डाल देना चाहिये।

६—हिन्दी निधि

इस वर्ष हिन्दी रक्षा आन्दोलन पर २२५०६)६१ व्यय हुये हैं। २८०)०१ दान के रूप में प्राप्त हुये और ६०००) ब्याज ३ प्रतिशत की दर से जमा किया गया है शेष १६२२६)६० हिन्दी निधि से व्यय किये गये हैं।

५७-५८-५९ का कोई ब्याज इस निधि में जमा नही किया गया है। इसको भी इस निधि में जमा कराना चाहिये।

दिनाक २४-७-५८ की भाषा स्वातन्त्र्य समिति के निश्चयानुसार निम्नलिखित स्त्रियो को मासिक सहायता दी जा रही है —

१ श्रीमती शान्ति देवी १०)

अब यह बन्द कर दी गई है।

२ श्रीमती नेहली बाई २५)

३ श्रीमती कौशल्या रानी ५०)

सभा मन्त्री जी की आज्ञा दिनाक ६-५-५८ के अनुसार २०) मासिक श्री जगमोहनसिंह जी करती है। हमारे यहा यह राशि नही आती। जब कभी रिलीफ का काम आ पडता है तो बगाल की सभा से प्रारम्भिक कार्य इसी राशि से कराया जाता है।

प्राप्तव्य खातो की शेष राशियो की सम्बद्ध व्यक्तियो द्वारा सम्पुष्टि करा ली जायगी। प्राप्त कर्त्ताओ की रसीदें वाउचरो के साथ नत्थी हुई हैं ही। इनमें से अनेक राशिया गत कई वर्षों से चली आ रही हैं।

प्राप्तव्य राशियो में कौन २ राशियाँ बट्टे खाते में डाले जाने योग्य हैं इसकी सूची अन्तरग सभा में प्रस्तुत करके निश्चय कराया जायगा।

६-हिन्दी निधि

५७-५८-५९ में हिन्दी निधि का ब्याज क्यों नही जमा कराया गया इसका उत्तर तो श्रीयुत ला० रामगोपाल जी तथा श्री ला० बालमुकन्द जी आहूजा आदि तत्कालीन सभा के अधिकारी ही दे सकते हैं। यह श्रेय तो वर्तमान अधिकारियो को ही प्राप्त है कि उन्होने इस वर्ष ६०००) इस निधि के शेष धन पर ब्याज लगवा कर जमा कराया।

श्री ला० रामगोपाल जी सभा मन्त्री ने अपने समय में श्री रामगोबिन्दसिंह आर्य को जो आर्य वीर दल का काम करते हैं ५०) मासिक वेतन पर १ वर्ष के लिए रक्खा था और उनका वेतन उन्ही के आदेश से हिन्दी निधि पर पडता था। जब यह बात मेरे नोटिस में आई तो मैंने १-६-५९ से उनका वेतन आर्य वीर दल से दिलाया। १-१२-५९ को उनका सेवा काल समाप्त हो जाने पर उनकी सेवाए समाप्त कर दी गई।

को भी भेजे जा रहे हैं और ८५) का पुरस्कार श्री एस० के० मूर्ति को भी दिया गया।

श्री रामगोबिन्दसिंह आर्य का ५०) वेतन और श्री पोहकरमल तथा ओम्प्रकाश जी गुप्त का वेतन भी इस निधि में डाला जा रहा है।

उपर्युक्त राशियो के अतिरिक्त और जो बडी २ राशिया से उस निधि से व्यय हुई हैं वे इस प्रकार है —

१ मोहरी घटना के अभियोग व्यय ५०५०)
२ फीरोजपुर काड का अभियोग व्यय ७७००)
३ प्रभात आश्रम व्यय १०००)

७—कार्यालय

अन्तरंग सभा दिनाक २९-३-५९ की धारा १० (क) के अनुसार सभा कर्मचारियों के नये ग्रेड १-१२-५८ से स्वीकार किये गये थे। उपधारा (ख-३) में निश्चय किया गया था कि श्री प्रेमचन्द्र जी तथा निरजनलाल जी को नवीन ग्रेड में २-२ (दो-दो) वार्षिक वृद्धिया तथा अन्य कर्मचारियों को वर्तमान ग्रेड के प्रति

श्री ओम्प्रकाश गुप्त लेखक हिन्दी आन्दोलन के काल मे ही भूतपूर्व अधिकारियों द्वारा रक्खा गया था और वह हिन्दी आन्दोलन सम्बन्धी कार्य करता रहा। वह ५-७-५९ को सभा की सर्विस से मुक्त होकर चला गया।

श्री मा० पोहकरमल जी हिन्दी आन्दोलन सम्बन्धी अभियोगों की पैरवी कराते आ रहे हैं। इसलिए उनके वेतन का आधा भाग हिन्दी निधि पर पडना उचित ही है। अब यह व्यय भी हिन्दी निधि पर नहीं पड रहा है।

प्रभात आश्रम व्यय १०००) यह राशि १९५७ में हिन्दी आन्दोलन के दिनों में प्रभात आश्रम सिरसा को उस समय के अधिकारियों श्री ला० रामगोपाल जी आदि ने उधार रूप में दी थी और उन्हीं के काल में अन्तरग सभा २३-५-५९ के निश्चयानुसार खर्च में पडी।

उपर्युक्त राशियो के अतिरिक्त जो बडी २ राशिया इस निधि में व्यय हुई है वे इस प्रकार है —

१—मोहरी रेल दुर्घटना अभियोग व्यय ५०५०)

२—फीरोजपुर का अभियोग व्यय ७७००)

७-कार्यालय

आडीटर महोदय की यह आपत्ति ला० रामगोपाल जी मन्त्री के समयकालीन हिसाब की है। आडीटर महोदय ने अब इस और हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है तो इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही की जायगी।

३ वर्ष की संख्या पर १-१ (एक-एक) वार्षिक वृद्धि नये ग्रेड में १-१२-५८ से दी जावे। इस निश्चय के अनुसार श्री प्रेमचन्द्रजी श्री निरजन लाल जी, श्री हीरालाल जी सेवक तथा श्री भवानीसिंह जी सेवक का मासिक वेतन १-१२-५८ से निम्न प्रकार नियत किया जाना था —

नाम	गत ग्रेड	वेतन ३०-११-५८	तिथि गत वृद्धि	गत ग्रेड में आने की तिथि
प्रेमचन्द्र	१२५-५-१५०	१२५)	१ ३-५८	१-३-५८
निरजनलाल	८४-४-१२०	१०४)	१६-१२-५७	१६-१२-५४
हीरालाल	३०-२-५०	३४)	१-५-५८	१-५-५७
भवानीसिंह	३० २-५०	३४)	——	१ ५-५८

नया ग्रेड	वृद्धि जो १ १२-५६ से होनी चाहिए	वृद्धि जो १-१२-५८ से दी गई	अधिक वृद्धि
१२५-८ १६५-१०-१९५	२ वृद्धि १६) की	२४)	८)
८०-५ १२०-८-१७६	२ वृद्धि १०) की	१६)	६)
३०-२-५०	—	६)	६)
३०-२-५०	—	६)	६)

इन कर्मचारियों का वेतन उपधारा (ख-४) में १-१२-५८ से १४१) ११४) ३४) तथा ३४) की बजाय १४९) १२०) ४०) तथा ४०) नियत किये गये हैं।

२—दयानन्द भवन तथा बलिदान भवन में जो किरायेदार रहते हैं उनका बिजली तथा जल व्यय सभा फंड से दिया गया है। मीटर लगवाने से पूर्व किरायेदारों का जो भाग सभा कोष से दिया गया है वह शीघ्र उनसे वसूल

२-दयानन्द भवन में बिजली के सब मीटर किरायेदारों के पृथक् २ करा दिए गए हैं। पिछले बिलों के धन में उनका भाग प्राप्त करने का पूरा यत्न किया जा रहा है।

बलिदान भवन के किरायेदार से जो

किया जावे। यह वसूली हर मास होनी चाहिए थी।

सभा कोषाध्यक्ष श्री ला० बालमुकन्द जी आहूजा ने रखा था और जिससे कोई किरायानामा नही लिखाया था और न कोई किरायेनामे की शर्तें ही कार्यालय को ज्ञात थी इस वर्ष बड़ी कठिनाई से किरायानामा लिखाया गया है। आगे से तो प्रतिमास बिजली पानी का व्यय वसूल होता रहेगा परन्तु पिछली राशियों की वसूली के सम्बन्ध में सन्देह है क्योकि कार्यालय के हाथ मजबूत नहीं। फिर भी वसूली का यत्न किया ही जायगा।

३—वेतन बिल बनाने की कोई एक व्यवस्था नही है। कई कर्मचारियो के लिए रजिस्टर रखा हुआ है और बहुतो के लिये अलग २ वाउचर बनाये जाते हैं जिससे दो दफा वेतन देने की सम्भावना हो सकती है। इसके लिये केवल दो बिल बनने चाहिये एक स्थिर कर्मचारियों का और दूसरा अस्थिर कर्मचारियों का और उन वाउचरों द्वारा ही सब को वेतन देना चाहिए।

३-वेतन बिल बनाने की व्यवस्था है। कार्यालय के दिल्ली स्थित कार्यकर्त्ताओ का एक ही वेतन बिल बनता है और रजिस्टर में ही दर्ज होकर प्राप्त कर्त्ताओ के हस्ताक्षर कराए जाते हैं। जो कर्मचारी बाहर काम करते है उनकी डायरियां आने पर वेतन बिल बनाकर धन भेज दिया जाता है। बाहर के इन कर्मचारियों का भी वेतन रजिस्टर पृथक् बना दिया जायगा।

४—फर्नीचर तथा कार्यालय की अन्य अनाशनीय वस्तुओं की वार्षिक गिनती नही की जाती। सभा को एक उपसमिति द्वारा प्रति वर्ष गिनती करानी चाहिये।

४-फर्नीचर तथा कार्यालय की अन्य वस्तुओ की गिनती होती रहती है। वार्षिक गिनती का सुझाव ठीक है। इस पर कार्यवाही की जायगी।

५—कई ऐसे उदाहरण नोट किये गये हैं कि सार्वदेशिक पत्र का वार्षिक चन्दा सभा कार्यालय में मनीआर्डर द्वारा प्राप्त हो चुका है मगर फिर भी डेढ़ मास के बाद चन्दा की वसूली के लिये पत्र वी० पी० पी० करा दिया गया है।

५-आर्डीटर महोदय को ऐसे ४ उदाहरण मिले हैं जिनमें सार्वदेशिक पत्र का वार्षिक चन्दा सभा कार्यालय में मनिआर्डर से प्राप्त हो गया था परन्तु फिर भी चन्दे की वसूली के लिए वीपियां भेजी गई। ये चारों ही वीपिया वापिस आ गई। इस विषय में विशेष सावधानता बरतने के लिये सम्बद्ध लेखक को हिदायत कर दी गई है।

६—वर्ष १९५९-६० मे सभा के कुछ कर्मचारियो को उनका एक मास के अवकाश का अधिकार समाप्त करके उसके बदले में १ मास का वेतन दे दिया गया है। इस वेतन में महगाई अलाउन्स भी शामिल कर दिया गया है।

६-सन् १९५९-६० में सभा के कुछ कर्मचारियो को १ मास के अवकाश का अतिरिक्त वेतन देकर उनके साधिकार अवकाश का अधिकार समाप्त किया गया। यह नियम सन् १९५५ से ही चला आ रहा है। वेतन महगाई सहित ही दिया जाता रहा है। आगे इस प्रथा को बहुत प्रोत्साहन नहीं दिया जायगा। इस नियम का स्पष्टीकरण अन्तरग सभा द्वारा कराया जायगा।

८—पुस्तक भंडार बिक्री

७—निम्नलिखित वी० पी० पी० का न तो धन वसूल हुआ है और न यह पता है कि यह वापिस आई हैं —

वी० पी० पी०	वी० पी० पी०
१०५	३६७ आईटम ३२५
१७४	३६५ आईटम ३२७
१२११ आईटम २८०	६६ आईटम १७४
१२४४ आईटम २९०	
५२० आईटम ३२०	

१—यह नोट किया गया है कि जिस सख्या में पुस्तकें छपवाई और उनका मूल्य प्रेस को दिया जाता है उतनी पुस्तके स्टाक पर नही ली जाती रहीं। कई ऐसी पुस्तकें भी हैं जो सात आठ प्रतिशत कम स्टाक पर लाई गई है। इसका एक कारण यह भी है कि प्रेस का बिल पुस्तक विभाग से प्रमाणित नहीं कराया जाता है।

८-पुस्तक भण्डार बिक्री

पुस्तक भण्डार बिक्री की ७ वीपियो का धन प्राप्त नहीं हुआ। इस सम्बन्ध मे पोस्ट आफिस से पत्र-व्यवहार हो रहा है। अभी तक उनका धन प्राप्त नहीं हुआ है।

१-जिस सख्या में पुस्तकें छपाई और उनका बिल प्रेस को अदा किया गया उतनी पुस्तकें स्टाक पर नही ली जाती रहीं। आडिटर महोदय का यह आक्षेप उन पुस्तकों से सम्बन्ध रखता है जो पूर्व अधिकारियो श्री ला० रामगोपाल जी तथा श्री ला० बालमुकन्द जी आहूजा आदि के समय में छपी। वे पुस्तकें ये हैं:—

१—भारत का एक ऋषि ट्रैक्ट १० हजार छपी थी—६००कम आया है।

२—कर्तव्य दर्पण — जो ३००० छपा था वह १३० कम आया है।

३—डेली प्रेयर जो २००० छपाई थी—२८ प्रतियां कम आई हैं।

ये पुस्तकें सार्वदेशिक प्रेस में छपी थीं। कम कापियोंकी पूर्ति कराने का यत्न किया जायगा।

कार्यालय ने आडीटर महोदय से निवेदन किया था कि वे पिछले दो तीनवर्षो के पुस्तकालय के स्टाक के रजिस्टरो को बिल बुक और कैशमीमों इत्यादि से मिलाकर चैक कर देवें जिससे अन्तिम स्थिति सामने आ जाय। परन्तु उन्होंने ऐसा नही किया और कहीं २ कोई आइटम चैक कर ली। अब पिछले रजिस्टरों से चैक कराकर अन्तिम स्थिति निकाली जायगी।

२—पुस्तक विक्रय स्टाक की वार्षिक गणना नहीं की जाती। वार्षिक गणना न होने के कारण इस निधि में जो लाभ दिखलाया जाता रहा है वह असली लाभ नही होसकता। सभा को एक उपसमिति नियुक्त करके जल्दी पुस्तक स्टाक की गणना करानी चाहिए और जो पुस्तके कम हैं उनका निर्णय भी होना चाहिए।

२—पुस्तक विक्रय स्टाक की वार्षिक गणना कराई जानी चाहिए यह ठीक है। इस वर्ष गणना कार्य कराया जा रहा है।

९—ईसाई प्रचार निरोध

१—ईसाई प्रचार निरोध के लिए प्रचारक आदि की जो नियुक्तिया की गई हैं उनकी स्वीकृति अन्तरग सभा से होनी चाहिये क्योकि यह एक रिकरिंग व्यय है।

२—मेला गढ़मुक्तेश्वर पर हर वर्ष प्रचारार्थ व्यय होता है मगर इस वर्ष का व्यय ईसाई प्रचार निरोध पर डाला गया है।

९-ईसाई प्रचार निरोध प्रचार

१-ईसाई प्रचार निरोध के लिए प्रचारक आदि की नियुक्तिया स्थायी नहीं हैं। ये नियुक्तिया सभा प्रधान की अनुमति से कर दी जाती है। इनकी अन्तरग सभा से स्वीकृति लेने का कोई प्रश्न नहीं है।

२-इस वर्ष गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर ईसाई प्रचार निरोध का ही प्रचार कराया गया था इसलिए इस पर होने वाला व्यय उसी मद में डाला गया और इस अवसर पर

३—सार्वदेशिक सभा राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा को बासवाडा केन्द्र के लिये ३००) मासिक दे रही है। यह सहायता इस शर्त पर दी जाती थी कि राजस्थान सभा भी अपनी ओर से उतनी ही राशि व्यय करे मगर केन्द्र के जो खर्च का ब्यौरा श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने बनाकर भेजा है उससे तो यही प्रतीत होता है कि केन्द्र पर औसतन खर्चा २१०) से अधिक नही हुआ। इसके अतिरिक्त ८७५) राजस्थान सभा कार्यालय पत्र व्यवहार (इतना व्यय तो सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे भी नही हो रहा है) और ६२०) के लगभग मार्ग व्यय आदि का खर्चा केन्द्र पर डाला गया है इसके अतिरिक्त श्री भगवतीप्रसाद जी कई मार्ग व्यय की राशिया अपने राजस्थान के दौरे तथा दिल्ली आने जाने की ईसाई प्रचार निरोध समिति से सार्वदेशिक सभा के कोष से भी ले चुके हैं। राजस्थान सभा से मार्ग व्यय तथा पत्र व्यवहार के वाउचर मगवाकर जाच पडताल होनी चाहिए कि इनका कहा तक केन्द्र के व्यय से सम्बन्ध हैं।

अन्त मे मै सभा के कर्मचारियो को धन्यवाद देता हूँ कि इन सब का मेरे साथ पूर्ण सहयोग रहा है और विशेषकर कार्यालयाध्यक्ष जी और सभा एकाउन्टेन्ट जिसके लिये मै उनका आभारी हूँ।

ह० नोतनदास चावला
भूतपूर्व ए० ए० ओ०

दान से जो आय हुई वह भी इस मद में जमा हुई है।

३-बासवाडा केन्द्र के सम्बन्ध में आडीटर महोदय का जो आक्षेप है उसके सम्बन्ध में राजस्थान सभा से सम्बद्ध हिसाब मागा गया है। गत फरवरी मास से ३००) के स्थान में केवल १५०) मासिक उस केन्द्र को सीधे भेजा जा रहा है।

ह० रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

सभा मन्त्री के नाम एक पृथक् पत्र के साथ दिए हुए आडीटर महोदय के आक्षेपों का उत्तर

१–विविध अगाऊ प्राप्तव्य

श्री आचार्य विश्वश्रवा जी के अगाऊ खाते में वर्ष के अन्त पर ४६३)७० शेष निकलते हैं। इस अगाऊ राशि में २३३) की राशि वह है जो आपने सभा की रसीदो द्वारा सार्वदेशिक पत्र आदि का वार्षिक चन्दा वसूल करके सभा कोष में जमाकराने की बजाय अपने पास रख लिये थे। उक्त प्राप्तव्य धन अगले साल में उनकी छपी हुई पुस्तके लेकर वसूल किया गया है। मालूम हुआ है कि यह पुस्तकें उनसे २० प्रतिशत कमीशन पर मोल ली गई है। वही पुस्तकें गुडगावा के अन्य ग्राहको को आचार्य जी ३३ प्रतिशत कमीशन पर पहले दे चुके हैं।

१-विविध अगाऊ प्राप्तव्य

आचार्य विश्वश्रवा जी का पचमहायज्ञ-विधि भाष्य उत्तम और खोज पूर्ण है। सभा ने इसकी प्रतिया २० प्रतिशत कमीशन पर क्रय की हैं। इसकी माग रहती है। सार्वदेशिक पत्र में अन्य पुस्तको के साथ इमका भी विज्ञापन छपा। अन्य पुस्नको पर ३३ प्रतिशत कमीशन काउल्लेख था। उसी विज्ञापन में यह ग्रन्थ भूल से चले जाने से गुडगाव के आर्य बन्धुओ ने १२ पुस्तको के आर्डर भेजे। यह पुस्तक सभा की अपनी पुस्तक न थी फिर भी इसका विज्ञापन सार्वदेशिक में छपा था इसलिए सभा नैतिक दृष्टि से ३३ प्रतिशत कमीशन देने के लिए वाध्य थी। आचार्य जी को यह स्थिति बताकर प्रेरणा की गई कि वे ३३ प्रतिशत कमीशन देदें। वे कठिनता से राजी हुए। आचार्य जी ने अपना यह ग्रन्थ किसी भी बुकसैलर को किसी भी कमीशन पर आजतक नही दिया। केवल सार्वदेशिक सभा को दिया है जिससे प्रति पुस्तक पर सभा को १) लाभ है। आडीटर महोदय को आचार्य जी के समक्ष यह सब बात बतादी गई थी और उन्हें कहा गया था कि यदि इन १२ पुस्तको के अतिरिक्त ३३-प्रतिशत कमीशन वाला कोई उदाहरण वे बता सकें तो कार्यालय को सूचित कर दें। उन्होने अभी तक ऐसा नहीं किया। १२ पुस्तको पर भी कमीशन सभा ने ही ३३ प्रतिशत दिया है आचार्यजी ने नही। ये पुस्तके वर्ष के आरम्भ से ही सभा कार्यालय में रक्खी हुई थी।

२—पिछले वर्ष की आडिट रिपोर्ट में एक जीप और १५ साईकिलों का नोट था। सभा

२-जीप और साइकिलो का मामला भूत-पूर्व अधिकारियों श्री ला० रामगोपाल जी

के निश्चयानुसार यह मामला श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को निर्णय के लिये सौपा गया था। उनका निर्णय अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। उनसे प्रार्थना की जाय कि वे कृपया अपना निर्णय शीघ्र करे।

३—श्री अलगूराय जी शास्त्री के लिये ३१-५-५९ को रेल टिकट लेकर सीट रिजर्व कराई गई थी जो बाद में केन्सल कराई गई मगर जो धन वापिस रेल्वे से वसूल हुआ है वह सभा कोष में अभी तक जमा नही हुआ।

४—ट्रिब्यून का एक पर्चा खरीद करके श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को भेजा जाता है और इसके भेजने पर जो डाक व्यय है वह सभा कोष से हो रहा है इससे तो अच्छा यह हो सकता है कि ट्रिब्यून कार्यालय अम्बाला को लिख दिया जावे कि वह एक पेपर ३ या ६ मास या १ साल के लिये सीधा श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त को भेज दिया करें इससे सभा को डाक व्यय की बचत होगी।

५—श्री आचार्य विश्वश्रवा जी ने २५) मार्ग व्यय धर्मार्य सभा की निधि से २४ मई ५९ के लिये वसूल किये हैं। इन तिथि में धर्मार्य सभा की कोई बैठक नही हुई मगर हाँ सभा का वार्षिक चुनाव हुआ जिसके लिये किसी को मार्ग व्यय नही दिया जाता।

वाउचर सं० १०७२ तथा १४१८ पर श्री आचार्य विश्वश्रवा जी का भोजन व्यय २७-६-५९ का दो बार वसूल किया गया है। वाउचर स० १०४२ से प्रतीत होता है कि भोजन व्यय १ दिन का दो रुपया आठ आनो रहा है और वाउचर सं० १४२८ पर ३) वसूल

तथा ला० बालमुकन्द जी आहूजा के समय निर्णय के लिए श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को सौंपा गया था। उनसे प्रार्थना की जायगी कि वे इस विषय में अपना निर्णय शीघ्र दे दे।

३-श्री अलगूराम जी शास्त्री के टिकट का रिफंड अभी तक रेलवे से नहीं मिला है तभी से पत्र व्यवहार जारी है। यह विषय सभा के भूतपूर्व अधिकारी ला० रामगोपाल जी तथा ला० बालमुकन्द जी आहूजा के समय से चला आ रहा है।

४-'ट्रिब्यून' का वार्षिक चन्दा बाहर के लिए ६५) है। ट्रिब्यून के दिल्ली स्थित सब-आफिस से श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को दुर्ग भेजा जाता है उसपर १ वर्ष में ६४)८० व्यय आता है। अत यह व्यवस्था ठीक है।

५-श्री आचार्य विश्वश्रवा जी को २४ मई ५९ की साधारण सभा के वार्षिक अधिवेशन के समय २५) मार्ग व्यय दिया गया। इससे पूर्व धर्मार्य सभा और विद्यार्य सभा के मन्त्रियों को इस अवसर पर मार्ग व्यय दिया जाता रहा है। धर्मार्य सभा की बैठक का कोई बिल इस तारीख का आचार्य जी ने नहीं दिया।

श्री आचार्य विश्वश्रवा जी तथा प० भीमसेन जी के भोजन व्यय वाली बात निराधार है। श्री आचार्य जी ने मेरी उपस्थिति में अपनी डायरी आदि से आडीटर महोदय पर

किया गया है। अब एक वर्ष के बाद वाउचर १०७२ को बदल कर यह दिखलाया गया है कि श्री आचार्य जी की आज्ञा से किसी अन्य व्यक्ति के लिये भोजन लिया गया था जिसका कोई प्रमाण नही।

वाउचर २७१७ दिनाक २३-१२ के अनुसार आचार्य विश्वश्रवा जी १६-१२ को गाजियाबाद चले गये थे और २१-१२ को लौट कर वापिस दिल्ली पधारे मगर वाउचर स० २६८१ दिनाक २२-१२ में ४) उनका भोजन व्यय दिनाक २० १२ के वसूल किये गये हैं। इसी प्रकार वाउचर स० २६७४ से प्रतीत होता है कि प० भीमसेन जी १६-१२ को दिल्ली पधारे मगर २) इनका भोजन व्यय १८-१२ के वसूल किये गये हैं।

उक्त सभी राशियां सभा कोष में जमा होनी चाहिये।

२—सभा सदस्यो की सदस्यता शुल्क का केवल ६३ सदस्यो से २) प्रति सदस्य के अनुसार १८६) मिले हैं। शेष सदस्यों से शुल्क नही मिला। वह उन समाजो से जिनके वे प्रतिनिधि थे मगवाया जाय।

३—पुस्तक बिक्री स्टाक

१—बिल स० ५३६ दिनाक ६-४-५६ पर २० कर्तव्य दर्पण जिनका मूल्य ११ आने की दर से १३)७५ होता है ३)७५वसूल किये गये हैं। शेष १०) वसूल करने का प्रबन्ध किया जाय।

२—२५रिम कागज २० × ३० साइज(२८ पौड) टान्सफर वाउचर सख्या १५८ (रु० ७१०-६८) खरीद किया गया है। इस कागज से जो सत्यार्थ प्रकाश छापे गये हैं वह अभी तक स्टाक पर नहीं आये हैं।

ह० नोतनदास चावला
भूतपूर्व ए० ए० ओ०

स्पष्ट कर दिया था कि यह आडिट रिमार्क अशुद्ध है।

२-सभा के जिन सदस्यों से शुल्क प्राप्त नही हुआ है उनसे सदस्यता शुल्क मगाये जाने का यत्न किया जायगा।

३-पुस्तक बिक्री स्टाक

१-बिल स० ५३६ दिनाक ६-४-५६ में २० कर्तव्य दर्पणों का मूल्य मूल से १३)७५ के स्थान में ३)७५ लगाया गया था। ग्राहक से शेष १०) प्राप्त करने का यत्न किया जा रहा है।

२—२५ रिम कागज सत्यार्थ प्रकाश की २००० प्रतिया छपाने के लिए सार्वदेशिक प्रेस में दिया गया था जिससे १२ फार्म छप गए थे। शेष फार्म इस वर्ष कागज देकर पूरी पुस्तक छपा कर उसकी प्रतिया स्टाक में प्राप्त कर ली गई है।

ह० रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्री वीरेन्द्र जी के नये आरोप के सम्बन्ध में श्री सिद्धान्ती जी का वक्तव्य

पजाब की समस्त आर्य जनता इस बात को देख और सुन रही है कि जब से श्री वीरेन्द्र जी और श्री महाशय कृष्ण जी सभा के अधिकारी नहीं रहे हैं, तब से निरन्तर ४ वर्ष तक श्री वीरेन्द्र जी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के पवित्र सघटन को शिथिल ही नहीं, अपितु नष्ट भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं। नित्य नई विज्ञप्तिया आर्य समाजों को भेजकर वेद प्रचार आदि का रुपया सभा को भेजने से रोकने के यत्न में लगे हुए हैं। सभा के अधिकारियों पर नये-नये आरोप लगाना मानो इनके बायें हाथ का खेल है। इनके पास समय है, सम्पत्ति है, पत्र है और सबसे बढ़कर पिता के पैतृक गुण वृद्धि रूप में मिले हुए हैं।

गत वर्ष आर्य समाजों ने इतना धन वेद प्रचार में दिया जितना सभा के इतिहास में कभी नहीं मिला और शाश्वत् घाटा भी नहीं रहा—यह इनकी विज्ञप्तियों का परिणाम है।

सभा के अधिकारियों पर गिरे हुए आरोप लगाये गये। इनके निर्णय के लिए स्वयं श्री वीरेन्द्र जी ने सरकारी स्टाम्प पर लिखकर आर्य नेता श्रद्धेय श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को पंच चुना। उनका निर्णय आर्य जनता के सामने पहुँच चुका है। १२०० रुपये के दण्ड के साझीदार बने और उनके निर्णय से इन्कार ही नहीं किया। किन्तु फिर मुकदमा चालू किया हुआ है।

अब उन्होंने मुझ पर ३४००) के आरोप को खूब उछाला है। आर्य ज्योति के कई अ कों में इस आरोप को पूरे विस्तार से दे रहे हैं। इसका मैं सामान्य स्पष्टीकरण कर रहा हूँ। जिस समय श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज आर्य समाज सीताराम बाजार देहली में अनशन किए हुए थे, तब श्री वीरेन्द्रजी ने इस आरोप को प्रताप में छापा। श्री स्वामी जी के सामने एक लिखित पत्र दिया गया, जिस पर श्री वीरेन्द्र जी और मेरे हस्ताक्षर है। उसमें श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज को अधिकार दिया गया कि उनके निर्णय को दोनों पक्ष मानेंगे। उस समय अनेक आर्य महानुभाव उपस्थित थे, मैंने श्री स्वामी जी महाराज से कई बार प्रबल अनुरोध किया कि निर्णय दीजिए। दुर्भाग्य से उन्होंने अभी तक निर्णय नहीं दिया। श्री वीरेन्द्र जी ने अपनी प्रतिज्ञा को भग करके आर्य ज्योति में इसको उछाला है। मैंने इसका विशेष स्पष्टीकरण इसलिए नहीं किया कि श्री वीरेन्द्र जो आरम्भ से ही अदालत में जाने की धमकी देते जा रहे हैं। मैं चाहता हूं कि वह अदालत में जावें, क्योंकि इसके अतिरिक्त उनके पास कोई उपाय नहीं है। श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी के निर्णय को उन्होंने प्रतिज्ञा भग करके समाप्त कर दिया है।

मुझे जो कुछ कहना और स्पष्टीकरण करना है अदालत के सामने ही करूंगा। इतना निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि श्री वीरेन्द्र जी पिछले पुरस्कार से कुछ अधिक ही प्राप्त करेंगे यही सम्भावना है।

धर्म की सेवा आसान नहीं, घर फूंक तमाशा है। श्री वीरेन्द्र जी १९५९ की १ जून को जब थाने में वैद्य सत्यव्रत जी के साथ गए और सभा के कार्यालय पर ताला ठुकवा दिया तब ६ जून को ४ दिन के बाद ही मैं जालन्धर कार्यालय में बैठ गया। चारपाई भी मोल लेकर कार्यालय में ही डाल ली। अपने घर से भोजन करता हूं। अपने प्रेस का काम सर्वथा छोड़ दिया। जब तक सभा का सेवक हूं, अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करूंगा। मैंने धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है, तदनुसार आचरण करता हूँ श्री वीरेन्द्र जी कुछ अपने भीतर को भी टटोल लेवें क्या दशा है? परमेश्वर के सामने न आप छिप सकते हैं और न मैं। इससे अधिक अभी नहीं लिखूंगा। विनीत —

जगदेवसिंह सिद्धान्ती

* ओ३म् *

॥ विद्या धर्मेण शोभते ॥

आर्य कुमार भवन की आवश्यकता

दानी महानुभावों से अपील

भारत की राजधानी नई दिल्ली मे डी० ए० वी० हायर सैकन्ड्री स्कूल चित्र गुप्त रोड एक विशाल और प्रगतिशील सस्था है जिस मे ढाई हजार छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे है।

स्कूल मे छात्रो के चरित्र निर्माण, उनमें धार्मिक भावना जागृत करने तथा उन्हे निर्भीक वक्ता, सुलेखक, कवि, तार्किक, सङ्गीतज्ञ एव उत्तम कलाकार बनाने के लिए २५ वर्षों से आर्य्य कुमार सभा स्थापित है जो साधनो व सुविधाओ के अभाव में भी स्वलक्ष्य पूर्ति में प्रयत्नशील है। मई १९५९ मे इस सभा ने अपनी रजत जयन्ती बडे उल्लास पूर्ण वातावरण में सम्पन्न की है।

कुमारो के सर्वाङ्गीण विकास मे सभा सदैव सक्रिय रहते हुए भी स्कूल मे एक ऐसे भवन का अभाव अनुभव करती रही है जिसमे छात्रगण समय समय पर बैठ कर धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विषयो का अध्ययन और मनन कर सके।

इस कमी की पूर्ति के लिये रजत जयन्ती के अवसर पर कुमारों ने यह निश्चय किया कि स्कूल मे कुमारो के लिए "आर्य्य कुमार भवन" का निर्माण होना चाहिए।

भवन निर्माण मे अनुमानत दस हजार १००००) रुपये व्यय होगे जिसे आर्य्य कुमार दानी आर्य्य जनता के सहयोग से एकत्रित् करेंगे। बच्चे अपने काम के प्रति बडे उत्साही व निष्ठावान होते हैं। हमे पूर्ण विश्वास है कि वे धन को इकट्ठा करने मे अवश्य सफल होगे।

आर्य्य कुमार जहा इस पवित्र कार्य के लिए यथा शक्ति स्वय एक दूसरे से बढ चढ कर दान देंगे वहा वे अपने परिचितों, मित्रो सम्बन्धियो तथा दानियो की सेवा में भी दान इकट्ठा करनेके लिए पहुचेंगे।

हम सभी बाल हितैषी बहिन भाईयो से नम्रता पूर्वक अपील करते हैं कि वे राष्ट्र के इन भावी उन्नायको के उत्थान हेतु भवन निर्माण के इस महा यज्ञ मे स्वय अधिक से अधिक दान दे और दूसरो से भी दिलाने की कृपा कर आर्य्य कुमारो को उत्साहित करें।

(नोट) १०१) रुपये या इस से ज्यादा रकम देने वाले महानुभावों तथा इतनी रकम इकट्ठी करने वाले उत्साही छात्रों के नाम भवन के सम्मान पट (आनर बोर्ड) पर अङ्कित किये जावेंगे।

निवेदक —

(१) प्रिन्सिपल हरिश्चन्द्र एम ए
सदस्य दिल्ली नगर निगम — प्रधान

(२) देव व्रत धर्मेन्दु — मन्त्री

(३) सुख लाल त्यागी — कोषाध्यक्ष

(४) देवी दयाल आर्य्य
मन्त्री आर्य्य कुमार परिषद् दिल्ली

(५) मदन लाल निरूला

(६) राम लखन दिवाकर

(७) ब्रह्म कुमार

(८) विद्या भूषण

(९) राजेश कुमार

(१०) सदस्यगण आर्य्य कुमार सभा

(११) अध्यापक गण तथा छात्र वर्ग
डी० ए० वी० हायर सैकन्ड्री स्कूल

"भवन निर्माण समिति"

आर्य्य कुमार सभा चित्र गुप्त रोड, नई दिल्ली

जीवन के कुछ संस्मरण—

त्यागमूर्ति पं० मूलचन्द्र जी

(श्री राधाकृष्ण, मन्त्री आर्य समाज, मेड़ता)

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का किसी भी सामाजिक सस्था के मुकाबिले सबसे अधिक भाग रहा है। यह कह दें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कॉंग्रेस का निर्माण ही आर्य समाज द्वारा हुआ था जिसका दूसरा प्रमाण यह है कि स्व० मौ० मुहम्मद अली ने १९२१ में महात्मा गाधी से कहा था कि काग्रेस में ८० प्रतिशत आर्य समाजी हैं।

प० मूलचन्द्रजी शर्मा भी उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने देश के राष्टीय आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। इनका कार्यक्षेत्र शोलापुर में रहा। काग्रेस में कार्य करते हुए भी जीवन भर आर्य समाज व महर्षि दयानन्द के भक्त रहे। प० मूलचन्द्र जी का जन्म राजस्थान के नागौर जिले में पीलवा ग्राम में वि० स० १९४६ में हुआ। बाल्यकाल में ही पण्डित जी में राष्ट्रीयता व समाज सुधार के अकुर उत्पन्न हो गये थे। जब पण्डित जी की आयु २० वर्ष की थी पीलवा में एक आर्य संन्यासी आर्यसमाज का प्रचार करते हुए पधारे। उनके उपदेशों का पण्डित जी पर प्रभाव पड़ा और उनका झुकाव आर्य समाज की ओर हो गया। थोड़े समय में ही वे पूर्ण आर्य समाजी हो गये। वि० स० १९६६ में मारवाड़ में भीषण प्लेग की महामारी चली। उस समय पण्डित जी ने अपने क्षेत्र में लोगों की सेवा की तथा उस समय प्लेग की बीमारी लग जाने के भय से मुर्दों को जलाने के लिये आदमी नहीं मिलते थे। पण्डित मूलचन्द्र जी ने निर्भयता पूर्वक मुर्दों के दाह संस्कार कराये। पडित जी का मुख्य कार्यक्षेत्र शोलापुर रहा है जहाँ वे अपने व्यवसाय के लिये मारवाड़ से आ गये थे। सन् १९३० के राष्ट्रीय आदोलन की प्रवृत्तियों का शोलापुर प्रमुख केन्द्र रहा जिसके कारण शोलापुर में मार्शल ला लगा दिया था। शोलापुर में जनता ने अग्रेजी हुकूमत को उखाड़ कर शासन करने का निर्णय किया था। काग्रेस ने पडित मूलचन्द्र जी की ड्यूटी एक प्रमुख चौराहे पर मुकर्रर की थी। सगीनों से लैस जवानों के साथ मय मशीनगन कलक्टर की गाड़ी पंडित जी के पास आई। परन्तु पडित मूलचन्द्र जी अपने स्थान पर अडिग रहे। उन्होंने डर कर भागने का प्रयत्न न करते हुए अपने आत्म बल का परिचय दिया था।

सन् १९३८ में जब हैदराबाद में आर्य समाज ने सत्याग्रह आरम्भ किया था, शोलापुर को ही प्रमुख केन्द्र आर्य नेताओं ने बना दिया था। प० मूलचन्द्र जी उस समय शोलापुर आर्य समाज के प्रधान थे तथा प्रधान की हैसियत से उन्होंने आने वाले सत्याग्रहियों के सत्कार व आवास प्रबन्ध की व्यवस्था के कार्य का कुशलता पूर्वक सचालन किया था तथा अपना सारा कार्य छोड़कर सत्याग्रह के लिए धन संग्रह व प्रचार के कार्य में लग गये थे। आपकी सत्याग्रह में जाने की प्रबल इच्छा थी परन्तु चादकरण जी शारदा व महाशय खुशहाल चन्द जी के अनुरोध पर कार्य संचालन के लिए आपको सत्याग्रह में भाग लेने से वंचित रहना पड़ा। शोलापुर में हैदराबाद सत्याग्रह के लिये आप ने तन मन धन से योग देकर शोलापुर आर्य समाज को गौरवान्वित किया। पडित जी की आयु इस समय ७१ वर्ष की हो गई है। आज कल आप पीलवा में रुग्णावस्था में दिन काट रहे हैं। मैं इन पंक्तियों का लेखक उनसे मिलने गया (जिनकी प्रेरणा से ही मुझे आर्य समाज जैसी महान् सस्था के निकट आने का सौभाग्य प्राप्त है) तो पंडित जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए आर्य समाज के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की तथा आर्य समाज का कार्य निरन्तर बढ़ता रहे व सगठन सुदृढ़ हो यहीं उन्होंने अन्तिम इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपने हिस्से से ५०००) पांच हजार की धन राशि आर्य समाज को वसीयत कर दी।

पंडित जी के एकमात्र सुयोग्य पुत्र बजरगलाल हैं जो बम्बई में व्यावसायिक फर्म में अच्छी जगह कार्य कररहे हैं। पंडितजी ने अपने पुत्र का विवाह पूर्ण वैदिक रीति से किया। भगवान् से प्रार्थना है कि पंडित जी को शीघ्र निरोग करे जिससे वे कुछ वर्षों तक और आर्य समाज की सेवा कर सकें।



(नामच छानी निवासी श्री आचार्य अर्जुनलाल जी पत्नी तथा पुत्री के साथ ।)

[इन्होंने अपना लगभग ८० ०) के मूल्य का मकान सार्वदेशिक सभा को दान में दिया है ।]

श्रीयुत मूलचन्द जनरगलाल (पीलवा) जी के सुपुत्र श्री बी० एल० शर्मा, पत्नी तथा

१ मास के पुत्र के साथ ।



Regd No. D-61

सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज दिल्ली—७ में छपकर रघुनाथ प्रसाद जी पाठक प्रिंटर और पब्लिशर के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित।


ओ३म्
कृण्वन्तोविश्वमार्यम्
सार्वदेशिक
वर्ष ३५
अङ्क ८
अक्तूबर १९६०
आश्विन २०१७

वार्षिक मूल्य ६)   विदेश से वार्षिक १२ शिलिङ्ग वा ८)

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०६०

कहां ? क्या ?? किसका ???

सम्पादक, सभा मन्त्री—रघुवीरसिंह शास्त्री   सहायक सम्पादक—रघुनाथ प्रसाद पाठक

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

(सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष ३६ | अक्तूबर १९६०, आश्विन २०१७ वि०, दयानन्दाब्द १३७ | अङ्क ८

वैदिक प्रार्थना

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

भावार्थ —(तं यज्ञं बर्हि०) जो सबसे प्रथम प्रकट था, जो सब जगत् का बनाने वाला है, और सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, उस यज्ञ अर्थात् पूजने के योग्य परमेश्वर को, जो मनुष्य हृदयरूप आकाश में अच्छे प्रकार से प्रेमभक्ति सत्य आचरण करके पूजन करता है, वही उत्तम मनुष्य है । ईश्वर का यह उपदेश सब के लिये है । (तेन देवा अयजन्त सा०) उसी परमेश्वर के वेदोक्त उपदेशों से, देव जो विद्वान्, साध्य जो ज्ञानी लोग, (ऋषयश्च ये) ऋषि लोग जो वेदमन्त्रों के अर्थ जानने वाले, और अन्य भी मनुष्य जो परमेश्वर के सत्कारपूर्वक सब उत्तम ही काम करते हैं, वे ही सुखी होते हैं । क्योंकि सब श्रेष्ठ कर्मों के करने के पूर्व ही उसका स्मरण और प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, और दुष्ट कर्म करना तो किसी को उचित ही नहीं ॥

सम्पादकीय

ज्योति बुझ न सकेगी !

गहन निराशा-निशा के घने आवरण के मध्य, सिसकती, विलखती शान्ति सत्य की छाया, आज केवल एक प्रश्न चिह्न लेकर समस्त मानव जाति के सम्मुख उपस्थित है कि शाश्वत आनन्द की प्राप्ति का जो दीप्त मार्ग, देव दयानन्द ने प्राणों की आहुति दे, ज्योतित किया था, उस पथ पर भावी मनुज सन्तान चल पायेगी या नहीं ? आशा की वह स्वर्णिम दीप-पंक्तिया जिनमें दयानन्द ने प्राणों की आभा से जीवन डाला था, हम उस जीवन को भी जीवित रख पायेंगे या नहीं ?

किससे भूला है कि वर्तमान युग निर्माण में, सत्य का, शान्ति का, आनन्द और ज्ञान का प्रशस्त पथ अकेले दयानन्द ने दिखाया था। उस महा मानव ने जाति-पाति के दुर्गम गर्तों को गिरा कर, संकीर्णता की थोथी दीवारें मिटा कर, अज्ञान, अन्धकार के चक्र में भटकती करोड़ों आत्माओं को उबार कर पावन प्रेम की एक ऐसी अमृत-गंगा प्रवाहित की थी जिससे धरती के समस्त पाप-ताप, कष्ट-क्लेश नष्ट हो, युग का अभिनव अभ्युदय आरम्भ हुआ था।

पश्चिम के छिपते सूर्य को उदय का प्रतीक मान जब भौतिक-वादी विनाश-मार्ग पर सारा देश तीव्र गति से दौड़ने को तत्पर था तब सत्य का उद्घोषक देव दयानन्द ही था जिसने हमारे नेत्र खोल प्रात के उगते सूर्य की लाली से प्रखर अध्यात्मवाद की मंजुल किरणों से हमारे अन्तर को पूरित कर, उसमें जीवन की शान्ति की सच्ची आधार शिला स्थापित की थी।

उस महर्षि ने राह दिखायी, ज्ञान दिया, प्रेरणा भरी और दीपमालिका के दिन जब अगणित दीप भारत-वसुन्धरा पर टिमटिमा रहे थे विदा ली। उनकी विदाई बलिदान का वह गौरव-पूर्ण अध्याय है जिसकी तुलना विश्व इतिहास के पृष्ठों पर खोजने से भी न मिलेगी। परन्तु आज विचारणीय यह है कि क्या उनके बलिदान की पावन स्मृति में हम उनके अनुयायी उन्हें स्मरण करने का अधिकार भी रखते हैं या नहीं ?

क्या अपने महान् गुरु विश्व उन्नायक देव दयानन्द के जीवन के अन्तिम क्षणों की स्मृति हमारे हृदयों में उनके द्वारा आरम्भ किये महान् लक्ष्य को पूर्ण करने की भावना भर सकेगी या नहीं ?

उठा कर देखिये चारों ओर अपनी दृष्टि, प्रतीत होगा कि समस्त धरती का बल आज दयानन्द के आदर्शों को मिटाने चला आ रहा है। भौतिकवाद का प्रवाह का अन्धड़, जाति पाति की लहरें सिर उठाये घुम घुमड़ कर बढ़ती हुई आज हमें, दयानन्द के अनुयायियों को चुनौती दे रही हैं।

किन्तु सोचिये क्या कर रहे हैं आप स्थिति का सामना करने के लिये ? सच्चे हृदय से विचार तो कीजिये !

हमारा कहना है कि इस दीपमाला के दिन समस्त दयानन्द के अनुयायियों को अपने अपने समाज मन्दिरों में बैठ कर सोचना होगा कि वे चाहते क्या हैं ? महर्षि के आदर्शों का जीवन या उनकी समाप्ति !

आर्य जन, हमारा निवेदन है कि अब वह समय आ गया है जब हमें अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना ही होगा ! देरी या उदासी से कार्य चलेगा नहीं, मार्ग केवल दो हैं। एक वह जिसे दयानन्द ने दिखाया था, दूसरा वह जिस पर आज सारा संसार भागा जा रहा है इसलिए अविलम्ब निश्चय कीजिये कि आप जीवन चाहते हैं या मृत्यु ? विजय वरण करना है या हार से ही प्यार

करने की ठान ली है ?

सोचिये, अपना उत्तरदायित्व समझिये और संकल्प लीजिये कि हम दयानन्द के शिष्य किसी भी मूल्य पर ऋषि के महान् लक्ष्य को अधूरा न रहने देंगे और जो निराशा, प्रमाद, त्रुटियां हम में आ गई हैं उनकी दीपमाला के दिन यज्ञ में आहुति दे नये उत्साह एवं विश्वास के साथ भव्य-भावी निर्माण में लगते हुए हम सभी सच्चे हृदय एवं ऊंचे स्वर से घोषणा करें कि **दयानन्द की ज्योति कभी बुझ न सकेगी ! चाहे जो भी क्यों न हो, जो उसे मिटाने का यत्न करेगा, उसे स्वयं समाप्त होना होगा ।**

धरती को स्वर्ग बनाने के लिए सत्य शान्ति और न्याय की विमल पताका जन मन पर लहराने के लिए विजय दयानन्द के दिव्य सन्देश की होगी ।

हमें विश्वास है कि सम्पूर्ण आर्य हृदय में नया विश्वास भर, आगे ... निरन्तर आगे बढ़ने का निश्चय कर कार्य-क्षेत्र में अवतरित होंगे ।

—रघुवीरसिंह शास्त्री

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

एक परीक्षण

'आर्य महिला छात्रवृत्ति समिति' यमुना नगर ने वेदाध्ययन करके वेद प्रचार में प्रवृत्त होने वाली छात्राओं एव महिलाओं को छात्र-वृत्तियां देनेका निश्चय किया है । पत्र-व्यवहार तथा नियमावलि मगाने का पता 'अध्यक्षा आर्य महिला छात्रवृत्ति समिति २७ए माडल टाउन यमुना नगर (अम्बाला) है । हम इस परीक्षण की सफलता की कामना करते है ।

श्रीयुत बाबू पीतमलाल जी

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के भूत पूर्व मन्त्री श्रीयुत बा० पीतमलालजी ऐडवोकेट की आकस्मिक मृत्यु का समाचार देते हुए दुःख होता है । श्री पीतमलाल जी सार्वदेशिक सभा के भी सदस्य रह चुके थे । अलीगढ जिले में आर्य समाज के कार्य को आगे बढाने में उनका बड़ा हाथ रहा । इस महान् वियोग मे हम उनके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना का प्रकाश और दिवगत आत्मा की सद्गति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

रोहतक के बाढ़ पीड़ितों की सहायता

रोहतक में बाढ पीडितों की सहायता का कार्य सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में 'हरियाना बाढ़ पीड़ित सेवा समिति' की ओर से व्यवस्थित और सगठित ढग से हो रहा है । प्रमुख केन्द्र रोहतक के दयानन्द मठ में स्थित है । इस समय तक जो कार्य हुआ और सभा कार्यालय में सहायता प्राप्त हुई है उसका विवरण अन्यत्र दिया गया है । विनाश और लोगों के कष्टों की विशालता को देखते हुये यह कार्य बडे पैमाने पर और कुछ देर तक करना होगा । धनीमानी और दानशील नर नारियों को अपनी सहायता का हाथ बटाकर इस मानवीय कार्य को सुगम बनाने का यश प्राप्त करना चाहिये ।

प्रशंसनीय कार्य

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालधर के 'महात्मा हसराज वैदिक साहित्य विभाग'

ने उर्दू सत्यार्थ प्रकाश का नया सस्करण छपवाकर एक बडा कमी की पूर्ति की है जिसके लिये वह धन्यवाद की पात्र है । उर्दू सत्यार्थ प्रकाश बहुत देर से बाजार में अप्राप्त था । इस नये सस्करण का मूल्य ३)५० नया पैसा है । प्रकाशको ने सूचित किया है कि यह सस्करण परिमित सख्या में छपाया गया है अत मगाने वालों को शीघ्रता करनी चाहिये । श्रीयुत ला० लाजपतराय जी कृत 'Arya Samaj' अग्रेजी ग्रन्थ का भी नया सस्करण शीघ्र छपना चाहिये । यदि आर्य प्रादेशिक सभा इस दिशा में भी सक्रिय पग उठाये तो बहुत अच्छा होगा ।

आर्य महासम्मेलन

सार्वदेशिक सभा ने अपने स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष्य में आर्य महासम्मेलन का नवम् अधिवेशन दिल्ली में करने का बहुत दिनो से निश्चय किया हुआ है । अनेक अपरिहार्य कारणों एव परिस्थितियो के कारण यह निश्चय अभी तक मूर्तरूप धारण न कर सका । सभा द्वारा नियुक्त स्वर्ण जयन्ती महोत्सव उप समिति ने अपनी १८-९-६० की बैठक में आगामी दिसम्बर मास में यह सम्मेलन करने का निश्चय किया है । सम्मेलन की तिथिया २५ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर तक की नियत की गई है । सम्मेलन के आयोजन का प्रमुख दायित्व सभा के उप प्रधान श्रीयुत वेदराज जी चौधरी और प्रकाशन का दायित्व श्रीयुत बा० कालीचरण जी के अधीन किया गया है । इस अवसर पर प्रमुख आर्यों का एक सम्मेलन भी बुलाया जायगा जिसमें आर्य समाज की आन्तरिक स्थिति के सुधार और उसकी प्रगति को आगे बढाने के उपायों पर विचार होगा । इस समय सबसे मुख्य विचारणीय विषय यह है कि आर्य समाज अपने विविध पुरोगम को सम्पन्न करता हुआ ऐसा कौन सा पुरोगम अपनाए जो समस्त देश को ग्राह्य हो और जो चारित्रिक दृष्टि से पतन के गहरे गह्वर की ओर अग्रसर होते हुये समाज की रक्षा करने वाला सिद्ध हो । आर्यों के प्रमुख सम्मेलन के विचार का यह पुरोगम मुख्यतम अग हो सकता है । आर्य विद्वत सम्मेलन का आयोजन इस महोत्सव का दूसरा महत्त्व पूर्ण अग होगा । सम्मेलन में विद्वान् लोग वेद के विषय पर अपने निबन्ध पढे गे जो बाद में पुस्तक रूप में छपेगे । इसी मे वेद तथा विविध सिद्धान्तों विषयक शकाओं और जिज्ञासाओ के समाधान का भी उपक्रम होगा । यज्ञ और प्रदर्शिनी आदि २ अनेक आयोजन भी उत्सव के पुरोगम के भाग होगे ।

इस अवसर पर यदि आर्य समाज की विविध सस्थाओं उपदेशको एव आर्यों की वास्तविक सख्या साहित्य शुद्धि, दलितोद्धार आदि के कार्यों के प्रामाणिक आंकडे आदि २ सूचनाए सगृहीत हो जाय तो यह एक बहुत बडा कार्य होगा । सम्मेलन के प्रमुख सयोजक इस दिशा में बहुत यत्नशील हैं । प्रान्तीय सभाओं का योग मांगा गया है । इस अवसर पर एक और आवश्यक आयोजन किये जाने का विचार किया गया है और वह यह है कि विविध प्रान्तों द्वारा अब तक किए गए विविध कार्यों का दिग्दर्शन कराने के निमित्त प्रान्त के पृथक २ कैम्पों में उसकी आवश्यक व्यवस्था कराई जाय । इसके लिये भी प्रान्तीय सभाओं

को लिखा गया है।

अब आर्य जनता का कर्त्तव्य है कि वह इस समस्त आयोजन की सफलता के लिये सार्वदेशिक सभा को अपना पूर्ण सहयोग दे। सम्मेलन पर लगभग ५० सहस्र रुपया व्यय होने का अनुमान है। इस व्यय की पूर्ति के दो ही उपाय हैं। एक स्वागत कारिणी समिति की सदस्यता और दूसरा दान। स्वागतकारिणी की सदस्यता का शुल्क १०) है।

१०), २५) ५०) और २००) देकर स्वागत कारिणी सभा के सदस्य बन सकते है। इस प्रकार कम से कम २५ सहस्र रुपया इस शुल्क से सहज ही एकत्र हो सकता है शेष २५ सहस्र दान से एकत्र हो जाना चाहिये।

आर्य सभा मौरीशस

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज सार्वदेशिक सभा की ओर से गत २-३ वर्ष से मौरीशस में बैठे हुए आर्य सभा और आर्य प्रतिनिधिसभा मौरीशस इन दो सभाओ के एकीकरण के अत्यन्त कठिन और जटिल कार्य में व्यस्त थे। प्रसन्नता है कि यह कार्य अनेक विघ्न बाधाओ के होते हुए भी विधिवत सम्पन्न हो गया है और आवश्यक वैधानिक कार्य्यवाही पूर्ण करली गई है। श्री स्वामी जी का यह कार्य आर्य समाज के इतिहास में अमर रहेगा। दोनों सभाओ के कर्णधारो एव सदस्यों को सार्वदेशिक सभा और श्री स्वामी जी महाराज की भावना का आदर करते हुए अपने कार्य्य और व्यवहार से इस एकीकरण को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिये।

श्री स्वामी अभेदानन्द जी का मौरीशस को प्रस्थान

सार्वदेशिक सभाके भूतपूर्व प्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज सार्वदेशिक सभा की ओर से ५-१०-६० को वायुयान से मौरीशस जा रहे हैं। उनके वहा पहुंच जाने पर और श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का दायित्व सम्भाल लेने पर श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी स्वदेश लौट आयेंगे। सभवत वे अक्तूबर के अन्त तक आ जायेंगे। इस वृद्धावस्था मे श्री स्वामी जी इतने दूर विदेश में प्रचारार्थ जा रहे हैं उनका यह साहस तथा धर्मधुरन्धरता प्रशसनीय हैं आशा है कि श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज को मौरीशस के आर्य भाईयों का पूर्ण सहयोग प्राप्त रहेगा और वे भी अपने मिशन में पूर्ण सफल रहेगे। हम सार्वदेशिक परिवार तथा आर्य जगत् की ओर से श्री स्वामी जी की इस यात्रा का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

धार्मिक नेतृत्व

पिछले दिनो भारतीय विश्व विद्यालयो के उपकुलपतियों की एक समिति विद्यार्थियों की अनुशासन हीनता के कारणों की जांच और सुधार के उपायो को ज्ञात करने के लिए नियुक्त हुई थी। विद्वान् उपकुलपतियों की इस समिति ने विविध त्रुटियों पर प्रकाश डालते हुए बाह्य प्रभाव को विद्यार्थियों की अनुशासन हीनता के लिए उत्तरदाता बताया है। उन्होंने कुछ सुझाव दिए हैं और चेतावनी दी है कि यदि स्थिति में सुधार न हुआ तो

नवयुवकों के हितों को भारी धक्का लगेगा। समिति का मत है कि राष्ट्रीय जीवन में राजनीति और राजनीतिज्ञों का आवश्यकता से अधिक प्रभुत्व व्याप्त देख पड़ता है। उन्होंने यह भी बताया कि हमारे देश में ऐसे बहुत से व्यक्ति पाए जाते हैं जिनकी सफलता का आधार बौद्धिक वा नैतिक विशेषताऐं नहीं हैं। दुःख इस बात का है कि उनके सुझावों और सिफारिशों में सामाजिक गुणों एवं नैतिक वा आध्यात्मिक मर्यादाओं के पुनरुज्जीवन का कोई उल्लेख नहीं है।—

हमारी अपनी सांस्कृतिक मर्य्यादाएं हैं। हमारी शिक्षा का स्वरूप भी निराला रहा है। ऋषियो के आश्रम हमारे विश्वविद्यालय रहे हैं जहा समस्त विद्याओं एवं शास्त्रों में निष्णात् ऋषि गण शिक्षा प्रदान करते थे और जिनका भिखारी और राजा दोनों ही सम्मान करते थे। उनका विश्वविद्यालय सबके लिए खुला होता था परन्तु उसमे व्यवहार के नियमों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन कराया जाता और विनम्रता, ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम और विद्याध्ययन पर ही विशेष बल दिया जाता था। अनुशासन भंगके अपराध पर राजकुमार तक दण्डित होता था। भगवान राम और कृष्ण जैसे युग पुरुष इन्हीं वनाश्रमो के विश्वविद्यालयो की उपज थे। इसके पश्चात हमें अनेक महा पुरुष प्राप्त हुए। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्राचीन आर्य शिक्षा और आर्य सस्कृति की अदभुत देन के रूपमें प्रादुर्भाव हुआ जिनकी शिक्षा दीक्षा किसी आधुनिक विश्वविद्यालय में न होकर गगा और यमुना के तटों पर हुई। महात्मा गांधी को यद्यपि आधुनिक शिक्षादीक्षा प्राप्त हुई तथापि उनके राजनैतिक नेतृत्व के पीछे धार्मिकता का पुट लगने से ही वह जन साधारण को ग्राह्य बन सका। क्या हम इस तथ्य की उपेक्षा कर सकते हैं? संसार का नेतृत्व सदैव धर्म-परायण व्यक्तियों के हाथ में रहा। इसी लिए उन्हें सफलता मिली। वर्तमान नवयुवक धर्म शब्द के उच्चारण पर ही नाक भौं सिकोड़ने लग जाता है क्यों? इसीलिए कि नवयुवकों के हम मार्ग-दर्शक भौतिक उन्नति की अन्ध-दौड़ के विरुद्ध आवाज नहीं उठाते। भारतीय राजनीति सदैव धर्म पर बल देती रही है इसका परिणाम क्या हुआ? प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (भारत की खोज) में भारत के प्राचीन ऋषियों और विचारकों का गुण गान किया है जो दूर की सोचते थे। क्या हमें अपने वर्तमान युवकों और युवतियों से जिनके कधो पर महान् उत्तरदायिता आने वाली है विशेष आशा हो सकती है? क्या हम गभीर भाव में यह इच्छा रखते हैं कि उनमें से राम कृष्ण, दयानन्द, गांधी, सीता, सावित्री, और रानी लक्ष्मी बाई प्रभृति महापुरुष और महान् देवियां उद्भूत होंगी? क्या हम स्कूलो, कालेजों आदि में धार्मिक एव नैतिक शिक्षण के पाठ्यक्रम की उपेक्षा कर सकेंगे?

मांसाहार अग्राह्य

भारत में इन दिनों मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ रही है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। उन घरानों के नवयुवक और नव-

युवतियां क्लबों, होटलों और विभिन्न सहभोजों आदि में ससर्ग दोष से मांस वा मांस से निर्मित खाद्य पदार्थों को प्रकट वा अप्रकट रूप में खाते हैं जिनमें मांसाहार अत्यन्त घृणित और त्याज्य समझा जाता रहा है। उनमें से कुछ तो मित्रों की गोष्ठी में मांसाहार को फैशन और सभ्यता का सूचक समझकर उसका आश्रय लेनेमे गौरव अनुभव करते हैं। यह अवस्था बडी भयावह है। हमारा स्वतन्त्र शासन भी खाद्य समस्या के एक समाधान के रूप में इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने का अपराधी बन रहा है। शासन को कोई अधिकार नही कि वह मासाहार को प्रेरणा दे।

पिछले दिनों पजाब से एक समाचार प्राप्त हुआ था कि वहा के एक उच्च राज्य कर्मचारी ने विवाह-विच्छेद की राज्य के न्यायालय से इस आधार पर अनुमति चाही थी कि उसकी पत्नी मास नही खाती और जब वह उसके साथ मित्र मडली में बैठता है और वह मास खाने से निषेध कर देती है तो उसे बडी लज्जा अनुभव होती है।

दिल्ली नगर में मासाहार के परिवेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार प्रति दिन १ लाख ४० हजार अ डे और ७०० मुर्गे खाए जाते हैं। इसमें बकरो तथा अन्य प्रकार के मास की खपत सम्मिलित नही है। बताया गया है कि राजधानी की मांग इससे भी अधिक है जिसको पूरा करने के लिये कुछ ठोस कदम उठाए गए हैं। इस वर्ष मुर्गी पालन केन्द्रों में १८ करोड ६० लाख ४ सौ ६० अ डों का उत्पादन किया गया और निजी मुर्गी पालन केन्द्रों में जिनकी सख्या ५० के लगभग है १ लाख ३० हजार अ डे उत्पादन किये गये। शेष की पूर्ति के लिये ३७ हजार ८०० अ डे बाहर बाजार से क्रय करने पडे। विगत वर्ष १४ हजार ७ सौ ३३ अ डों को बाहर अन्य राज्यो से मगवाया गया परन्तु इस वर्ष केवल ७ हजार ४ सौ ८ अ डे ही मगवाये गये। इस योजना पर ४ लाख ७५ हजार रुपया खर्च करने का अनुमान है और इसके सफल हो जाने पर १६६१ में राजधानी में प्रतिदिन १ लाख से ऊपर अ डे और ४०० मुर्गों की सप्लाई की जायगी। आदि २

ये २ उदाहरण यह दिखाने के लिये दिये है कि ससर्ग-दोष और राज्य के प्रोत्साहन से मासाहार बढ़ रहा है।

मानवता, स्वास्थ्य और अर्थ तीनों ही दृष्टियों से मांसाहार त्याज्य सिद्ध हो चुका है। विदेश में हुए विश्लेषणों और अनुसधानों से से यह बात सुस्पष्ट है।

अपने खाने के लिये दूसरो की जान लेना पाप है। शाकाहार मानुषीय आहार और स्वास्थ्य के लिये जो तत्त्व आवश्यक होते है वे सब दाल, चावल, शाक, दूध और रोटी से मिल सकते हैं। खाने के लिये मरे हुये पशु पक्षियो की लाशो का प्रयोग खतरे से खाली नही होता। उनमें बडे हानिकारक जीव उत्पन्न होते है। मासाहार की उत्पत्ति के लिये शाकाहार की उत्पत्ति की अपेक्षा अधिक भूमि आवश्यक होती है जो आर्थिक दृष्टि से हानिप्रद है।

इन तीनों दृष्टियो से शाकाहार मांसाहार की तुलना में ग्राह्य और वरिष्ठ है।

शाकाहार की दिशा में भारत ने विशद् परम्पराए स्थापित की हुई हैं। भारतवासियों

का जीवन का दृष्टिकोण भी पवित्र और त्याग पूर्ण है। फिर इन परम्पराओ को तोडने वा उनकी उपेक्षा करने की भूल हम भारतवासियो को न करनी चाहिये। मासाहार को भारतीय समाज ने सदैव हेय दृष्टि से देखा है और अब भी देखता है। मासाहारियो को यह बात हृदयङ्गम कर लेनी चाहिये। मास का ग्रास अपने मुंह में रखने से पूर्व उन्हे सोचना चाहिये कि इसमे कितनी आत्माओ की आहे और अरमान छुपे हुये हैं और देखना चाहिये कि वे अपने शरीर और आत्मा के विकास तथा मानवता के साथ खिलवाड कर रहे हैं।

एक लिपि

प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने आसाम की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए २०-७-६० को एक बड़ा उत्तम सुझाव दिया और वह यह कि भारत की समस्त भाषाओं की एक ही लिपि होनी चाहिये और वह लिपि देवनागरी हो सकती है। उन्होंने कहा "भारत में अनेक भाषाएं हैं लेकिन कठिनाई लिपि की है। लोग कितनी लिपियाँ सीखें। खासी पहाड़ी के कुछ लोगों ने मुझ से कहा कि उन्हें विभिन्न लिपियों में असमी, हिन्दी, अंग्रेजी और खासी भाषाएं पढ़नी पड़ रही हैं। लेकिन मैं जनता को सुझाव दूंगा कि वे तमाम भारतीय भाषाओं के लिए केवल देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करें।" इससे पूर्व मान्य पण्डित जी समय २ पर 'रोमन' लिपि का समर्थन करते रहते थे। उनकी इस घोषणा से हिन्दी लिपि के समर्थकों को प्रसन्नता होगी। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता एवं उत्कृष्टता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। समस्त भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि स्वीकार कर लेने से उन भाषाओं का पढ़ना और समझना सुगम हो सकता है। शब्दों का अर्थ न जानते हुए भी कोष की सहायता से कोई भी व्यक्ति बाहरी सहायता के बिना स्वयं दूसरी भाषा सीख सकता है। समस्त भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि के स्वीकार करने से कम्पोज और टाइप करने में जो कठिनाई होती है वह उपयुक्त साधारण परिवर्तन से दूर की जा सकती है।

गत २० जून को पंजाब के राज्यपाल श्री गाडगिल महोदय ने शिमला में अखिल भारतीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए ठीक ही कहा था 'यदि पंजाबी भाषा को केवल गुरुमुखी में ही लिखा गया तो उसे केवल कुछ लाख पंजाबी ही सीख सकेंगे जो पंजाब में रहते हैं किन्तु यदि गुरुमुखी के स्थान पर उसे देवनागरी लिपि में लिखा गया तो उसे करोड़ों लोग सीख सकेंगे। देवनागरी लिपि में पंजाबी भाषा के लिखे जाने के प्रचलन से पंजाब के बाहर देश के अन्य भागों में निवास करने वाले करोड़ों देशवासी भी पंजाबी से परिचय ही नहीं प्राप्त करेंगे अपितु उसे सीखेंगे भी।"

श्री विनोबा जी और राष्ट्रपति महोदय तो देवनागरी लिपि के पक्ष में कई बार अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। उन्होंने कहा है कि देवनागरी लिपि सब के द्वारा ग्राह्य होने योग्य उचित लिपि है।"

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

एक शङ्का और उसका समाधान

"नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ईश्वर है या जीव ?"

[लेखक—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड]

शङ्का —

आर्याभिविनय में ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का स्वरूप प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि ईश्वर 'नित्य शुद्ध बुद्ध-मुक्त स्वभाव" है। परन्तु कपिलमुनि के सांख्यदर्शन में पुरुष अर्थात् जीवात्मा को "न नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-स्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते" (सांख्ये० १-१९) सूत्र द्वारा नित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव कहा है। इस प्रकार दोनों कथन कैसे सत्य या सङ्गत हो सकते हैं।

समाधान—

सांख्यदर्शन के जीवात्मा को "नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावस्य कथन में 'नित्य' शब्द नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त का विशेषण अर्थात् नित्य शुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त हो तो अन्त में स्वभाव शब्द व्यर्थ है क्योंकि इससे पूर्वसूत्र "प्रकृति निबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम्" (सांख्ये० १-१८) पुरुष अर्थात् जीवात्मा का बन्ध प्रकृति के द्वारा हो अर्थात् प्रकृति उसको बांधती है। ऐसा कहा जावे तो ठीक नहीं क्योंकि प्रकृति परतन्त्र है जड होने से। इस पर यदि कहा जावे कि पुरुष ही स्वयं प्रकृति के साथ बन्ध जावे तो ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि पुरुष-जीवात्मा नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त है। उसका 'तद्योग' अर्थात् प्रकृति-योग-प्रकृति के साथ योग नहीं हो सकता तब सूत्र में स्वभाव शब्द निरर्थक हो जाता है। अत स्वभाव शब्द यहां किसी विशेषार्थ को लक्षित कराता है। वह यह है कि स्वभावना अर्थात् निज भावना आकाङ्क्षा या प्रवृत्ति है। वह स्वभावना निजाकांक्षा या निज प्रवृत्ति नित्य अर्थात् शाश्वतिक बनी रहती है। शुद्ध-पवित्र, बुद्धज्ञानवान्, मुक्त-बन्धन रहित होने की।

आर्याभिविनय में ऋषि दयानन्द के द्वारा ईश्वर को "नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव" कथन में स्वभाव शब्द स्वसत्ता-निजसत्ता का वाचक है क्योंकि इसके पूर्व का वचन है ईश्वर "सच्चिदानन्दस्वरूप" है स्वरूप शब्द के साहचर्य से स्वभाव शब्द स्वसत्ता का अर्थ देता है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रयुक्त स्वभाव शब्द और कपिलमुनि के द्वारा प्रयुक्त स्वभाव शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में है उनके भिन्न भिन्न वक्ता और भिन्न भिन्न क्षेत्र होने से जैसा कि एक 'अज' शब्द ईश्वर, जीव, प्रकृतिके साथ प्रयुक्त होने से* भिन्न भिन्न अभिप्राय को प्रदर्शित करता है। ईश्वर के साथ 'अज' शब्द

---

* अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वी प्रजा सृजमानां सरूपा"। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्य"॥ (श्वेताश्वतर०)

शरीर न धारण करने वाला जीव के साथ पुन पुन शरीर धारण करने वाला नित्य चेतनतत्त्व, प्रकृति के साथ अकार्य कारणरूप अर्थात् कार्य का उपादान कारण अर्थ देता है। जैसे यहा एक 'अज' शब्द होता हुआ भी भिन्न भिन्न वस्तुओ अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति के साथ भिन्न भिन्न आशय मे प्रयुक्त होता है इसी प्रकार 'स्वभाव' शब्द भी ऋषि दयानन्द प्रदर्शित ईश्वर के साथ और कपिलमुनि प्रदर्शित पुरुष अर्थात् जीवात्मा के साथ भिन्न भिन्न अर्थ या अभिप्राय मे प्रयुक्त है। ऋषि दयानन्द के कथन मे स्वभाव शब्द स्वसत्ता के अर्थ मे अर्थात् ईश्वर नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वसत्ता वाला है। कपिलमुनि के कथन मे स्वभाव शब्द स्वभावना निजाकाङ्क्षा के अर्थ में अर्थात् पुरुष या जीवात्मा शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञानवान् मुक्त-बन्धन रहित नित्य स्वभावना शाश्वतिक निजाकाङ्क्षा रखने वाला है। अत-एव स्वय प्रकृति के साथ बन्धन मे आना नही बन सकता परन्तु यह बन्धता है न बन्धन की स्वभावना रखता हुआ भी। इसका कारण आगे कहा जाने वाला अविवेक है जो कि इसकी स्वभावना को दबा देता है।

इस प्रकार स्वभाव शब्द ऋषि दयानन्द के कथन मे ईश्वर के साथ और कपिलमुनि के कथन मे जीवात्मा के साथ प्रयुक्त होकर भिन्न भिन्न लक्ष्य को प्रदर्शित करता हुआ अपने अपने क्षेत्र मे सार्थक और अविरोधी है।

ऋषि दयानन्द के द्वारा 'नित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव ईश्वर है 'कथन' मे नित्य' शब्द शुद्ध-बुद्धमुक्त के साथ समस्त एव सम्बद्ध है कि नित्य शुद्धबुद्धमुक्त यह स्वभाव (स्वसत्ता) जिसका है+। और कपिलमुनि के 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव" जीव है कथन मे 'नित्य' शब्द स्वभाव के साथ समस्त सम्बद्ध है, स्वभाव-स्वभावना निजाकाक्षा शुद्धबुद्धमुक्त होने मे जिसकी है×।

साख्यमत मे जीव स्वभाव से न बद्ध है और न मुक्त है यह स्पष्ट कहा गया है '*व्यावृत्तो-भयरूप*" (सॉं० २।१६०) तथा "नैकान्ततो बद्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते" (सा० ३।७१)

+ नित्यशुद्धबुद्धमुक्त —इति स्वभाव (स्वसत्ता) यस्य तथा भूत —नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव (दयानन्द प्रयुक्ते)

× नित्य —शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव है (स्वभावना निजाकाक्षा) यस्य तथा भूत ।

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेवाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषो से सत्य को छोड असत्य मे झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ मे ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य-जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करे, क्योकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नही है।

—सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती

ऋग्वेद की ऋक्संख्या के सम्बन्ध में
क्या महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वता जी से अक्षम्य भूलें हुई हैं ?

श्रीयुत आचार्य विश्वश्रवा जी

ऋग्वेद में कितनी ऋचाएं हैं इस सम्बन्ध में कुछ ग्रन्थ छपे है उन सब ग्रन्थो में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का खुला खण्डन किया गया। मन्त्री के नाते मेरा कर्तव्य था कि मैं इस विषय को सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में रखू और देखू कि आर्यविद्वान् क्या निर्णय करते हैं। धर्मार्यसभा ने प्रथम तीन विद्वानों की उपसमिति इस विषय पर विचार करने के लिये बनाई जिसमें—

१—श्री प० रामनाथ जी वेदालकार वेदाध्यापक गुरुकुल कागडी।

२—आचार्य प० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल कागडी।

३—प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड पूर्व मन्त्री धर्मार्यसभा।

ये तीन विद्वान् थे। इस उपसमिति ने महर्षि के पक्ष के समर्थन में रिपोर्ट दी। वही धर्मार्यसभा का निर्णय बना। इस समाचार को सुनकर प० युधिष्ठिर जी ने वेदवाणी में धर्मार्यसभा के निर्णय को चैलेज किया। मन्त्री के नाते मेरा कर्तव्य था कि सभा के सार्वदेशिक में उस का स्पष्टोकरण कर दू। आश्चर्य है कि प० युधिष्ठिर जी ने मेरे इस लेख के विरुद्ध फिर एक लेख सार्वदेशिक में प्रकाशित कराया।

प० युधिष्ठिर जी ने मूल प्रश्न को साधारण रूप देकर छापे की अशुद्धियां दिखा कर लेख भर दिया और यह बात भी उन की नहीं है। वे स्वय लिखते हैं कि प्रो० मैकडा-नल ने छापे की अशुद्धियों का ध्यान दिलाया। प० युधिष्ठिर जी का अपना विवरण यह नही है।

(मूलभूत प्रश्न की ओर आइए)

प० युधिष्ठिर जी महर्षि के वेदभाष्य में केवल छापे की अशुद्धियां नही मानते प्रत्युत यह मानते हैं कि मन्त्र सख्या में स्वामी जी जी से भूलें हुई हैं और उन भूलो को वे अक्षम्य बताते हैं। महर्षि को ऋग्वेद की मन्त्रसख्या के सम्बन्ध में स्वय कुछ ज्ञान नहीं था और मैक्समूलर ने उन्हें धोके में डाल दिया। इस को मैं सुनने को भी तैयार नहीं।

मैं महर्षि को निर्भ्रान्त मानता हूं जैसा मैंने मथुरा शताब्दी के वेद सम्मेलन के मञ्च पर कहा था और जिस का समर्थन प० ब्रह्म-दत्त जी को करना पड़ा। प० युधिष्ठिर जी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भूलों को अपने ग्रन्थ "ऋग्वेद की ऋक्सख्या" में इस प्रकार दिखाते हैं—

"मैक्समूलर के ऋक्सस्करण में कुछ भयकर दोष रहगये हैं। उन में सब से महान् दोष नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं के मुद्रण में हुआ

है उसके कारण उत्तरवर्ती अनेक विद्वानों से भयङ्कर भूलें हुई हैं।

इस से यह भी विदित होता है कि मैक्समूलर को इन १४० नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं का वास्तविक स्वरूप समझ में नही आया था। अत उसे किसी प्रकार क्षम्य नहीं कहा जा सकता।"

(प० युधिष्ठिर जी कृत ऋग्वेद की ऋक्सख्या पृ० ५)

इस के आगे प० युधिष्ठिर जी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में लिखते हैं कि स्वामी जी ने जो ऋग्वेद की ऋक्सख्या लिखी और जो वैदिक यन्त्रालय में ऋग्वेद छपा है वह मैक्समूलर का अन्धानुकरण है। पं० युधिष्ठिर जी के शब्द इस प्रकार हैं। ऋषि की ऋक्संख्या दर्शाते हुए प० युधिष्ठिर जी लिखते हैं कि

(स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनकी ऋक्सख्या)

उन का पूर्ण योग १०५२२ होगा। यह योग मैक्समूलर के ऋक्संस्करण के अनुसार है। हम पूर्व लिख चुके हैं कि मैक्स-मूलर के ऋक्सस्करण में।

(प० युधिष्ठिर जी की ऋग्वेद ऋक्सख्या पृ०१८)

मैक्समूलर के सम्बन्ध में जो पूर्व लिखा है वह ऊपर लिखा जाचुका है। ऋक्संख्या के प्रसङ्ग में ही प० युधिष्ठिर जी आगे चलकर लिखते हैं सामान्यरूप से कि—

'लोग योरोपियन विद्वानों के लिखे को प्रामाणिक मानकर स्वय आंख मीच कर उन का अन्धा अनुकरण करते हैं वे स्वयं धोके में रहते हैं। इस में किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं।

(प० युधिष्ठिर जी कृत ऋग्वेद-ऋक्संख्या पृष्ठ २२)

स्वामी जी की बताई ऋक्संख्या के अतिरिक्त अजमेर के छपे ऋग्वेद को भी प० युधिष्ठिर जी मैक्समूलर के छापे ऋग्वेद की नकल बताते हैं अत उनके अनुसार वह भी गलत है प० युधिष्ठिर जी के शब्द इस प्रकार हैं—

मैक्समूलर के सस्करण तथा तदाश्रित अजमेर आदि के सस्करणों में—

(ऋक्सख्या पृष्ठ ४)

कोई भी व्यक्ति प० युधिष्ठिर जी के इस ग्रन्थ को पढ़कर यही परिणाम निकालेगा कि आर्यसमाजियों को वेद के सम्बन्ध में अपनी कोई अकल नहीं है। मैक्समूलर का छापा वेद बिना सोचे जैसे का तैसा छाप दिया और स्वामी दयानन्दसरस्वती जी को यह भी नहीं पता कि ऋग्वेद में कितने मन्त्र हैं। मैक्समूलर का अन्धानुकरण स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने किया। अत स्वामी जी किसी प्रकार क्षमा के योग्य नहीं है। इस विषय में जैसा मैक्समूलर वैसा स्वामी दयानन्द।

पं० युधिष्ठिर जी ऋग्वेद में १०५५२ दस हजार पांच सौ बावन मन्त्र मानते हैं। यह मन्त्र संख्या पं० सातवलेकर जी ने बताई है। यह भी प० युधिष्ठिर जी की अपनी समझ नहीं है। आर्यसमाज में जितने बहके हुए पण्डित हैं उनके प्रवर्तक प० सातवलेकर जी हैं जिन प० सातवलेकर जी के विचार स्वामी जी के सम्बन्ध में क्या है वह आर्य

जगत् जानता है। प० सातवलेकर जी ने अपने वेदों के अनुवाद में जगह-जगह स्वामी जी के अर्थों का उपहास किया है कोई देखना चाहे तो प० सातवलेकर जी के अथर्ववेद के भाष्य में प्राची दिगग्नि के अर्थ में देखले। प० सातवलेकर जी वेद को स्वय समझते नहीं और ऋषि का उपहास करते है उस का विस्तृत उत्तर मैने अपने पञ्चमहायज्ञविधिभाष्य ग्रन्थ में दिया है।

प० युधिष्ठिर जी प० सातवलेकर जी के छापे ऋग्वेद की प्रशसा करते हैं क्योकि १०५५२ वाली बात ही प० सातवलेकर जी की ही है। प० युधिष्ठिर जी लिखते हैं कि—

"हमें यह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि प० सातवलेकर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद का द्वितीय सस्करण अभी तक प्रकाशित समस्त सस्करणो में श्रेष्ठतम है। इसलिये पं० सातवलेकर जी वस्तुत धन्यवाद के योग्य हैं।"

"वस्तुत मैक्समूलर का सस्करण प० सातवलेकर जी के ऋक्सस्करण के आगे आदरणीय नही रहा। सब से अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि ऋग्वेद के इस सस्करण में ऋचाओं का पूर्णयोग वही १०५५२ दिया है"।

(ऋग्वेद ऋक्सख्या पृ० २६)

प० युधिष्ठिर जी की इस घोषणा पर क्या सार्वदेशिक धर्मार्य सभा यह स्वीकार कर लेती कि स्वामी जी से अक्षम्य अपराध हुआ है ? वे नही जानते थे द्विपदाओ को। नहीं जानते थे मन्त्र सख्या को ? और नही जानते थे द्विपदाओं का छापना ? प० सातवलेकर जी ने जो गलती स्वामी जी की पकड़ी और जिस के आधार पर प० युधिष्ठिर जी ने जो कुछ स्वामी जी के बारे में लिख मारा वह सब ठीक है ?

धर्मार्यसभा ने अपना निर्णय करते हुए प० युधिष्ठिर जी का नाम भी नहीं लिया। रामलाल कपूर ट्रस्ट में बैठकर वे कुछ भी लिखते रहे आर्यजगत् पर उस का उत्तरदायित्व नही है वह पुरानी बात हो चुकी थी। पर टकारा अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष बन कर प० युधिष्ठिर जी का यह कर्तव्य होजाता है कि ऋषि की जिस जिस बात को वे पुष्ट कर सके उस को पुष्ट करें और जो बात उनकी समझ में ऋषि की न आवें उस पर विचार करें। पर टकारा में बैठकर उन बातों की घोषणा नहीं हो सकती कि स्वामी जी के ग्रन्थों में ये भूले हैं। स्वामी जी यह नही जानते थे वह नहीं जानते। जैसा कि प० युधिष्ठिर जी ने टकारा ट्रस्ट के अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष के काल में वेदवाणी में स्वामी जी की भूल परक अपने ऋग्वेद की ऋक्सख्या पक्ष की पुष्टि में लेख लिखा और आज फिर सार्वदेशिक के सितम्बर के अङ्क में जो लेख प० युधिष्ठिर जी का है उस में फिर वही भाषा प० युधिष्ठिर जी ने दुहराई है कि—

न केवल ऋषि दयानन्द अपितु अन्य अनेक महानुभावो से ऋग्गणना में भूलें हुई हैं।

(प० युधिष्ठिर जी का सार्वदेशिक सितम्बर का लेख पृष्ठ ३५८)

मेरी प० युधिष्ठिर जी से यही नम्र प्रार्थना है कि वे टकारा में बैठकर यह भाषा

श्री विद्यानन्द विदेह द्वारा –

आर्यसमाज पर साम्प्रदायिकता का मिथ्या आक्षेप

श्री पं० भवानीलाल भारतीय एम० ए० सिद्धान्त वाचस्पति

अपने 'आर्य समाजोदय' शीर्षक में विदेह जी आर्य समाजों के सुप्रतिष्ठित विद्वानों और नेताओं के विरुद्ध जो विष-वमन कर चुके हैं उसका किंचित् दिग्दर्शन मैंने अपने लेख में दिखलाया है। इसी लेखमाला का २१ वां लेख है—"आर्य समाज का साम्प्रदायिक विकृत स्वरूप"। आज तक यदि आर्य-समाज में किसी को साम्प्रदायिकता के दर्शन हुए हैं तो वे विदेह जी ही हैं। परन्तु स्थाणु का क्या अपराध यदि अन्धा उसे न देखे। आर्य समाज का असाम्प्रदायिक रूप सर्वत्र सूर्य की तरह स्वप्रकाशित है, परन्तु सावन के अन्धे की तरह सर्वत्र हरा ही हरा देखने वाले, या पाण्डु रोग से पीड़ित व्यक्ति की तरह सर्वत्र पीला ही देखने के आदी विदेह जी को यदि आर्य समाज में भी साम्प्रदायिकता ही दीख पड़े तो यह क्या क्षम्य हो सकता है?

आर्य समाज साम्प्रदायिक क्यों है? विदेह जी से कोई पूछो तो वे इसका उत्तर देंगे इसलिये कि आर्य समाजी वैदिक धर्म, महर्षि दयानन्द, भारत माता तथा गौ माता की जय बोलते हैं। इन जयकारों की तुलना विदेह जी "अल्ला हो अकबर" या "हर हर महादेव" जैसे साम्प्रदायिक नारों से करते हैं। उनका यह भी कहना है कि ईसाई प्रचारक तो ईसा मसीह की जय नहीं बोलते। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन काल में कभी अपने गुरु विरजानन्द की जय नहीं बुलवाई, फिर आज आर्यसमाज में ही ये नारे क्यों लगाये जाते हैं। ऐसे निरर्थक आक्षेपों को पढ़ कर हम तो यह निष्कर्ष लगाते हैं कि आक्षेप में बुद्धि का पुट नहीं लगा है, अन्यथा जयकार बोलने या नारा लगाने मात्र से ही न तो कोई संस्था

लिखना छोड़ दें और टकारा ट्रस्ट से जो ग्रन्थ छापे उस में ऐसी लीलाए न हो।

प० युधिष्ठिर जी जिन भूलो को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की मानते हैं (छापे की नहीं) उनको मै लेता हूँ वही प्रधान विचार का विषय है। वह इस प्रकार है प० युधिष्ठिर जी का आक्षेप यह है कि—

१—प्रथम मण्डल की ६५—७० सूक्त की नैमित्तिक द्विपदाओ को ३० चतुष्पदा बनाकर छापना और चतुष्पदा के अनुसार मन्त्रसख्या देना।

२—पञ्चम मण्डल के २४ वे सूक्त की ४ नैमित्तिक द्विपदाओं को २ चतुष्पदा बनाकर छापना और उनपर द्विगुणित (द्विपदा के अनुसार) मन्त्रसंख्या देना।

३—शेष मण्डलों की ७६ नैमित्तिक द्विपदाओं को द्विपदा रूप में छापना। सपादन कला की दृष्टि से यह दोष अक्षम्य है।

(प० युधिष्ठिर जी कृत ऋक्सख्या पृ० ५)

इन तीन बातों पर मौलिक विचार की आवश्यकता है कि यह अक्षम्य अपराध आर्य-समाज अपने गले मढ़ले, या प० युधिष्ठिर जी ही द्विपदाओं को नहीं समझे, या महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी नहीं समझते थे।

साम्प्रदायिक ही हो जाती है और न वैदिक धर्म की जय बुला कर आर्य समाज ही साम्प्रदायिक बन गया है। अपने २४ वें लेख में विदेह जी लिखते हैं कि "आर्यसमाज में यदि धर्म की जय बोलनी ही है तो 'मानव धर्म की जय' बोलनी चाहिये।" इसके लिये हेतु देते हुए विदेह जी कहते हैं कि "यदि हम किताबों के नामपर धर्मोंकी जय का नारा लगाते हैं तो उसके अनुकरण पर ईसाई और मुसलमान भी बाइबिल और कुरानकी जयबोलेंगे।" अत विदेह जी के शब्दों में "वैदिक धर्म की जय" सहित ये सब नारे किताबी और साम्प्रदायिक प्रतीत होते हैं।" 'न्याय' ३ सितम्बर १९६०।

अब हम विदेह जी की वेद निष्ठा और वेद के आधार पर सार्वभौम धर्म की कल्पना के पाखण्ड का पूरा पर्दा फाश कर सकते हैं। अपने आपको ऋषि दयानन्द का सर्वात्मना अनुयायी मानते हुए भी उन्हें यह ज्ञात नहीं कि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में प्रश्नोत्तर रूप में यह स्पष्ट लिखा है कि "यदि तुम से कोई पूछे 'तुम्हारा धर्म क्या है' तो उसको उत्तर दो—वेद" अर्थात् वेद धर्म ही हमारे लिये मान्य और प्रामाण्य है। अत विदेह जी को ज्ञात होना चाहिये कि वेद प्रतिपादित वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार ही महर्षि को इष्ट था। अत वैदिक धर्म के जयघोष का औचित्य स्वत सिद्ध है। विदेह जी के उक्त कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि वे वेद को भी बाइबिल और कुरान के तुल्य ही साम्प्रदायिक ग्रन्थों की श्रेणी का समझते हैं। तभी तो उन्होंने वैदिक धर्म को बाइबिल या कुरान के मानने वालों के तुल्य ही किताबी धर्म कहा है। अब विदेह जी के बारे में क्या हम यही समझें कि वे सेमेटिक मजहबों की इल्हामी पुस्तकों के तुल्य ही वेद को भी वैसी ही इल्हामी किताब मानते हैं या उसे महर्षि दयानन्द के तुल्य ईश्वरीय ज्ञान और हमारे धर्म का मूलाधार स्वीकारते हैं। विनोबा जी ने भी एक बार 'पुस्तक प्रामाण्य' के नाम पर आर्य समाज की आलोचना की थी, विदेह जी की यह आलोचना भी उसी कोटि की है।

आगे चल कर विदेह जी कहते हैं—"धर्म न वैदिक है, न बाइबिलिक और न कुरानिक। धर्म Absolute है।" पता नहीं, यह लिखने की आवश्यकता उन्हें क्यों प्रतीत हुई? परन्तु वैदिक धर्म को भी उन्होंने बाइबिल और कुरान प्रतिपादित धर्म (?) की श्रेणी में रखकर एक अक्षम्य अपराध अवश्य किया है। वैदिक धर्म वही है जो वेद-प्रतिपादित है और वही मानव मात्र का सार्वभौम और सार्वकालिक धर्म है क्योंकि वेद किसी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय या राष्ट्र विशेष की ही सम्पत्ति नहीं हैं, वेद मानव मात्र के लिये हैं अत वैदिक धर्म का जयघोष हम क्यों न करें? इसी प्रकार वेद ने जब विश्व को आर्य बनाने का आदेश दिया है तो उसका अभिप्राय यही है कि वैदिक धर्म का अवलम्बन मनुष्य मात्र करें क्योंकि जब तक विश्व-मानव वेद की शरण में नहीं आयगा, तब तक उसका ध्रुव कल्याण कदापि नहीं हो सकता, यह आर्य समाज और उसके प्रवर्त्तक का निश्चित मत था।

उनके इस तर्क में तो कोई सार नहीं है कि आर्यसमाज भी जयकार लगाने मात्र से ही साम्प्रदायिक बन जाती है। वस्तुत आर्यसमाज मानव मात्र का उपकार करने के लिए वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले लोगों की एक संस्था है। उसका संस्था रूप जब तक हम रक्खेंगे तब तक जयघोष लगाने या ओ३म् ध्वज को अपनाने में कोई हानि नहीं है। आर्य समाज के ओ३म् के ध्वज पर भी विदेह जी को आपत्ति है। वे इसे हनुमान के ध्वज या इस्लाम के ध्वज की ही भांति साम्प्रदायिक नकल मानते हैं। उनके अनुसार ओ३म् के ध्वज का उल्लेख वेदों में कहीं नहीं। प्रथम बात तो यह है कि ध्वज बनाने से या लगाने से ही कोई संस्था

साम्प्रदायिक कैसे हो सकती है। कांग्रेस के अनुयायी महात्मा गांधी की जय, भारत माता की जय के नारे लगाते हैं, कांग्रेस का चर्खा अंकित अपना ध्वज भी, परन्तु कांग्रेस को इसी आधार पर साम्प्रदायिक कहने का साहस तो उसके कट्टर से कट्टर विरोधी को भी नहीं हुआ। फिर केवल ओ३म् का ध्वज स्वीकार करने से ही आर्य समाज साम्प्रदायिक कैसे हो गया? विदेह जी ओ३म् ध्वज के लिए वेद का प्रमाण चाहते हैं परन्तु यह तो वही बात है कि हर बात के लिए वेद के प्रमाण जुटाये जायें। उन्हें शायद यह ज्ञात नहीं कि आर्य समाज प्रत्येक उस बात को प्रमाण मानता है जो वेद के अविरुद्ध है और शिष्टजनों से अनुमोदित हैं। पुराने शास्त्रार्थों की तर्क प्रणाली का अनुसरण करते हुए मैं विदेह जी से यह पूछूं कि वे वेद का कोई प्रमाण दें जिससे यह सिद्ध हो सके कि ओ३म् के ध्वज बनाने का वेद में निषेध है?

विदेह जी कहते हैं कि ओ३म् का ध्वज तो बन ही नहीं सकता, क्योंकि ओ३म् निराकार है। यदि विदेह जी ने सनातनियों के तर्क भी पढ़े होते तो उन्हें यह समझने में देर नहीं लगती कि यद्यपि ओ३म् जिस परमात्मा का वाचक है वह ईश्वर तो निराकार ही है परन्तु ओ३म् शब्द वर्णमाला के जिन 'अ, उ और म' इन तीन वर्णों से बनता है वे वर्ण लिपिकारों के द्वारा साकार कर दिये हैं। फिर उनका यह आक्षेप भी गलत है कि यत ध्वज किन्हीं भावनाओं का प्रतीक होता है अत ओ३म् का ध्वज नहीं बन सकता। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि क्या परमात्मा का प्रमुख और सर्वश्रेष्ठ नाम ओ३म् किन्हीं उदात्त और उच्च भावनाओं को व्यक्त नहीं करता? निश्चय ही करता है। ओ३म् का ध्वज यह बताता है कि इस ध्वज का अनुवर्तन करने वाले सच्चे आस्तिक, ईश्वर भक्त और मानवता के प्रेमी होते हैं। ओ३म् का ध्वज तो मानवमात्र का ध्वज है क्योंकि परमात्मा अखिल मानव जाति का पिता है। ऐसे सार्वभौम और सार्वजनीय ध्वज को अपना कर भी आर्यसमाज को कोई साम्प्रदायिक समझे तो यह हठ ही कहला सकता है।

आर्य समाज को साम्प्रदायिक सिद्ध करने की धुन में विदेह जी एक बात यह भी कहते हैं कि व्यवहार में हम आर्य समाज को 'एक शख्सी' संस्था के रूप में परिणत करते चले जा रहे हैं। उनके कथन का अभिप्राय यह है कि आज आर्यसमाज में स्वामी दयानन्द को भी उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया जा रहा है जिस प्रकार इस्लाम में मुहम्मद को या ईसाइयत में ईसा को। इस कथन में भी हमें सत्यता प्रतीत नहीं होती। क्योंकि मुहम्मद और ईसा ने पैगम्बर का जो स्थान इन मजहबों में ग्रहण किया है वैसा हम कोई स्थान स्वामी जी को नहीं देते। वे हमारे मार्गदर्शक हैं, इस युग में वैदिक धर्म के उद्धारक, त्राता और मन्त्रद्रष्टा हैं, परन्तु उन्हें पृथक् कर देने से भी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों में कोई त्रुटि नहीं आती। उनका लेख और वचन हमारे लिए वेदवत् प्रमाण नहीं अपितु वेदानुकूल होने के कारण ही प्रमाण हैं। साथ ही हम यह भी मानते हैं कि ऋषि दयानन्द धर्म साक्षात्कर्ता मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। अत वेद और धर्म के विषय में उन्होंने जो कुछ कहा है वह आप्त वाक्य होने के कारण पूर्णतः निर्भ्रान्त है।

अब प्रश्न रह जाता है, प्रेस की भूलों को भी दयानन्द के नाम पर स्वीकार कर उनकी साधुता को सिद्ध करने वालों के दृष्टिकोण का, इस विषय में आर्य समाज के विद्वानों में मतभेद अवश्य है। एक ओर आचार्य विश्वश्रवा जैसे विद्वान् हैं जो महर्षि की पंक्ति, वाक्य, शब्द और अक्षर में भी कोई भूल (मुद्रण की भी) स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं, तो दूसरी ओर प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी युधिष्ठिर मीमांसक जी तथा पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय जैसे विद्वान् हैं जो प्रेस की भूलों तथा

लेखक प्रमादजन्य भूलों को संशोधित करने के पक्ष में हैं। अब कौन सी भूल प्रेस की है और कौन सी नहीं, इसका निर्णय कौन करे। यदि टिप्पणी लगा कर ऋषि के ग्रन्थों के संशोधित संस्करण छापें तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। परन्तु यह तो आर्यसमाज के घर का मामला है और वह इसे निपटायगा। विदेह जी की आपत्ति तो दूसरे प्रकार की है। उनका एक संशोधन आर्यसमाज के नियमों के विषय में आया—आर्य समाज के तीसरे नियम में जहाँ यह लिखा है कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। विदेह जी का कथन है कि इसमें इतना और बढ़ा देना चाहिये 'तदनुसार आचरण करना'। अब उनके कथनानुसार 'ध्रुवानन्द मण्डली' ने इस संशोधन के प्रस्ताव के विरुद्ध तूफान बरपा कर दिया और यह कहा कि इन दस नियमों की रचना स्वामी जी के द्वारा ही हुई थी, अत उनमें संशोधन नहीं किया जा सकता। बात सत्य ही है, पता नहीं विदेह जी की समझ में क्यों नहीं आई। आर्य समाज के उप-नियम जो व्यवस्था सम्बन्धी हैं, उनमें परिवर्तन की गुंजाइश रक्खी गई परन्तु नियम जो आर्यसमाज के सिद्धान्त और उद्देश्य हैं, अपरिवर्तनीय हैं। उनमें परिवर्तन करना उस संस्था के मौलिक रूप को बदलना है। निश्चय ही वेद के अनुसार आचरण करना भी नियम बनाने वाले को भी अभीष्ट है, परन्तु न तो नियम में ऐसा उल्लेख करने से ही कोई उस पर आचरण करने लगता है और न उल्लेख न रहने से ही नियम का वैसा अभिप्राय नहीं निकलता। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना जहा स्वामी जी को अभीष्ट था वहाँ उस पर आचरण करना भी था, परन्तु यह स्पष्ट न लिख कर ध्वन्यात्मक (Implied) शैली में लिखा। शब्द शक्तियों का ज्ञान पहले विदेह जी प्राप्त करें, फिर यह ध्वन्यार्थ उन पर स्वत ही स्पष्ट हो जायगा।

इस प्रकार विदेह जी ने आर्य समाज पर जो साम्प्रदायिक होने के आक्षेप किये हैं वे नितान्त निर्मूल हैं तथा लगाने वाले की सकुचित मनोवृत्ति के ही परिचायक हैं। विदेह जी ने इन जयघोष, ध्वज आदि बातों को जो आक्षेप का विषय बनाया है उसका कारण यह भी है कि वे स्वयं अपनी सभाओं में जयकार नहीं लगवाते, यद्यपि उनके निकट सम्पर्क में आये अजमेर निवासी श्री महात्मा गहरालाल जी वानप्रस्थी से लेखक को ज्ञात हुआ है कि यदि 'विद्यानन्द विदेह की जय' बुलवाई जाती है तो इस पर विदेह जी को आपत्ति नहीं होती। अत यह सिद्ध हुआ कि स्वयं स्वामी दयानन्द का स्थानापन्न बनने की कामना रखने वाले तथा ऋषित्व का दावा करने वाले विदेह जी के ये आक्षेप नितान्त वैयक्तिक हैं और उनसे आक्षेपकर्ता के हृदय में जो कुछ है उसका प्रतिबिम्ब सामने आ जाता है। आर्यसमाज के असाम्प्रदायिक रूप पर कोई कालिमा नहीं लगती।

❀

जो उन्नति करना चाहो तो "आर्यसमाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना; अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्य समाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं।

—सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती

राज्य-शासन

(हिन्दू सुपीरियारिटी का धारावाहिक अनुवाद)

अनुवादक—माधवचन्द्र पाठक

[५]

स्वर्ण समिति सभवत टकसाल की व्यवस्था करती थी। समिति के सदस्यो से यह आशा की जाती थी कि विचार के लिए उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले विषयों पर वे पूर्ण ध्यान दें और वाद-विवाद एव विचार मे क्रियात्मक भाग ले। तेलुगु प्रदेश के एक शिला लेख में अकित है कि सभा समितियो मे वक्तृत्व शक्ति एक विशेष योग्यता समझी जाती थी। समिति की सदस्यता पर आयु का प्रतिबन्ध होने के साथ २ उसके लिए शिक्षा और सम्पत्ति की भी योग्यताए निर्धारित थी। बारी २ सदस्य बनने का सिद्धान्त इत्यादि ऐसी बात हैं जिनका अनुकरण अब भी आधुनिक शासक कर सकते हैं।

१—सर्वे रिपोर्ट आव् इण्डिया १९०४-०५ पृ० १३५-१३६

लेख-पत्र का सारांश

राजकीय आज्ञा के अनुसार बनी हुई उत्तिरामेरू के हम सदस्यो ने प्रतिवर्ष वार्षिक समिति, उद्यान समिति और सरोवर समिति के निर्माणार्थ निम्न लिखित व्यवस्था की है।

(१) ३० क्षेत्र होगे।

(२) इन ३० क्षेत्रों में प्रत्येक क्षेत्र के अधिवासी एकत्र होकर वर्तन के टिकटो के लिए किसी का चुनाव करेगे। जिसकी योग्यता निम्न प्रकार होगी—

(अ) उसके पास लगान योग्य कुछ भूमि होनी चाहिये।

(ब) उसके पास अपनी भूमि में बना हुआ मकान होना चाहिए।

(स) उसकी आयु ७० से कम और ३५ वर्ष से अधिक होनी चाहिए।

(द) उसे मन्त्र ब्राह्मण का ज्ञान होना चाहिए जिससे वह अन्यो को पढ़ा सके।

(३) यदि किसी के पास ⅛ बीघा भी भूमि होगी तो उसको वर्तनके टिकट पर अपना नाम लिखाना होगा जो वर्तन में डाला जायगा परन्तु उसे १ वेद और चारो भाष्यो मे से किसी एक भाष्य का ज्ञान होना चाहिये जिससे वह दूसरो को सिखा सके।

(४) इस प्रकार की योग्यता रखने वालों मे से।

(अ) केवल वही चुने जायेगे जो अपेक्षित योग्यता रखते और सदाचारी होगे।

(ब) जिसकी आजीविका ईमानदारी से परिपूर्ण होगी, जिसका मस्तिष्क शुद्ध एवं पवित्र होगा और जो गत ३ वर्षों में किसी समिति का सदस्य न रहा हो वही चुना जा सकेगा। "जो

उसी रिपोर्ट में कहा गया है कि "कोल राजा प्रथम (सन् ९८५ से सन् १०१३) के तंजौर में उपलब्ध शिला लेखों में १५० से अधिक ग्रामो का उल्लेख है जिनका प्रबन्ध समितियों के हाथ में था। उन्हीं शिला लेखों में ४० अन्य ग्रामों का वर्णन है जो सामूहिक

व्यक्ति किसी समिति का सदस्य रहा हो परन्तु जिसने अपना हिसाब प्रस्तुत न किया हो और जिसके किसी सम्बन्धी (रिश्तेदार) (१) पुत्र (२) पिता (३) श्वसुर ने वर्तन के टिकट के लिये अपना नाम अंकित न कराया हो।

इस प्रकार उल्लिखित इन नामों को छोड़ कर तीसों वार्डों (क्षेत्रों) में वर्तन के टिकटों के लिए नाम लिखे जायेंगे और उत्तरामालूर की इन १२ सड़कों का प्रत्येक वार्ड तीसों वार्डों में से प्रत्येक के लिये एक पृथक वर्तनका टिकट तय्यार करेगा। ये पैकेट एक वर्तन में रखे जायेंगे। जब वर्तन के टिकट निकाले जायेंगे तब महासमिति की बैठक बुलाई जायगी जिसमें नए और पुराने सभी सदस्य सम्मलित होंगे। मन्दिरों के सभी पुजारी जो उस दिन ग्राम में विद्यमान होंगे बिना किसी अपवाद के भीतर के हाल में जहा बैठक होगी बिठाए जायेंगे। पुजारियों मे से एक जो सबसे वृद्ध होगा वह बर्तन को ऊंचा उठायगा जिससे कि सभी उपस्थित जन उसे देख सकें। उसके पास एक छोटा सा लडका खड़ा रहता था जिसे वर्तनके भीतरकी वस्तुका ज्ञान न होता था। वह छोटा लड़का एक वार्ड के पैकेट को निकालता था। पुन. उस पैकेट को एक खाली वर्तन में डाल कर वह हिला दिया जाता था। इस वर्तन में से एक टिकट उसी छोटे बच्चेके द्वारा निकाला और मध्यस्थ को दे दिया जाता था। वह मध्यस्थ उस टिकिट को अपनी हथेली पर रखता था और उस समय उसकी पांचों अंगुलियां खुली रहती थी। वह टिकिट पर लिखे नाम को पढ़ता था। हाल के भीतर उपस्थित सभी पुरोहित लोग उस नाम को पढ़ते थे। इस प्रकार वह नाम लिख लिया जाता था और स्वीकृत समझा जाता था। इसी प्रक्रिया के द्वारा तीसों वार्डों के लिए एक ? नाम चुन लिया जाता था। इस प्रकार से चुने हुए पुरुषों में से १२ और जो पहले उद्यान समितियों एवं सरोवर समितियों के सदस्य रहे हों जो बड़ी आयु के हों और विद्वान हों, वार्षिक समितियों के सदस्य चुन लिए जाते थे। शेष १२ और ६ सदस्य क्रमश प्रधान एव सरोवर समितियों के सदस्य मनोनीत कर लिए जाते थे। इन तीनो समितियों के सदस्यों का पदकाल १ वर्ष तक रहता था। समिति का कोई सदस्य जब कोई अपराध करता था तो वह तत्काल सदस्यता से पृथक कर दिया जाता था। सदस्यों के अवकाश प्राप्त कर लेने पर समितियों की नियुक्ति के लिए न्याय विभाग की समितियों के सदस्य किसी मध्यस्थ की सहायता से वार्षिक सभा की बैठक बुलाते थे। वर्तनमें टिकिट डलवाने की प्रक्रिया के द्वारा समितियां नियुक्त कर दी जाती थी। तीसों वार्डों में स्वर्ण समिति और पकावरा समिति के लिये नाम लिख लिए जाते थे। तीस पैकेट एक वर्तन में डाल दिए जाते थे और उपर्युक्त प्रणाली से तीस

रूप से अपना प्रबन्ध स्वय करते थे। यह प्रणाली अन्य सहस्रों ग्रामों में प्रचलित रही होगी जिनके नाम और वास्तविक सख्या भावी अनुसधानो से ज्ञात होनी अवशिष्ट रहेगी। दक्षिण भारत में ग्राम समितियो का सगठन कब और किन परिस्थितियो में होना आरम्भ हुआ यह अज्ञात है। परन्तु यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने तत्कालीन भारतीय प्रशासन विषयक अपने वर्णन में ५ सदस्यो से निर्मित ६ कमेटियो का उल्लेख किया है। अत इस वर्णन के आधार पर यह माना जा सकता है कि आर्यों की शासन-प्रणाली से यह प्रथा दक्षिण भारत में पहुंची और दक्षिण की अव-

स्थाओं के अनुरूप बनाने के लिये उसमें थोडा बहुत परिवर्तन हुआ हो। ग्रामों की महा समितियों की उपसमितियों की सख्या सर्वत्र एक समान रही प्रतीत नही होती। उनकी सख्या के निर्धारण पर स्थानीय अवस्थाओ का अत्यधिक प्रभाव पडा प्रतीत होता है। परिशिष्ट लेख पत्रों में ५ समितियो की व्यवस्था मिलती है—(१) वार्षिक समिति (२) उद्यान समिति (३) सरोवर समिति (४) स्वर्ण समिति (५) पनकैवरा समिति। छठी अर्थात् न्याय समिति का भी उल्लेख है। परन्तु यह पता नही लगता कि यह समिति स्वतत्र समिति थी वा उपर्युक्त पाचों समितियों जैसी ही थी। उत्तर अर्काट

व्यक्ति लिये जाते थे। इन तीसमें से १२ सदस्य जाते थे और ६-६ सदस्यों से स्वर्ण समिति और पकावरा समिति निर्मित कर दी जाती थी। जब दूसरे वर्ष इन दो समितियों के लिये सदस्यों का चुनाव होता था तो इन समितियों में से जिन वार्डों का वर्ष भर प्रतिनिधित्व रहता था वे चुनाव में सम्मिलित न किये जाते थे और शेष वार्डों में से सदस्य चुन लिये जाते थे। जो व्यक्ति गदहे पर सवारी करता था वा जिसने जालसाजी की होती थी वह चुनाव के अयोग्य मान लिया जाता था। सत्साधनों से जीविका चलाने वाला व्यक्ति मध्यस्थ बनाया जाता था और उसीसे ग्राम का हिसाब लिखाया जाता था। जब तक लेखा रखने वाला व्यक्ति अपना हिसाब प्रस्तुत न कर देता था और उसके ईमानदार होने की घोषणा न हो जाती थी तब तक उसे पुन: लेखा रखने का कार्य न सौंपा जाता था। जो व्यक्ति लेखा रखता था वही

स्वय हिसाब प्रस्तुत करता था। इस प्रकार जब तक सूर्य और चन्द्र स्थिर रहेंगे वर्तनके टिकिटों द्वारा समितियों की नियुक्ति का कार्य चालू रहेगा। ऐसी आज्ञा राजा से प्राप्त होती थी जो विद्वानों का प्रेमी तथा महा गुणवान एव बलवान होता था। राजाज्ञा के द्वारा कोल प्रदेश के पूर्व ग्राम में वैनडु नायक जिलान्तर्गत श्री विगानकार ग्राम के कारजई कोन्डया कर्म-वित्तभट्टन महोदय ने हमारे साथ बैठकर ऐसी व्यवस्था कराई। उत्तरामेरु की समिति के हम सदस्यों ने अपने ग्राम की सुख-समृद्धि के लिये यह व्यवस्था की है जिससे दुष्टों का विनाश हो और शेष जन सुखसे रहें। समितिके महा-पुरुषों की आज्ञा से मैं (शिवकुरी मध्यस्थ) ने यह व्यवस्था पत्र लिखा है। (आरकौलौजिकल सर्वे आव इन्डिया वार्षिक रिपोर्ट १९०४-१९०५ पृ० १४२-१४५)

जिले के तिरुपरकादल स्थान में उपलब्ध शिला लेखों से ५ अन्य समितियों के नाम भी ज्ञात हुए हैं। मुहल्ला समिति के महापुरुष 'कृषि समिति के महापुरुष' ग्राम समिति के महापुरुष, उदासीन समिति के महापुरुष' २०० महापुरुष (शिला लेखों पर वार्षिकरिपोर्ट १६०४-०५ भाग २ पैरा ७)

आर्य संस्कृति का उदार स्वरूप इस बात से स्पष्ट है कि आर्यों के उपनिवेशो एवं अधीनस्थ प्रदेशों को मातृ देशों जैसा ही संविधान प्राप्त रहता था। श्रीयुत स्टैम फोर्ड रफीज (Stamford Raffes) जावा के पूर्व में स्थित बाली द्वीपके विषयमें कहते हैं 'इस द्वीप में आर्यों के नगर प्रशासन के प्राचीन स्वरूप के साथ २ ब्राह्मण धर्म अब भी सुरक्षित है।"※

राजनीति, शासन और कूटनीति विषयक आर्यों के ग्रन्थों से(यद्यपि कुछ ग्रन्थ इन दिनों भी अप्राप्त हैं) यह बात भली भांति प्रमाणित है कि उन दिनों राजनीतिक विचारधारा अत्यधिक उन्नत और विकसित थी। इनमें से कुछ ग्रन्थों का फारसी में और फारसी से योरुप की भाषाओं में अनुवाद किया गयाथा। अबू सब्हाद (Abu S3bhhad) ने ११५० में राजनीति का फारसी भाषा में अनुवाद कराया था।

न्याय प्रिय नौशेरवां बादशाह के सुप्रसिद्ध मन्त्री बजर चमेहर (Buzar Chamehar) ने राजनीति की शिक्षा और दीक्षा भारत में ही प्राप्त की।

न्याय-विधान सुशासन की कसौटी होती है। न्याय विधान विषयक आर्यों के महान् ग्रन्थ की युक्ति युक्तता और उसकी अकृत्रिमता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता। यह ग्रथ अत्यन्त सरल है इसलिये इससे प्रजा की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। इसमें अ कित व्यवस्थाएं प्रति सप्ताह नहीं बदलती इस पर भी यह ग्रंथ हिन्दू समाज की भिन्न २ प्रकार की परिस्थितियो के अनुकूल है। श्रीयुत डबल्यू जोन्स कहते हैं※। यद्यपि मनु के विधिविधान सोलन (Solon) वा लार्ड कर्जस (Lycurgus)से बहुत पुराने हैं तथापि लेखबद्ध किये जाने से बहुत पूर्व जब मिश्र और भारत में सर्व प्रथम राज्य शासन स्थापित हुए थे तब ही उनका निर्माण हो गया था।"

अंग्रेजों ने रोम निवासियों से अपने विधिविधान का आधार प्राप्त किया था और रोम निवासियो को अपने विधिविधान यूनान से उपलब्ध हुये थे। यूनान के निवासियों ने भारतवर्ष के विधिविधान के आधार पर ही अपने विधिविधान बनाये थे। श्री डबल्यू जोन्स पुन कहते हैं+ "यद्यपि बहुत सम्भवतः मनु महाराज, क्रीट न गये थे तथापि उनकी कुछ व्यवस्थायें उस द्वीप में व्यवहृत होती थीं लार्ड कर्जस ने एक या दो शताब्दियों के पश्चात् उन

※ जावा का वर्णन वाल्यूम २ परिशिष्ट पृ०२३७ मनुस्मृति के कुछ वाक्यों को उद्धृत करने के पश्चात कर्नल ब्रिग कहते हैं। इन वाक्यों से हमें स्थानीय प्रशासन की सुव्यवस्थित प्रणाली का पर्य्याप्त प्रमाण मिल जाता है।" (ब्रिग कृत भारत में भूमि का कर पुस्तक पृ० २४)

※हिन्दू-विधिविधान विषयक हाटन की इन्सटीट्यूट भूमिका पृ० १०

+उपर्युक्त पुस्तक पृ० १२

व्यवस्थाओं को स्पार्टा में प्रचलित किया था।"

'बाइबिल इन इण्डिया' में बताया गया है कि मिश्र, फारस यूनान और रोम के न्याय विधानों की आधारशिला मनुस्मृति पर ही रखी गई थी। इतना ही नहीं आज भी समस्त योरुप में मनु का प्रभाव प्रतिदिन दृष्टिगोचर होता है।

प्रो० विल्सन कहते हैं[1]। "आर्यों के पास ऐसा न्याय-विधान था जिसकी सगति विविध प्रकार के ऐसे अनेक सामाजिक सम्बन्धों के साथ बिठाई गई थी जो एक मात्र उन्नत और विकसित समाज व्यवस्था में ही पाए जा सकते हैं।"

कोल मैन[2] कहते है "मनु की शैली में एक विशेष प्रकार की आभा है जिसकी भाषा न्याय विधान की भाषा का पुट लिये हुए है और जिसके प्रति भय मिश्रित आदर भावना उत्पन्न हुए बिना नही रह सकती। परमात्मा के अतिरिक्त समस्त प्राणियों की स्वतन्त्रता तथा राजाओं तक के लिए कठोर अनुशासन के जो भाव इस ग्रंथ (मनुस्मृति) में व्यक्त किए गए हैं वे वस्तुत उच्च और प्रशसनीय हैं।"

डा० राबर्ट सन कहते हैं[3] आर्य धर्मशास्त्र मनुस्मृति) मे जितनी सूक्ष्मता से विविध विषयों का विवेचन किया गया है उसकी तुलना अत्यन्त सभ्य और उन्नत देशों की न्याय प्रणाली के साथ की जा सकती है। मनुस्मृति की विषयानुक्रमणिका का क्रम स्वाभाविक और आभापूर्ण है। उसमें वर्णित विषय विविध और सर्वाङ्ग पूर्ण हैं। उनका विवेचन उसी सावधानता और कुशलता से किया गया है जो बुद्धि की प्रखरता और सूक्ष्म विवेचन शक्ति से सम्पन्न न्याय विषयक सूक्ष्मताओं से भिज्ञ और चिरकाल पर्य्यन्त उत्तम और विशद न्याय प्रणाली से प्रशासित लोगों के लिये स्वाभाविक है। प्रत्येक विषय से सम्बद्ध निर्णय न्याय के महान् एवं अकाट्य सिद्धान्तों पर आश्रित हैं जिन्हें मानवी मस्तिष्क प्रत्येक युग और प्रत्येक भूभाग में अगीकार करता है। जो कोई भी समस्त ग्रंथ का भली भांति परिशीलन करेगा उसे असदिग्ध रूप से यह आभास मिलेगा कि इस ग्रंथ में व्यवहार कुशल एव अत्यन्त उन्नत लोगों की न्याय व्यवस्था अंकित है। इस ग्रंथके किसी अध्याय विशेष को पढकर और उसके सांगोपांग उत्तम विवेचन को देखकर आश्चर्य होता है कहीं २ तो यह विवेचन इतना अद्‌भुत है और ऐसा लगता है मानों योरुप् के विचारकों का ध्यान उसकी ओर गया ही नहीं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कुछ विधान जो अत्यन्त श्रेष्ठ हैं सुदूर अतीत काल मे निर्मित हुए थे।"

श्रीयुत मिल महोदय कहते हैं "आर्यों के न्याय-विधान का विभाजन और क्रम दोनों ही असंगत है और उनसे राष्ट्र की अबंरता का परिचय मिलता है।" इस पर आलोचना करते हुए प्रो० विल्सन अपनी सहज स्पष्टता के साथ कहते हैं। "इस कसौटी पर आर्यों को परखने का प्रयत्न करने से तो आर्य्य लोगों को अग्रेजों की अपेक्षा अधिक

---

१ मिलकृत भारत वी० २ पृ० २९२

२ कोल मैन कृत माइथालोजी आव् हिन्दूज पृ० ८

३ डिस्क्वीजीशन कसर्रनिंग इण्डिया परि० पृ० २१७

संस्कृत और सभ्य माना जायगा।" ॐ

श्रीयुत मिल ने आर्यों के धर्म और विधि विधान की जो आलोचना की है वह उनके विद्वेष, उनकी अज्ञानता और उनकी मूर्खता का ज्वलन्त नमूना है। श्रीयुत प्रो० विल्सन ने मिल कृत भारत के इतिहास का संपादन किया था। उनके निम्न लिखित शब्द ध्यान देने योग्य है।

"आर्यों के धर्म और उनके विधि विधानों का सम्पूर्ण विवेचन त्रुटि पूर्ण है जिसका कारण घोर-पक्षपात और अपूर्ण ज्ञान ही है।"+

भारत के सम्बन्ध में लिखी गई समस्त पुस्तको में सबसें भयकर इस पुस्तक के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए प्रो० विल्सन कहते हैं–'आर्यों की उच्च सभ्यता जिसके विषय में कभी २ अतिशयोक्ति से भी काम लिया जाता है, उनकी विद्वत्ता, उनके ज्ञान विज्ञान उनकी प्रतिभा और उनके सद्गुणों आदि से चिढ़कर श्रीयुत मिल महोदय ने उसी उत्साह से उनकी निंदा की जिस उत्साह से सर विलियम जोन्स ने उनकी प्रशंसा की है। दोनों के उत्साह में तो समानता है परन्तु उद्देश्यों में विभिन्नता है। श्रीयुत मिल का उद्देश्य प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। अधूरे ज्ञान एवं अत्यधिक त्रुटिपूर्ण सामग्री को आधार बनाकर और आर्यों के विरोध में लिखे गए साहित्य पर पूर्ण विश्वास करके श्रीयुत मिल ने आर्यों के जिस चित्र का चित्रण किया है उसकी वास्तविक चित्र से कोई संगति नहीं बैठती। उस चित्र से तो मानवता का घोर अपमान ही होता है।"

मिलकृत "ब्रिटिश भारत के इतिहास" के सम्बन्ध में मैक्समूलर कहते हैं–

"जिस पुस्तक को मैं सबसे अधिक धूर्तता पूर्ण मानता हूँ और जो भारत में घटित कई अत्यन्त दुर्भाग्य पूर्ण घटनाओं के लिए उत्तर दाता है, वह मिल कृत भारत का इतिहास है भले ही प्रो० विल्सन की टिप्पणियों के द्वारा उसके विषैले प्रभाव को कम करने का शुभ प्रयास किया गया है। प्रो० विल्सन कहते हैं–'इस पुस्तक की प्रवृत्ति दुष्टतापूर्ण है।"ॐ

यह कहना कि जूरी की प्रणाली भारत में बाहर से आई, भारतीय न्याय व्यवस्था के प्रति अपनी घोर अनभिज्ञता प्रकट करना है। सैक्रेड बुक्स आव दी ईस्ट सीरीज वा० २५ (Sacred Books of the East Series Vol 25) में जिसका अनुवाद डा० जी बुहलर ने और संपादन श्री मोक्षमूलर महोदय ने किया है, मनुस्मृति का विवेचन किया गया है। अध्याय ८ में न्याय व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इस अध्याय के प्रथम भाग में वर्णित है कि अभियोगों का निर्णय करने की इच्छा रखने वाला राजा नीति में पारंगत ब्राह्मणों और अनुभवी मन्त्रियों के साथ सभा में जाय।

ॐ—मिल कृत भारत का इतिहास वॉ० २ पृ० २२४-२२५

+ मिल कृत भारत का इतिहास वा० २ पृ० ४३६ (नोट)

ॐ मोक्षमूलर कृत-'भारत'–वह हमें क्या सिखा सकता है पृ० ४२ इंडिया व्हॉट कैन इट टीच अस"

१० वे भाग में बताया गया है 'विद्वान ब्राह्मण राजा की अनुपस्थिति में अत्यन्त भव्य न्यायालय में कम से कम ३ सभ्य पुरुषों के साथ प्रवेश करे।"

जिस देश में वेदो के जानने वाले ३ ब्राह्मण राजद्वार में रहते हैं और राजा द्वारा नियुक्त १ विद्वान ब्राह्मण रहता है उसे ब्रह्मा की सभा मानते हैं।

१२ वे अध्याय के ११० वे श्लोक में कहा गया है—'ब्रह्मचर्य्यादि से युक्त धर्म्मपूर्वक जिन्होने षड्ङ्गादि सहित वेद पढ़ा है वे श्रुति के प्रत्यक्ष करने वाले लोग शिष्ट ब्राह्मण जानने चाहिए। दश भी श्रेष्ठ ब्राह्मण जिस धर्म्म को कहें वा उनके अभाव में सदाचारी ३भी कहें उस धर्म्म को न लाघे।"

मिल महोदय के निष्कर्षो पर विचार करते हुए प्रो० विल्सन पुन कहते हैं—"इस सिद्धान्त के अनुसार (अंग्रेजी न्यायालयों के जटिल कार्य क्रम की व्याख्या में मिल महोदय का सिद्धान्त निहित है) न्यायाधीश के भ्रष्टाचारी होने में न्याय की सर्वोत्कृष्ट सुरक्षा सन्निहित रहती है इस सिद्धान्त का क्रियान्वित होना भयावह सिद्ध हो सकता है।"✻

मद्रास के चीफ जस्टिस स्व० सर थामस

✻ –मिलकृत भारत का इतिहास वा० २ पृ० ५१२--मिल कहते हैं कि 'यत: आर्य्य जन बधक रखकर ऋण देते हैं अत: वे वर्बर है" इस पर प्रो० विल्सन कहते हैं, बधक रखकर ऋण देना वर्बरता की स्थिति का प्रमाण मान लेना कठिन है। इससे तो रहन रखकर ऋण देने वाले लदन के बहुसख्यक लोग सभ्यता की तुला में पूरे न उतरेगे। 'मिल कहते हैं' मुसलमानों का विधान आर्य्यों के विधान की तुलना में उच्च और श्रेष्ठ है।" विल्सन महोदय इस आक्षेप का उत्तर देते हुए कहते है, मुसलमानो के पट्टे और दाय भाग के नियम आर्यों के नियमों जैसे सर्वांगपूर्ण नही है।, 'मुसलमानों के विधान में सन्निहित वर्बरतापूर्ण प्रतिशोध की भावना से आर्य्यों का न्याय विधान रहित है।' मिल यह समझते हैं कि आर्य्यों के न्याय विधान के अनुसार मिथ्या साक्षी देना एक गुण हैं परन्तु विल्सन स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करके दिखाते हैं कि यह मिल महोदय की विकृत कल्पना की उपज है।

यह भी आपत्ति की जाती है कि आर्य्यों के विधान में अनेक अनिश्चित बातें पाई जाती हैं। प्रो० विल्सन (निबंध वो० ३ पृ० ५) बताते हैं कि यदि अंग्रेजी विधान की अनिश्चित बातें आर्यों के विधान की अपेक्षा कम जटिल हैं, तो इसके (अंग्रेजी विधान) अधीन अभियोगो के भुगतान में जो विलम्ब होता है वह अनन्तता का रूप लिए होता है। अभियोग का निर्णय होने तक बहुत समय व्यतीत हो जाता है इस कारण कुचक्र, भ्रष्टाचार और दबाव-प्रभाव की प्रक्रियाओं के लिए बहुत समय उपलब्ध हो जाता है। इस सम्बन्ध में उदाहरण का प्रस्तुत किया जाना अनावश्यक है क्योकि ये घटनाएं सार्वजनिक चर्चा और निंदा का विषय बन चुकी हैं। प्रो० विल्सन आक्षेप का उत्तर देते हुए लिखते हैं—"लोगों का कहना है कि आर्य्यों के विधान की प्रक्रिया में पंडितों का मतैक्य नही होता। परन्तु वीरपरमाह पिल्लै बनाम नारायण पिल्लै अभियोग में दो अंग्रेज जजों की सम्मति को देखो। बंगाल के चीफ जस्टिस का कहना है कि मद्रास के चीफ जस्टिस ने जिस परिश्रम से निर्णय दिया उससे उसका अनुसरण करने वाले पथ-भ्रष्ट हो जायेंगे। इस निर्णय में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया वह कानून सम्मत नही है। बंगाल के चीफ जस्टिस का कथन है, यदि अनैतिक कार्यों के उपयोगी परिणाम होते हों तो हम उनकी उपेक्षा कर सकते हैं।"

दयानन्द की देन

श्री विश्वबन्धु शास्त्री एम ए, एम ओ एल, (प), ओ डी ए (फ्रा) के टी सी टी (इट.)

जो सगति करने योग्य, साधु-स्वभाव सज्जन हो, उसे ही आर्य समझना चाहिये। जो इसके विपरीत, लोकद्वेषी, अत्याचारी, कूट, छल तथा दम्भ से युक्त और अन्याय से दूषित होता है, सब प्रजाये दुखी होकर उससे घृणा करती हैं। वह न ईश्वर-भक्त है और न लोक-भक्त। वह नास्तिक, अनार्य है। उसका जीवन धारण करना पृथ्वी माता के ऊपर दुस्सह भार है। न वह अपना सुधार करता है और न उस मन्द-मति, हतभाग्य से किसी और का लाभ होता है। जब वह लोक-परलोक-घातक शरीर छोड़ता है, तो न कोई रोता है, न ही उसके प्रति तनिक आदर का प्रकाश करता है। उसके मुर्दे पर कोई मित्र फूल नही चढाता और न दो आंसू बहाता है। पृथ्वी अपने आपको हलका अनुभव करती है। सच्चा आर्य ससार में प्रवेश करता है तो सब लोगो के समान रोता हुआ ही आता है। चारों ओर बैठे हुए, हसते हुए, सम्बन्धियों की हसी भी उसे हसाने में असमर्थ होती है। परन्तु जब वही कर्मवीर बन कर शनै शनै अपनी जीवन–नौका को भवसागर से पार करता हुआ, अपने जनों पर अन्तिम

स्टेरज आर्यों के साक्षी विषयक विधान के सम्बन्ध में कहते हैं---"प्रत्येक अग्रेज वकील द्वारा यह विधान आश्चर्य एव हर्ष मिश्रित आदर के साथ पढ़ा जायगा, क्योंकि इस अध्ययन से उसे लाभ ही होगा।"

एशियाटिक जरनल (पृ० १४) में लिखते हुए एक लेखक कहता है–'ध्यान और परिश्रम तथा उपेक्षा एव त्रुटि के समस्त आवश्यक पार्श्वों का आर्य्यों के प्रतिभू (जमानत) के विधान में बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इस प्रकार का सूक्ष्म एव साङ्गोपांग विवेचन न तो योरूप के सभ्यतम राष्ट्रों में से किसी राष्ट्र की न्याय व्यवस्था और न उसके न्याय के ग्रन्थों में ही अधिक तर्क संगत एव ठीक रूप में लिखा हुआ उपलब्ध होता है।

इस विवेचन को पढ़कर कोई व्यक्ति यह कहे बिना न रह सकेगा 'आर्य्यों के न्याय विधान में बर्बरता का लेश भी नही है।'

कुल्लूक की मनुस्मृति की टीका के सम्बन्ध में श्री डब्ल्यू जोन्स कहते हैं–"यह टीका सबसे छोटी है फिर भी अत्यन्त श्रेष्ठ है, यह अकृत्रिम है फिर भी अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है। यह गभीरतम है फिर भी मनोरजक है और ऐसी टीका है जिसकी टक्कर की अन्य किसी ग्रन्थकार के ग्रथ पर की हुई टीका नहीं मिलती चाहे वह ग्रन्थकार प्राचीन हो या नवीन हों, एशिया का निवासी हो या योरुप का।*

*

* होगटनस कृत इन्स्टीट्यूट्स आव हिन्दू ला, की भूमिका पृ० १८ (Institutes of Hindu Law.)

दृष्टि फेरता है तो उन्हें रोता हुआ पाता है, और उसके अपने होठो से मुसक्यान की मधुरता और नेत्रों से सतोष और प्रभु-विश्वास की शांति बरसती है। यह है, सक्षेप से, आर्य-जीवन का तात्पर्य।

प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा ऐसा शुद्ध, पवित्र तथा बलिष्ठ जीवन धारण करने का सामर्थ्य दे रहे हैं, परन्तु इस शक्ति का विकास सबमें एक समान नहीं पाया जाता। हमारे पूर्वज आत्मिक बल के धनी होते थे। इसका प्रभाव उनकी समग्र रीति-नीति पर दिखाई देता था, जहा व्यक्ति समर्थ होता है, वहां जातीय जीवन भी सुगठित और दृढ हो जाता है इस कारण से उस समय भारतीय जनता के नेताओं में विचित्र चुम्बक शक्ति का विकास हो रहा था। सारी जाति सम्पर्क मात्र से दूसरों को अपने रग में रग लेती थी। सहस्रों लोग विदेस से आकर हममें क्षीर-नीर-न्याय से एक रूप हो गए। कालचक्र से विचारों में भेद पैदा हुआ जातीय अभिमान तथा कुलाभिमान बढ़ता बढ़ता ऊच और नीच का मूल कारण बना। अपने आपको हम सर्वश्रेष्ठ समझ कर दूसरों से परे रहने लगे। शनै शनै हमने अपने विस्तार-चक्र को इतना अन्दर खींच लिया, कि कोई विजातीय अ श अब हमारा अ ग नही बन सकता था। सार्वभौम भाव इतना बड़से उखड़ा कि अब हम तनिक अपराध को भी सहन करने में असमर्थ हो गए। अपने अ गोंको भी अस्पृश्य कह कर अपने से परे हटाने लगे। अपने देश, नहीं नहीं समय आया, जब हमने ग्राम से और घेर से बाहर पग धरने मात्र से अशुद्ध हो जाने का भ्रम पैदा किया। प्रभु की लीला विचित्र है। जहां आत्मिक विस्तार की कोई सीमा नहीं वहां सकोच की भी कोई अवधि नही।

ससार में जितने मत हैं, उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वे, जो कपडे फाड-फाड कर फैलना चाहते हैं, जैसे बौद्ध, ईसाई तथा इस्लामी मत। दूसरे वे, जो अपनी काल्पनिक पवित्रता के नाश हो जाने के भयसे दूसरो से बच बच कर ही रहने में भलाई समझते हैं,जैसे यहूदी,पारसी तथा हिन्दू लोग। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जावे, तो पता चलता है कि इन दूसरे प्रकार के लोगो के सकोचात्मक स्वभाव से ही प्रथम प्रकार के मतो की उत्पत्ति हुई है। सामयिक हिन्दू मत के अन्दर, सामयिक विषमता से उपजे हुए अन्याय तथा अत्याचार के भाव ने ही राजकुमार गौतम बुद्ध के हृदय को ठेस पहुचाई। वे दबे हुए शूद्रों की ओर दया दृष्टि से युक्त हो गए और बौद्ध-धर्म को सार्वजनिक बना कर, समस्त भू-मण्डल में प्रचार पाने योग्य कर दिया। कुछ बौद्ध प्रभाव से प्रभावित होकर और कुछ अपने यहूदी भाइयो के सकोच से उत्तेजित होकर सैण्ट पाल ने ईसा के उपदेश को सब मनुष्य मात्र के लिये निश्चित किया।

यही नियम आज भी कार्य करता हुआ दिखाई देता है। गुरु नानक देव का सिक्ख सप्रदाय, यद्यपि विशेष रीति से दूसरे लोगों में नहीं फैला, तो भी मौलिक रूप से सब मनुष्यों को भक्ति का समान अधिकार देता है। उन्नीसवी शताब्दी में हिन्दुओं के अन्दर इस सकोच को दूर करने के लिये कई साधन प्रकट हुए। पश्चिमी साम्राज्य के साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता का भारत में प्रवेश हुआ। परमात्मा ने पाश्चात्य लोगों को ऐश्वर्य और प्रकाश दोनों दिये थे। भारतीय दीन, हीन प्रजा

चकाचौंध होकर, अन्धाधुन्ध अनुकरण करने लगी। बड़े तीव्र वेग से लोग साहिब लोगों से भेंट करते, जाति बहिष्कृत होते और अपने प्राचीन धर्म से पतित हो जाते थे। इस बाढ़ को रोकने के लिए और परस्पर मेल-मिलाप को धार्मिकरूप देकर व्यवस्थित करने के लिये, बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना हुई। इसी प्रकार पीछे प्रार्थना समाज और थियासोफिकल सोसायटी की रचना हुई तथा और भी छोटे-मोटे कई दल पैदा हुये।

परन्तु सब से प्रबल और सबसे भिन्न प्रकार का कार्य स्वामी दयानन्दजी ने किया। उन्होने तीव्र योग-चक्षु से भारतीय जनता के रोग की परीक्षा की। उन्होंने देखा और अनुभव किया कि यह रोगी चिरकाल से शैय्या पर लेटे रहने के कारण, निरुत्साह और निश्चेतन सा हो गया है। पाचन-शक्ति के दुर्बल हो जाने से इसकी नस-नाड़ियों मे विजातीय द्रव्य का दबाव पड़ रहा है। इसके मन्द-गति रुधिर-प्रवाह में, उसे बाहर फेंकने का सामर्थ्य दिखाई नहीं देता। प्रथम तो नया द्रव्य इसके भीतर घुस नही सकता, और यदि दैव-वशात् कभी चला भी जाता है, तो मन्दाग्नि के कारण ठीक न पच कर विष-रूप हो जाता है। इसलिए अन्दर सड़ांध पैदा हो रही है और अब यह अपने आपको ही खाये जा रहा है। अ ग-प्रत्यग सभी दुख रहे हैं। बस, हैरानी तो यह है कि रोगी अब तक मरा क्यों नही ?

वैद्यराज दयानन्द ने उक्त रोगी के एक-एक अङ्ग का ठीक प्रकार से निरीक्षण करके उसके जीवन-केन्द्र को दृढ़ करने का निश्चय किया।

स्वामी दयानन्द जी ने अनुभव किया कि हम भारतीय लोग निस्तेज और निःसत्व हो रहे हैं। नित्य सकुचित होते चले जाने से हमें अब बाह्य विस्तार करना सर्वथा अपने स्वभाव के विरुद्ध प्रतीत होता है। छुआछूत और ऊंच-नीच के प्रचार के कारण, हमारे जोड़ ढीले पड़ चुके हैं इस दुर्बलता को दूर करने के लिये श्री स्वामीजी ने वेद-माता का दूध हमको पिलाया, हमारे पूर्वजो का भानु के समान उज्ज्वल इतिहास हमारे सम्मुख रखा। कितना ही कोई हीन-सत्व क्यों न हो, उसे यह विश्वास करा दो कि तुम बड़े शूर-वीर हो, बस वह उठ खड़ा होता है। भारतीय जाति तो वस्तुत सिंह-समान पराक्रमी थी। इसको कुम्भकर्णी निद्रा के खुर्राटों को ही तोड़ना अपेक्षित था। किसी भी जाति के पुनरुत्थान का सर्वोत्कृष्ट उपाय उसे अपना पूर्व उज्ज्वल मुख इतिहास के दर्पण में दिखाना ही होता है। श्री स्वामीजी ने इस रहस्य का खूब मनन किया और बड़ा सुन्दर प्रयोग किया। उनके द्वारा किये गये धर्म-प्रचार के कारण, समस्त जाति के विचार तथा व्यवहार में अन्तर पड़ा। एक बार तो उनके जीवन काल में ही यों प्रतीत होता था कि वे बड़े विशाल, जगद्-व्यापी भूकम्प के केन्द्र बन रहे हैं। कोई होगा, जो उस समय न हिल गया हो। सहस्रों नर-नारी उनके उपदेशों के अमृत प्रवाह में स्नान करके शुद्ध हो रहे थे। यद्यपि सारा देश उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज में सम्मिलित नहीं हुआ, तथापि भारतीय मस्तक खुले विचारों को ग्रहण कर चुका है। दक्षिण, महाराष्ट्र तथा बंगाल के विद्वानों की लेखनी, यदि उनके आर्य समाजी न होते हुये भी, प्राचीन भारत के गीत गाती और ऋषि-मुनियों के यश का बखान करती है, तो इसे श्री स्वामी जी का ही छिपा हुआ आन्तरिक प्रभाव प्रकट होता हुआ समझिये। दूसरे शब्दों में भारतीय अन्तरात्मा आज उनके चरणों में झुक चुका है।

गीता क्या है ?

महोपदेशक श्री मंगलदेव शास्त्री, हैदराबाद

कितने ही विद्वानों की धारणा है कि गीता-ज्ञान शास्त्र है और हमें भी इस धारणा की उपेक्षा करने की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि गीता में ज्ञान का निषेध कौन कर सकता है ? परन्तु ज्ञान का कौन सा वस्तु स्वरूप गीता में कहा है ?

कितने ही कहते हैं कि गीता-कर्म-योग-शास्त्र है। इसके उदाहरण स्वरूप वे अर्जुन को प्रस्तुत करके कहते हैं कि अर्जुन ने युद्ध किया है, लंगोटी लगाकर उसने संन्यास नहीं लिया।

कितने ही कहते हैं कि गीता न तो कर्म-योग है न ज्ञान योग, वह तो भक्ति-शास्त्र (योग) है। कितने ही (साम्यवादी) कहते हैं कि गीता न कर्म-योग न ज्ञान और भक्ति योग है, उसमें तो साम्यवाद ही दीख पड़ता है। उनका कहना है कि यदि ऐसा न होता तो-"शुनिचैवश्वपाके च पंडिता समदर्शिन" "समत्वं योग उच्यते" "इहैवतैर्जित सर्गोयेषां साम्येस्थितं मन" इत्यादि वाक्य क्यों कहे जाते ? इनका अर्थ ही "साम्यवाद" है। क्या मैं उक्त वचनों के सम्बन्ध में कह सकता हूं कि इनमें साम्यवाद नहीं है ? इसी प्रकार न मैं ज्ञान का न कर्म का और न भक्ति का निषेध कर सकता हूँ। गीता में यह सब कुछ है। सब कुछ रहते हुए भी गीता का तात्पर्य किसी एक पर ही है। प्राय यह देखा गया है कि वक्ता लोग कहनेको सब कुछ कहते हैं किन्तु उनका अभिप्राय किसी एक विषय का ही प्रतिपादन करना होता है। उनके हृदय की भावना केवल अपने उसी विषय को व्यक्त करने की होती है। अतएव शास्त्रकारों ने वक्ता के तात्पर्य को निकालने के लिए कुछ उपाय खोज निकाले हैं —

उपाय

उपक्रमोपसंहारावभ्यासो पूर्वताफले, अर्थवादो-पपत्तिश्च, लिंगतात्पर्यनिर्णये।

अर्थात्—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और आपत्ति ये उपरोक्त छ उपाय किसी भी ग्रन्थ के तात्पर्य को जान लेने के लिए पर्याप्त समझे जाते हैं। आज हम गीता के तात्पर्य को जानने के लिए उपरोक्त उपायों से ही काम लेंगे, किन्तु पाठकों के बोधार्थ हम उन्हें स्पष्ट करना चाहते हैं कि उनसे क्या और कैसे ग्रन्थ का अभिप्राय समझा जाय, अत निम्नलिखित प्रकार से हम स्पष्ट करते हैं :—

(१) उप क्रमोपसंहार—ग्रन्थ का आरम्भ और समाप्ति जिस विषय पर हों, प्राय वही तात्पर्य भी ग्रन्थ का होता है।

(२) अभ्यास—ग्रन्थकार जिस विषय को पुन: पुन कहता हो, समझ लेना चाहिये कि ग्रन्थ का तात्पर्य भी उसी विषय पर है।

(३) अपूर्वता - वक्ता ने जो बात ग्रन्थ में नवीन कही हो, प्राय: उसी विषय पर ग्रन्थ का तात्पर्य है।

(४) फल—ग्रन्थ के जिस विषय पर 'फल' भी आया हो, तो समझ लेना चाहिये कि ग्रन्थ का तात्पर्य भी वही है।

(५) अर्थवाद—इतिहासादि—इतिहास के दृष्टान्त भी जिस विषय की सहायता दें वही तात्पर्य ग्रन्थ का होता है।

(६) आपत्ति—ग्रन्थकार ने जिस विषय पर विशेष समन्वित युक्तियां दी हों, प्राय. वही विषय ग्रन्थ का तात्पर्य भी होता है।

हमारी प्रतिज्ञा

उपरोक्त उपायों के निर्णय के अनुसार हमारी प्रतिज्ञा है कि गीता का तात्पर्य—श्रीकृष्ण को पूर्ण-रूपेण 'परमात्मा' मान कर उनकी भक्ति संसार से कराना ही है। आज के लेख की पृष्ठ भूमि लिखने के पश्चात् हम अपने विषय को प्रारम्भ करते हैं—

विषय प्रवेश

(१) उपक्रम —वास्तव में गीता का आरम्भ द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक से होता है। "कार्पण्य दोषोपहतस्वभाव पृच्छामि त्वा धर्म संमूढचेता। यच्छ्रेय स्या निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधिमा त्वा प्रपन्नम्॥ गीता अ० २। श्लोक ७॥ क्योंकि विधि युक्त कर्त्तव्य का निर्देश इसी श्लोक में है। अर्जुन कहता है कि मैं अपने मन से अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर सकता हूं अतएव आपकी शरण आया हूं अब आप मुझे कल्याणकारक कर्त्तव्य का उपदेश दीजिये। गुरु अथवा उपास्यदेव की शरण जाना ही भक्ति-मार्ग का आरम्भ है।

टिप्पणी - भक्ति क्या है? हृदय की रागात्मिकावृत्ति, श्रद्धा का सम्बल लेकर जब किसी आदर्श उपास्य अथवा श्रद्धेय के प्रति समर्पण की भावना लेकर बढ़ती है, तब वह भक्ति कहलाती है।

(२) उपसंहार —गीता की समाप्ति १८ वें अध्याय के ६६ वें श्लोक में—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

इस श्लोक में की गई है। क्योंकि यह वचन भी विधि-युक्त कर्त्तव्य का निर्णय कर देने वाला है। इसमें श्रीकृष्ण ने अपनी शरण में आने के लिए अर्जुन को कहा है। इसलिये उपसंहार से भी स्पष्ट है कि गीता का तात्पर्य कृष्ण भक्ति में है।

(३) अभ्यासः—गीता के प्रत्येक अभ्यास में, शब्दों और तात्पर्यों से पुन-पुन भक्ति (कृष्ण भक्ति) का ही निरूपण स्पष्ट होता है। यदि इसका संकलन किया जाय तो —

(क द्वितीयाध्याय के ४५, ५५, ६१, ६४, ७० और ७२ वें श्लोकों से।

(ख) तृतीयाध्याय के ३, ९, १३, १५, १७ और ३० वें श्लोकों से,

(ग) चतुर्थाध्याय के १०, ११ और २३ वें श्लोकों से,

(घ) पंचमाध्याय के १०, १७, २०, २४ और २९ वें श्लोकों से,

(ङ) षष्ठाध्याय के ६, १४, १८, २०, ३० और ३१ वें श्लोकों से और—

(च) सम्पूर्ण सप्तमाध्याय से,

छ) अष्टमाध्याय के ९, १०, ११ वें अथवा सारे ही अध्याय से,

(ज) सम्पूर्ण नवमाध्याय से, सम्पूर्ण दशमाध्याय से, सम्पूर्ण ११ वें अध्याय से और १२वें से,

(झ) १३ वें अध्याय के १ से १८ वें श्लोक तक से—

(ञ) चतुर्दशाध्याय के २६ और २७ वें श्लोक से,

(ट) पंचदशाध्याय के सम्पूर्ण श्लोकों से,

(ठ) षोडषाध्याय के १ से ३तक के श्लोकों से,

(ड) सप्तदशाध्याय के ४ और १४वें श्लोकों से

(ढ) अष्टदशाध्याय के १८, २०, ५२ और ५४ वें श्लोकों से तथा समाप्ति पर्यन्त के श्लोकों से—श्री कृष्ण को परमात्मा बतलाते हुए उनकी भक्ति का ही मार्ग प्रदर्शित किया गया है।

(४) अपूर्वता —विचार पूर्वक देखा जाय तो गीता में ज्ञान और कर्म सहित श्री कृष्ण की भक्ति पर ही विशेष बल दिया गया है, यही यहाँ अपूर्वता है।

टिप्पणी.—अपूर्वता के सिद्धान्त से भी गीता में श्रीकृष्ण भक्ति का ही निरूपण है।

(५) फल—फल की दृष्टि से यदि देखें तो गीतोपदेश का फल कृष्ण की 'आज्ञापालन' ही कहा

जाये मा सु, "करिष्ये वचनं तव"।

(६) अर्थवाद—इतिहास—जनकादि का दृष्टांत देकर भी यही समझाया गया है कि कृष्ण भगवान् का स्मरण करके ही सब काम करे।

टिप्पणी —इसलिये अर्थवाद के द्वारा भी कृष्ण की भक्ति ही प्रदर्शित हुई है।

आपत्ति —युक्ति से भी यही सिद्ध है कि कृष्ण की भक्ति से फल सिद्धि शीघ्र और सरल रीति से होती है।

गीता के १२ वें अध्याय में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि भगवान्! जो लोग इस तरह सर्वदा रूप सेवा और नाम सेवा में लगे रहने वाले हैं वे लोग और जो समझ में न आने वाले "अपार-ब्रह्म के" विचार में लगे रहने वाले, इन दोनों में कौन से साधक उपाय चतुर साधक कहे जा सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जो लोग अपने मन को मुझे समर्पित करके पूर्ण श्रद्धा और भक्ति के साथ मेरी सेवा में लगे रहते हैं मुझे तो वे ही उपाय-कुशल मालूम होते हैं। इस प्रश्नोत्तर से स्पष्ट है कि कृष्ण जी का क्या तात्पर्य है? हमें यह मान्य है कि गीता सब तरह की समझों से भरा हुआ शास्त्र है अतएव गीता ज्ञान शास्त्र भी है पर यह ज्ञान' कृष्णभक्ति के लिए ही है यह मानना ही पड़ेगा। सारी गीता में प्राय कृष्ण जी ने अपना स्वरूप ही समझाने का प्रयास किया है और कहा है कि मैं ऐसा हूं, मैं ऐसा हू। हम यहा गीता से कुछ ऐसे ही नमूने प्रस्तुत कर देना चाहते हैं कि जिससे पाठक सम्यक् समझ सकें—श्री कृष्ण जी कहते हैं कि मुझ से ही सब जगत परिपूर्ण है और सब भूत (प्राणी-अप्राणी) मुझ में ही स्थित हैं। (गी० ९।४) जीव मेरा ही अंश है सूर्य चन्द्र और अग्नि में मेरा ही तेज है, क्षर अक्षर से परे मैं ही पुरुषोत्तम परमात्मा हूं। ज्ञानी लोग मुझे ही भजते हैं। महत् ब्रह्म (प्रकृति) मेरी योनि है, मैं उसमें गर्भ धारण करता हूं। सब भूतों (प्राणी-अप्राणियों) की उत्पत्ति उसी से होती है। यह सब मेरा ही विस्तार है। सब भूत मेरे ही अन्दर हैं और प्रलय में मुझ में ही लीन हो जाते हैं। ऋषि मुनि मुझे ही भजते चले आये हैं। मेरी ही भक्ति से परम गति (मुक्ति) मिलती है। मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ। मेरे से ही सब जगत् चेष्टा (गति) करता है। इस प्रकार तत्त्व से समझ कर श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमान् भक्त जन मुझ परमेश्वर को ही चाहते हैं। मैं आदित्यों में विष्णु हू। ज्योतियों में सूर्य हूँ। वायु में मरीचि हूं। नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ। (गी० अ० १०।२१) रुद्रों में शंकर हूँ। यक्ष, राक्षसों में कुबेर हूँ। आठ वसुओं में अग्नि हू। पर्वतों में सुमेर (हिमालय)। (गी० अ० १०। २३) सब वृक्षों में पीपल का (अश्वथ) वृक्ष हूँ। देव ऋषियों में नारद हूँ। गन्धर्वों में चित्ररथ हू। और सिद्धों में कपिल मुनि हूं। (गी० १०।२६) दैत्यों में प्रह्लाद हूं, गिनती करने वालों में समय हूं, पशुओं में मृगराज (सिंह) हूं, पक्षियों में गरुड़ पक्षी हूँ। (गी० १०।३०)। पवित्र करने वालों में वायु हूं, शस्त्रधारियों में राम हूँ, मछलियों में मगरमच्छ हूं और नदियों में गंगा हूँ। (गी० १० ३१)। हे अर्जुन! सृष्टियों का आदि अन्त और मध्य, मैं ही विद्याओं में अध्यात्म विद्या (ब्रह्मविद्या) हूं, विवाद करने वालों में मैं 'वाद' हूँ। (गी० १०।३२)। मैं अक्षरों में 'अ' हूं, समासों में 'द्वन्द्व-समास' हूं, काल का भी महाकाल हूं। मै विराट हूँ, धाता हूं, स्मृति हूँ, धृति और क्षमा भी मैं ही हूं। (गी० १०।३४)। मैं, गायन करने योग्य श्रुतियों (वेद मन्त्रों) में बृहत् साम हूं, छन्दों में गायत्री-छन्द हूं, महीनों में मार्गशीर्ष का महीना हूँ, और ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूँ। (गी० १० ३५)। इस प्रकार सब कुछ मैं ही मैं हूँ।

इस प्रकार जब कृष्ण जी ने अपने स्वरूप का

निरूपण किया और अर्जुन को कहा कि विश्वरूप ही मैं हूं तो इस अर्जुन को विश्वास नहीं हुआ तब उसे विराट रूप का दर्शन कराया गया। प्रश्न होता है कि युद्धस्थल में और उभय पक्षों की सेनाओं के मध्य जब युद्ध की भेरियां बज रही थीं और दोनों दल युद्ध करने के लिये खड़े हुए थे तो ऐसे समय में श्रीकृष्ण जी को अपनी विभूतियों के दर्शन कराने; विराट रूप दिखाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी ? और इतना लम्बा-चौड़ा भाषण करने की आवश्यकता ही क्यों अनुभव की गई ? जब कि गीता के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में आत्मा की अमरता और शरीरों की नश्वरता तथा निष्काम कर्म एवं अर्जुन को उसके क्षात्र धर्मानुसार कर्त्तव्य करने का उपदेश दिया जा चुका था ? इसका यथार्थ उत्तर यही है और हो सकता है कि साम्प्रदायियों का कार्य इतने से पूर्ण हो नहीं सकता था क्योंकि वे तो श्री कृष्ण जी को विष्णु का अवतार और पूर्ण ब्रह्म बनाना चाहते थे और विष्णु व कृष्ण के विग्रहों (मूर्तियों) की पूजा करा कर मठ मन्दिरों की गद्दियों पर चढ़ावा चढ़वा-कर अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते थे, इसी लिए उन्होंने कृष्ण को इस नाटक का पात्र चुना और उन्हें पूर्ण परमात्मा बनाने का प्रयास किया। जिन उपनिषदों और दर्शनों में ब्रह्म (परमात्मा) के लक्षण और विशेषण लिखे हैं उन्हीं विशेषणों को लेकर श्रीकृष्ण जी के साथ जोड़ दिया गया है और एक व्यक्ति (मनुष्य) को परमेश्वर, परब्रह्म परमात्मा बनाकर उसके नाम पर अवतारवाद, मूर्ति पूजा आदि का प्रचार किया गया है। गीता सम्प्रदाय का एकमात्र उद्देश्य यही है। किन्तु वेदज्ञों और शास्त्रों के मर्मज्ञों ने इस रहस्य का अनावरण कर दिया है। उसके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं :—

१—श्री कृष्ण जी महाराज अर्जुन से स्वयं कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू "तमेव शरणं गच्छ सर्व-भावेन भारत" उस परमात्मा की ही शरण में सब भावों से जा। यहां 'तम्' शब्द से स्पष्ट है कि कृष्ण परमात्मा नहीं है वह अर्जुन को उपदेश दे रहे हैं कि उसकी शरण में जाने से ही कल्याण हो सकता है। फिर इसके विपरीत "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" कहने की क्या आवश्यकता पड़ी। यस्यान्त स्थानि भूतानि, येन सर्वमिदं ततम्। अर्थात् जिस परमात्मा के (अन्त स्थानि) अन्तर्गत सब भूत (जड़ चैतन्य जगत्) हैं जिसने यह सब संसार रचा है। (गी० ८। ४)। किन्तु इसके विपरीत "मयाततमिदं सर्वं, मत्स्थानि सर्वभूतानि" (गी० अ० ९। श्लोक ४ में) मुझ से यह सब जगत् रचा गया (वा परिपूर्ण) है मुझ में ही सब भूतों का निवास है ऐसा क्यों कहा गया ?

टिप्पणी—जब गीता के ८वें अध्याय में संसार की रचना परमेश्वर से मानी गई है और उसी के अन्तर्गत सब भूत स्थित हैं यह बतलाया जा चुका है फिर ९ वें अध्याय में कृष्ण का यह कहना कि मेरे द्वारा ही संसार रचा गया, मुझ ही में सब भूतों का निवास है यह गीता के परस्पर विरोधी वाक्य क्या यह सिद्ध नहीं कर रहे हैं कि वैष्णवाचार्यों ने यह श्लोक रच कर मिला दिये हैं और कृष्ण को सृष्टिकर्ता सिद्ध किया है ?

गीता अध्याय ८ में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि हे कृष्ण ! वह ब्रह्म क्या है ? इसका उत्तर श्रीकृष्ण जी देते हैं कि "अक्षरं ब्रह्म परमम्" (गी० अ० ८। ३) परम, अक्षरम्—अर्थात् जिसका कहीं नाश नहीं होता, उस परमात्मा को 'ब्रह्म' कहते हैं। उसी प्रकार (ब्रह्म) को अव्यक्त कह कर परमगति भी उसी को कहा है—"अव्यक्तो क्षर इत्युक्तस्तमाहु परमा गतिम्" "यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" (गी० अ० ८। २१)। इसमें श्रीकृष्ण जी ने बतलाया कि—अव्यक्त अक्षर कहा गया है उस ही अक्षर अव्यक्त को तू मेरा "परमधाम" समझ जहां जीव जाकर फिर जन्म मरण में नहीं आता।

इसमें स्पष्ट कर दिया गया है कि अविनाशी (अक्षर) ब्रह्म ही मेरा परम धाम है षष्ठी सम्बन्ध से सिद्ध हुआ कि श्रीकृष्ण अविनाशी ब्रह्म को अपना परम धाम मानते थे। किन्तु इसके विपरीत ११ वें अध्याय के १८ वें श्लोक में अर्जुन (से कहलाया गया है) कहता है कि कृष्ण—"त्वमक्षरं परम" तुम ही परम अक्षर हो अर्थात् परब्रह्म—परमात्मा हो "त्वं अव्यय सनातन पुरुष" अर्थात् आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं (ऐसा) "मे मत" मेरा मत है। "त्वमस्य विश्वस्य परं निधनम्" अर्थात् आप ही इस जगत के परम आश्रम हैं।

गीता अ० ८ के श्लोक २२ में कहा गया है कि 'पुरुष स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया'। श्री कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन! वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है "यस्यान्त स्थानि सर्वभूतानि" जिसके अन्तर्गत सर्वभूत (जड़ चैतन्य जगत्) है और "येन सर्वमिदं ततम्" जिस परमात्मा से यह सारा विश्व विस्तृत हुआ है (अर्थात् रचा गया है) इस श्लोक में परम पुरुष परमात्मा को कहा गया है और बतलाया गया है कि उसी परमपुरुष से संसार का सृजन हुआ है किन्तु गीताकार ने सृष्टि रचनादि सभी कुछ कृष्ण के द्वारा करा दी है। यह क्यों?

प्रमाण

इसका सरल और सीधा उत्तर यही है कि यदि गीताकार परम पुरुष परमात्मा के विशेषण और सृष्टिकर्तृत्वादि गुणधर्मों को कृष्ण में आरोपित न करता तो कृष्ण साक्षात् परमेश्वर परमात्मा न बनता, जब कृष्ण परमात्मा न बनता तो हिन्दुओं में उनकी पूजा और भक्ति के लिये श्रद्धा ही उत्पन्न न होती अतः यह प्रयास किया गया और गीता-पंथ चलाया गया। अस्तु!

पुरुष शब्द

पुरुष शब्द यजु० अध्याय ३१ में पुरुष-सूक्त का वर्णन है। यह पुरुष सूक्त ऋग्वेद में भी आया है। सांख्य दर्शन और योग दर्शन में भी इसका दर्शन मिलता है यजुर्वेद में "पुरुष को विश्व व्यापक विराट् के रूपक अलकार से सहस्रशीर्ष पुरुष" कह कर उसका व्यापकत्व बतलाते हुए सृष्टि की उत्पत्ति में पुरुष कैसे निमित्त बना सिद्ध किया गया है। ऋग्वेद में "वेदाहमेत पुरुषं महान्तम्" इस मन्त्र द्वारा परमेश्वर को अविद्या अन्धकार से परे "आदि व्यवरामि" प्रकाश स्वरूप बतलाते हुए उसके स्वरूप ज्ञान से मुक्ति बतलाई गई है। सांख्य में पुरुष को असंग अर्थात् प्रकृति सगुणधर्मी से अलिप्त कहा गया है (असगो पंपुरुष) और योग दर्शन में पतंजलि मुनि ने "क्लेश कर्म-विपाकाशैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर" ईश्वर' को पुरुष विशेष कहा है, पुरुष विशेष इसलिये कि शरीररूपी पुर में निवास करने वाले जीवात्मा को भी पुरुष कहा गया है किन्तु कोई भी जीव जो शरीर धारण करता है पंच क्लेशों से बच नहीं सकता, पंचक्लेश-अविद्या,अस्मिता,राग, द्वेष भिनिवेषा पंचक्लेशा'। अर्थात् अविद्यादि पचक्लेश हैं जो शरीरधारी जीवों को होते रहते हैं उन क्लेशों में एक अभिनिवेश क्लेश भी है जिसे मृत्युका क्लेश कहते हैं। किन्तु गीता में श्री कृष्ण जी ने अपने को क्षर अक्षर से परे "पुरुषोत्तम" कहा है, किन्तु इसके विपरीत गीता में ही श्री कृष्ण अपने अनेकों जन्म होना स्वीकार करते हैं "बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि" अर्थात् मेरे बहुत जन्म हुए हैं। जन्म-मरण कर्म फल भोगने के लिए होते हैं और जन्म मरण से क्लेश होता ही है तब योग दर्शन के अनुसार क्लेश कर्म से परे श्रीकृष्ण भी ईश्वर या परम-पुरुष पुरुषोत्तम अथवा परमात्मा कैसे कहे जा सकते हैं। किन्तु गीता में हमें स्थान २ में कृष्ण परमात्मा के रूप में ही मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण परमात्मा नहीं थे वे तो संसारी जीवों के सदृश जन्म मरण में बार २ आने जाने वाले थे। मताचार्यों ने ही उन्हें पूर्ण पुरुष, परमपुरुष, पुरुषोत्तम और परमात्मा बना दिया है।

Unity and Disunity

Pooran Chand Advocate

The flood gate of liberty has opened all over the world Countries after countries are attaining the Status of independence and liberty. Europe and America were the dominating factors.The turn of Asia came and Asian countries have become independent. Now is the turn of Africa. Along with independence the spirit of disunity is going up and leads to discord, struggle and strife Why so ?

Independence is accompanied by Democracy Democracy depends upon Votes Success depends upon the number of Votes Votes are counted and not weighed.In counting the number of votes the ability, the capacity and the character of the Voter has not much significance To secure majority of votes the spirit of grouping comes in. Grouping may be based on :—

(a) Caste–Castism;
(b) Creed–Communalism;
(c) Sex–Struggle between man and woman.
(d) Colour--Negros and Americans;
(e) Language--Liguism;
(f) Race--Racialism;
(g) Provincialism;
(h) Tribe–Tribal areas;
(i) Political parties on various grounds- This may be called 'Raj Niti Ki Daldal'.
(j) Country-ism-Patriotism is a danger in itself so far as the welfare of other countries is concerned

In all these groupings primarily Unity or partial unity is aimed at, but this leads to greatest disunity

Another psychological factor to be considered in this context is the craze for the acquisition of rights and privileges–'Adhikaron Ki Andhi', With no corresponding regard for the fulfilment of duty Along with indepedence of the country each citizen or individual unit wants to achieve independence in his own turn Sometimes he wants to ignore the fundamental princ iples known as the Rule of Road.

The illustration of the Russian lady is very pertinent at this stage. In 1917, when Russia secured independence from the Yoke of Czar of Rnssia, a Russian lady was out for a walk in the middle of the road.

The Constable on duty asked her not to walk in the middle and go by the side path. The Russian lady gave a very significant reply "Russia is free and I am free I shall walk wherever I like" The remark of the constable on duty was equally significant "Yes you are free. You can claim to walk wherever you like, but the car driver can also claim the same. If he ignores the rules of Road and does not look to the right or left and gives no warning, blows no horn, what would happen, Madam? In free Russia you yourself claiming to be free would die and go to the grave. The car driver would be imprisoned and go to the Jail.'

Such craze for liberty sometimes lead to very unhappy results, brings about carelessness and neglect of duty

Thus in political sphere there are three psychological factors to be tackled with,- Spirit of independence, Zeal for democracy, and the Spirit of arrogance or indiscipline in the individual. Various types of groupings as mentioned above are brought about under the pressure of these psychological factors. The question is how to combat this growing evil which has assumed a shape of a raging epedemic disease.

The differences are there no doubt, they have a place of their own in the frame work of the universe. We have to consider whether we can obliterate these differences. Experience shows that greater the effort to obliterate them the greater is the acuteness in the shape of such differences. In stead of trying to obliterate the differences attempt has to be made to avoid the spirit of distinction without maddling with 'Bhed' (differences) 'Bhed Bhav' (feeling of distinction) has to be avoided. Mere Unity of form or uniformity would not do. Really speaking, the Unity of spirit is needed.

Unity based on the Unity of Spirit of soul is the real lasting Unity To bring about such Unity is the work of such Associations as 'INTERNATIONAL FELLOWSHIP.' The term 'Fellowship' is very significant. Fellowship is meant to indicate identity of purpose as well as the proximity of time and space. Such as the class fellow or a fellow passenger The question, 'who is thy neighbour' is also closely connected with the conception of Fellowship Mere proximity of time and space is not enough. One who needs your help or who can help you in turn, is your neighbour in the real sense of the term.

To understand the significance of the Unity of spirit an individual has to be kept in view. Each individual is a kingdom by himself. The region of the heart is the Capital of the realm and heart is the Home Minister. He resides and functions through. He is controlled by God the soverign and Soul the Prime Minister. Other organs are like other Ministers Bodies of various types are meant for soul to live in and function through. The time factor indicates 'Age' and place of functioning is known as 'environment,' it means the space for the time being occupied--it may be a country, province or a city, or a village.

Difference in the form of bodies such as colour, sex etc should not matter so far as the Unity of spirit or soul is concerned. Similarly, difference in the limits of place or time should not matter. Unity of spirit or soul brings about real brotherhood or universal friendship not only amongst men but with the whole animal world.

The theories of evolution and transmigration both are meant to establish our affinity with the whole animal creation.

The unity of spirit should be comprehensive enough to include all living beings in its scope.

If each individual kingdom is to be kept under control and discipline there should be strong rule at the capital and this can only be brought about by the regulation of the human heart The regulation of the human heart can only be ensured by relying on the significance of the divine rule.

God is the soverign ruling in the realm of the human heart and outside soverign exercising the auth ority in various spheres are only representatives of inner soverign. The system of oath establishes this The Phrase 'Hridaya Samrat' is also very significant. It denotes the highest compliment paid to any ruler or leader If a person in authority is a true representative of inner soverign he deserves every respect and support. If brotherhood of men or rather the brotherhood of all living creatures is to be brought about, fatherhood of God has to be kept in view If we believe in God as father the real spirit of brotherhood shall be inculcated. Wit hout belief in the unity of God head the very conception of the term 'Universe' would not be complete and free from confusion. 'Uni' means 'One' and 'Versal' means 'Turn'. One that turns the whole universe into one is needed

By ignoring .Dharam' we cannot

expect to bring about any unity in the world or in any sphere of life.

Belief in the existence of God is an essential ingredient for the membership of the International Fellowship. I would request the members of the Fellowship to really combine and try to bring about the real unity of spirit or Unity based on the conception of God and Soul 'ADHYATMA- VAD'.

The danger involved in artificial and momentory groupings of various types should be explained to the public as force and cogent reasons. They should be asked not to run after the shadow but to follow the true inner light

The evils which result from these 'isms' as castism etc each need a separate talk Their pernicoous efforts are evidently visible in day to day politics of our country.

A new disease in the shape of 'linguism' 'fight for ones' original *language with no regard for the national language-has spread* as an epedimic. Language is only a vehicle of thought. Thoughts are more important Fighting for the shape of the vehicle ignoring the fundamental unity of the thinker is a most pernicious habit.

I Would like to emphasise once again in the end that if we want to get rid of these 'isms' we must try to bring about the real unity of the spirit It would be worth while to quote a few extracts from a Book 'Patriotism Not Enough' by John Haynes Holme. He says that about religon that 'That fundamental law of human fellowship, service, brotherhood and love which are rightly to be described as love of God in the soul of man.

Teaching man to live together in the world in relation of justice and goodwill.

They are seeking both where they lift men above the battle of creeds and flags into the clear atmosphere of those ideals of the spirit which are for mankind

Patriotism is that divine law which is the will of God. This is patriotism in its true character.

It is religion applied to the affairs of the State.

It is religion abiding in the hearts of men as citizens as well as individuals.

It is religion unfolding the smaller brotherhood of tribe and country into that one all uncompassing brotherhood of man, which is God, Kingdom comes at last upon the earth.

The great writer Roman Rollan defines in 'Above the Battle' the

दयानन्द का काम पूरा करेंगे

रघुबीरसिंह शास्त्री

महर्षि दयानन्द जब गुरुवर विरजानन्दजी के आदेश पर लोकोद्धार के क्षेत्र में उतरे तो उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा अगाध पांडित्य के बल पर चहुंमुखी क्रान्ति का शंख बजा दिया। जाति-पांति, सम्प्रदाय तथा ऊंच-नीच के रोग से गलित समाज को स्वस्थ करने एवं अन्ध विश्वास तथा अज्ञान आवरण में दबे प्राचीन वैदिक धर्मके स्वरूप को परिष्कृत करके प्रतिष्ठापित करने का उनका सारा ही कार्यक्रम क्रान्तिकारी था। सुधारक महापुरुष या सन्त तो इस देश में अन्य भी अनेक समय-समय पर पैदा हुये और उन सभी की कुछ-न-कुछ देन रही, परन्तु महर्षि दयानन्द जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा, गति, सूझ बूझ साहस तथा संकल्प किसी में न था। यही कारण है कि वे इस कारण हमारे सुप्त एवं अचेत समाज तथा जीवन को न झकझोड़ सके। महर्षि की विद्या, तप पूर्ण ओजस्वी वाणी, लेखनी तथा कृति के लक्ष्य की परिधि से कोई भी समस्या, कुप्रथा, कुसंस्कार, दुर्विचार बच न पाया। उन्होंनें सब का विश्लेषण करके क्रियात्मक एवं मौलिक समाधान प्रस्तुत किये।

आर्य समाज महर्षि का उत्तराधिकारी है। गुरु विरजानन्द के एक शिष्य दयानन्द थे।

---

city of Gods the place where the souls of the whole world may assemble

Before I conclude, I would like to quote a hymn from the Yajur Veda which can well serve the purpose of 'Bande Matram' Song laying emphasis upon the love of the world as a whole not in part or piece-meal Reverence for the mother-Earth-and God-the father including the whole universe in its scope.

'VAJASYA NU PRASAVE MATRAM MAHIN ADITIM NAMA VACHASA KARAMAHE.

YASYAM EDAM VISHVA BHUVANAMAVIVESH, TASYAM NO DEVAH SAVITA DHARMA SAVISHAT, 183

Translation.-(Aditim Nama) Aditi nam (Mahin Matram) Mahan Bhumi Mata ko (Vajasya Prasave nu) anna, bala, Jyana adi ki utpatti ke liye hi ham. (vachasa) Vani dwara (Karamehe) Abhimukh kartey hen, Mata Banatey hen (Yasyam) Jis Aditi men (Idam Vishva Bhuvana) Yeh sabki sab vyaktiyen aur vastuen (Avivesh) Samayee huyee hen.(Tasya)Usiimen, Usike prati. (Savita Devah) Prerak Prabhu. (Neh Dharma) Hamare Dharma, Kartavya ki. (Savishat) Sada Prernan Karen,

दयानन्द के पीछे उनके शिष्य कहलाने में गौरव अनुभव करने वालो की सख्या लाखो है। परन्तु देखना यह है कि क्या ऋषि का क्रान्तिकारी कार्यक्रम आगे बढ रहा है? इसमे कोई सन्देह नही कि अपने प्रवर्तक आचार्य के पीछे आर्य-समाज ने भारी सफलतायें प्राप्त की। शिक्षा के क्षेत्र मे उसने सर्वथा नया कार्यक्रम राष्ट्र के सामने रखा। छूआछूत, बाल-विवाह, तथा वैधव्य के अभिशाप से समाज को मुक्ति दिलाने मे प्रशसनीय प्रगति की। स्वतन्त्रता के सघर्ष में भी सब प्रकार का बलिदान एव त्याग करने मे आर्यजन अग्रसर रहे। इन सब कार्यकलापों की छाप एव धूम भी मची रही। परन्तु आज कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानो हम भी अपने क्रान्तिकारी कार्य-क्रम को छोडकर रूढिवादी से बनते जा रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि अभी तो आर्य समाज के लिये बहुत कुछ करने को पडा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमारे कुछ कार्यक्रमो की पूर्ति मे राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी हाथ बटाया, परन्तु आज वह सस्था शासनारूढ होकर अपना क्रान्तिकारी स्वरूप गवा बैठी है। ऐसी दशा मे केवल आर्य समाज बचा है जिससे राष्ट्र तथा विश्व कुछ आशायें कर रहा है। आज तो स्वराज्य प्राप्ति से पहिले की अपेक्षा भी देश की कुछ अधिक शोचनीय दशा बन गयी है। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज के क्रान्तिनाद की आवाज सर्वथा मन्द हो चुकी है। जो गुरुकुल, विद्यालय तथा कालिज हमने वैदिक धर्म,सस्कृति तथा साहित्य के प्रचार-केन्द्र के रूप मे स्थापित किये थे, वे सब इतप्रभ एव विच्छिन्न हो रहे हैं। हम ही उनकी ओर से उदासीन हैं तो फिर अन्यों का क्या दोष? नैतिकता तथा सदाचार हमारे सामाजिक जीवन से कथावशेष होते जा रहे हैं, आस्तीयता मानो अनैतिकता की पर्यायवाचिनी बन रही है। जाति-पाति का भेद-भाव तो पुन उग्र हो ही रहा है, उसके साथ-साथ राजनीतिक स्वार्थ की वेदी पर प्रान्तीयता तथा भाषा सम्बन्धी विभाजन रेखाये अधिक काली होती जा रही है। राष्ट्र की एकता चकनाचूर हो रही है। विदेशी धन राशि के बल पर प्रतिदिन हजारों भूखे-नगे भारतीय ईसाइयत के कुचक्र मे फसाये जा रहे हैं। गोमाता का आर्त स्वर सुनने की ओर किसी का ध्यान तक नही जाता। उलटा हमारे शास्त्रो मे गोमास भक्षणके विधान का प्रतिपादन करके हमारे बौद्धिक दिवालियापन की घोषणा की जा रही है।

इन सब परिस्थितियो को आर्य समाज उदासीन बन कर देखता रहे, यह बडा ही आश्चर्य है। पिछले दिनो ऋषिभक्त हजारो की सख्या मे मथुरा की पवित्र स्थली पर इकट्ठे हुए थे, जहा गुरुवर विरजानन्द ने हमारे आचार्य को वह क्रान्तिकारिणी दीक्षा दी थी। भारत के राष्ट्रपति के हाथो उस छोटी सी कुटिया के स्थान पर उस दीक्षा का एक भव्य स्मारक बनाने के लिये पहली शिला का न्यास हुआ था। प्रत्येक आर्यनर नारी आत्म-विभोर होकर महामहिम आचार्य की कृति एव उपकारो के सस्मरण के प्रवाह में गोते लगाता हुआ यह पुराना गीत गाये—

"दयानन्द के वीर सैनिक बनेगे।
दयानन्द का काम पूरा करेगे॥"

और सकल्प करे कि किस प्रकार यह घोषणा मूर्तरूप धारण कर सकती है।

साहित्य-समीक्षा

"बाल जीवन सोपान"

मूल्य १॥=) सजिल्द

श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज से आर्य-जगत् भलीभांति परिचित है। उन्होंने वैदिक साहित्य और सिद्धान्तों पर अनेक उत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया है और उनकी ये पुस्तके विद्वानों और सर्वसाधारण जनता सभी ने पसन्द की हैं। उसी प्रसङ्ग में स्वामी जी महाराज ने "बाल जीवन सोपान" नाम से एक नई पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तक के तेरह खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड में बालकों के चरित्र निर्माण सम्बन्धी अनेक उत्तमोत्तम बाते बताई गई और उपदेश दिए गए हैं। प्रत्येक प्रकरण में प्रसङ्ग से वेदों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत आदि के बड़े शिक्षाप्रद मन्त्र और वाक्य उद्धृत किए गए हैं जिनमें दी गई शिक्षाएं युवकों के जीवन को अच्छाई और ऊंचाई की ओर ले जाने में बड़ी सहायक होंगी।

प्रियव्रत आचार्य
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मिलने का पता —

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द भवन, नई दिल्ली–१

श्रीकृष्ण चरित्र

ले०-प० भवानीलाल भारतीय एम ए सिद्धांतरत्न
प्रकाशक–आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड अजमेर

पृष्ठ सं० २६६ $\frac{२० \times ३०}{१६}$

इस पुस्तक में ४४ शीर्षको में श्रीकृष्ण महाराज के उज्ज्वल चरित्र का विशद वर्णन किया गया है और उन भ्रान्तियों और अनर्गलताओं का सप्रमाण निराकरण किया गया है जिनसे इन महापुरुष के उदात्त चरित्र के कलुषित एवं तिरस्कृत होने में कोई कमी नहीं रही है। "कृष्ण चरित्र की विकृति" "ऋषि दयानन्द का क्रांतिकारी दृष्टिकोण" कृष्ण की ऐतिहासिकता "कृष्ण चरित्र के मौलिक उपादान" और 'चरित्र विश्लेषण' शीर्षक विशेष रूप से पठनीय हैं। इस उत्तम ग्रन्थ के लिखने पर श्री भारतीय जी बधाई के पात्र हैं।

श्री कृष्ण जी महाराज के जीवन के सम्बन्ध में अधिकाधिक अनुसंधान और ग्रन्थ लेखन की आवश्यकता है। साथ ही उन सब आक्षेपों के विद्वत्तापूर्ण निराकरण की भी आवश्यकता है जो उनके अस्तित्व और उनके विमल चरित्र पर लगाए गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न है।

परोपकारी (नित्यानन्द जन्म शताब्दि अंक) मासिक पत्र

सम्पादक—श्री डा० मानकरण शारदा
„ श्री श्रीकरण शारदा

प्रबन्ध संपादक—श्री प० भगवानस्वरूप न्याय भूषण वार्षिक चन्दा ६) विदेश से ८)

'परोपकारी' परोपकारिणी सभा का मुख-पत्र है। प्रस्तुत अंक इसका दसवा और ग्यारहवा अक है। इस अक में श्री स्व० स्वामी नित्यानन्द जी महाराज के जीवन और कार्यों का विशद वर्णन अंकित है जिनका ज्ञान प्राप्त करना वर्तमान पीढ़ी के लिए जो उनसे अपरिचित हैं, आवश्यक और लाभप्रद है। श्री स्वामी जी ने अपनी अगाध विद्वत्ता और योग्यता से आर्यसमाज को चमकाया और अपने अनथक कार्य से उसकी प्रगति को बढ़ाया था। ऐसे नर रत्न और आर्य समाज के अग्रणी के विषय में उपयोगी और अलभ्य सामग्री प्रदान करके परोपकारी ने वस्तुत: आर्य जगत् का बड़ा उपकार किया है। प्रस्तुत अक में स्वामी जी महाराज के चित्रके अतिरिक्त अनेक चित्र भी दिए गए हैं। इस अक को पढ़ने से आर्य समाज के उस युग की एक झाकी मानस-चक्षुओ के समक्ष उपस्थित हो जाती है जो एकदम विशुद्ध और स्वर्णिम् कहा जा सकता है और जिसे लाने में आर्य समाज के प्रेमियों ने कोई प्रयत्न और कोई त्याग उठा न रखा था।

वेद प्रकाश (मासिक-पत्र)

संस्थापक—श्री स्व० गोविन्दराम हासानन्द जी
वार्षिक मूल्य ३) विदेश से ६ शिलिंग

प्रस्तुत अक 'गुरुदत्त लेखावली' अक के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमें मुनिवर प० गुरुदत्त जी के विविध अंग्रेजी लेखों का उपलब्ध हिन्दी अनुवाद अकित है। 'वेद प्रकाश' प्रतिवर्ष कोई महत्वपूर्ण पुस्तक विशेषांक के रूप में प्रस्तुत करता है उसकी यह योजना लाभप्रद और स्तुत्य है। इस अक के पृष्ठ १४६ से लेकर पृष्ठ १६२ तक में श्री प० जी का 'धन का दाह' शीर्षक लेख छपा है। पृ० १५९ पर इस लेख का निम्न लिखित सदर्भ विचारणीय है —

"प्राचीन ससार में बर्बर और असभ्य पैदा किए थे क्योंकि वे वर्षा और वायु से अपनी रक्षा के लिए बनाई हुई केवल त्रुटियों या गुफाओं में रहने वाले मनुष्य प्रकृति के नमूने थे।" इस प्राचीन कालके मनुष्य बर्बर और असभ्य थे, यह मान्यता युरोपीय विद्वानों की है। वैदिक सस्कृति इस मान्यता को क्षण-भर के लिए प्रश्रय नही देती। मुनिवर गुरुदत्त जी के अंग्रेजी लेख के अनुवाद की किसी भूल से उनके लेख में इस प्रकार की असंगत बात आई प्रतीत होती है। इस प्रकार की बातों का सशोधन होना आवश्यक है। आर्य समाज के प्राचीन मूर्धन्य विद्वानों और मनीषियों के ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण जहां आवश्यक कार्य है वहां उनका पुनरावलोकन और निरीक्षण भी अत्यावश्यक है।

ईसाई धर्म प्रचार निरोध आन्दोलन

सार्वदेशिक ईसाई प्रचार निरोध समिति द्वारा सञ्चालित बांसवाड़ा केन्द्र (राजस्थान) का समाचार

यहां एक बालकों का छात्रावास, एक बालिका छात्रावास, और एक पाठशाला नियमित रूप से चल रहा है। प्रचार का कार्य नियमित रूप से चल रहा है। ग्राम जामुडी में १८ घर ईसाइयों के थे १४ घरों के लोग पुनः हिन्दू धर्म में वापस आ गए हैं। आस पास के अनेक ग्रामों के हिन्दुओं ने ईसाई प्रचारकों के पास आना जाना बन्द कर दिया है।

भील कुवां में स्कूल खुलने से उस गांव तथा पड़ोस के २ गांवों के लोगों का सम्बन्ध ईसाइयों से टूट गया है। इस समय ३ नये स्कूलों के खोलने की आयोजना है जिससे वे ईसाइयों के प्रभाव से बच सकें।

नये सत्र में छात्रावास में १३ छात्र प्रविष्ट हो गये हैं। ईसाइयों के पास जाने का आकर्षण कम हो चला है। भीलकुआं में जो छात्र ईसाइयों से छुड़ाये गये थे उनमें से १ छात्रावास में रखा गया है और ४ छात्र नगर के विद्यालय में भरती करा दिये गये हैं।

कन्या छात्रावास भगड़ा में १५ कन्याये प्रविष्ट हैं। ३ कन्याएं ईसाइयों के यहां से हटा कर सरकारी कन्या छात्रावास में प्रविष्ट कराई गई हैं।

अम्बापाड़ा के रोमन कथोलिक पादरी ने गांव टीका पदडी के २ ईसाइयों से उस गांव के १० व्यक्तियों पर तथा आर्य समाज के केन्द्र के २ कार्य कर्ताओं पर अभियोग चलवा दिया है जिसकी पैरवी की जा रही है।

श्री देवप्रकाश जी तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी बड़े मनोयोग से कार्य कर रहे हैं। वहां के कार्य की सफलता का मुख्य श्रेय इन्हीं दोनों महानुभावों को प्राप्त है।

जिस प्रकार जनता अबतक सहायता करती रही है उसीप्रकार इस कार्य केलिये सहायता निरंतर आती रहनी चाहिये। तीन पाठशालाओं के लिये १५०) मासिक और साइकिल तथा मैजिकलैन्टर्न आदि के लिये धन की आवश्यकता है।

काशीनाथ आर्य
उपाध्यक्ष

दान-सूची—ईसाई प्रचार निरोध आन्दोलन

[सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभान्तर्गत]

[सितम्बर के अङ्क से आगे]

रसीद नं०

५०) मन्त्री, आ० स०, विट्ठल भाई पटेल रोड,
काकड़वाड़ी-बम्बई,
(नोटों की बिक्री से) ८८६

२५) मन्त्री, आ० स ,
छपरा (सारण) बिहार,
(नोटों की बिक्री से) ८८७

२५) मन्त्री, आर्य समाज,
अम्बहटा (सहारनपुर)
(नोटों की बिक्री से) ८८८

२५) मन्त्री, आ० स०, राय बरेली
(नोटों की बिक्री से) ८८९

२१) मन्त्री आ० स०, कैन्टूनमेंट, लखनऊ ८९०

२१) श्री विद्यासागर आनन्द
मन्त्री दयानन्द साल्वेशन-शिमला
बी०आर० टोप फ्लेट—नालागढ़ हाउस
राम बाजार—शिमला ८९१

२०) जौहरीलाल जी इन्दु
सेरेट्री आ० स०, धौलपुर
(नोटों की बिक्री से) ८९२

१०) मन्त्री आ० स०, मालेर कोटला ८९३

१८)५० मन्त्री आ० स०, बांदा (उ०प्र०) ८९४

१००) मन्त्री आ० स०, कैथल (पंजाब) ८९८

१९) मन्त्री आ० स०, खुरजा (उ० प्र०) ८९९

३५) चंचल बहिन, माणिकलाल पाठक
प्रधान आ० स०, टंकारा (सौराष्ट्र) ९००

३३) मन्त्री आ०स०, बिलासपुर शहर (म०प्र०)
(नोटों की बिक्री से) ९०१

रसीद सं०

२५) मन्त्री आ० स०,
मोहल्ला पट्टी टोला, रामपुर
(नोटों की बिक्री से) ९०२

२५) मन्त्री आ० स० आरा (शाहबाद) बिहार
(नोटों की बिक्री से) ९०३

२५) मन्त्री आ० स० कपूरथला ९०४

२५) मन्त्री आ० स०, नारनौल ९०५

२४)५५ मन्त्री आ० स०, नकुड़ (सहारनपुर)
(नोटों की बिक्री से) ९०६

२०) मन्त्री आ० स० इगलास (अलीगढ़) ९०७

११) मन्त्री आ० स० गोरखपुर ९०८

१०) मन्त्री आ० स० फैजाबाद ९०९

१०) रघुवीर जी शर्मा, बीसनपुर दरभंगा ९१०

१०) प्रधान महिला आ० स० हाथरस ९११

३४) डा० रघुवीरशरण भटनागर
बड़ा बाजार, अतरौली (अलीगढ़) ९३३

१२१) मन्त्रिणी स्त्री आ० स०, बुढ़ाना गेट,
मेरठ (नोटों की बिक्री से) ९३९

१०) श्री करणसिंह जी, ग्राम करही,
पो० गाढ़ोली, जि० भरतपुर (राज०) ९४०

५) मन्त्री आ० स० फलावदा, जि० मेरठ
(नोटों की बिक्री से) ९४१

२५) मन्त्री आ० स० सदर बाजार-झांसी
(नोटों की बिक्री से) ९४३

२००) मन्त्री आ० स० हिसार, ड्राफ्ट द्वारा
(नोटों की बिक्री से) ९४८

५०) मन्त्री आ० स० भागलपुर (बिहार)

(नोटों की बिक्री से) ६५०
५०) मन्त्री आ० स० नामनेर,
आगरा छावनी (नोटों की बिक्री से) ६५१
२५१) मन्त्री आ० स० झरिया (बिहार) ६५२
१०१) धर्मप्रकाश जी, मन्त्री आ० स०,
कमाठीपुरा-शंकर पुटपाला रोड बम्बई-८ ६५३
११) मन्त्री आ० स० ग्वालियर नगर ६५४
५०) मन्त्री आ० स० जगपुरा (भोगल)
नई दिल्ली-पं० रुचिराम जी द्वारा ६५६
५) राधेश्याम गुप्ता (मुगलसराय)
हिन्दकन्स्ट्रक्शन लि०, बारापानी
जि० के० एवड जे० हिल्स (आसाम) ६६७
२५) मन्त्री आ० स०, पहाड़गंज
(चूनामण्डी) नई दिल्ली ६७०
३०) स्वा० प्रेमानन्द जी सरस्वती
वैदिक धर्म प्रचारक, आ० स० विधूना
(इटावा) (नोटों की बिक्री से) ६७१
८३)४४ मन्त्री आ० स० हिसार (पञ्जाब) ६७३
२५) सत्येन्द्रनाथ जी, आ० स०
कुन्दरकी, जि० मुरादाबाद ६७६
२५) मन्त्री आ० स० भरतपुर, राजस्थान ६८०
२५) पं० धुरन्धर जी वानप्रस्थी,
पोर्टलुईस, मोरिशस
श्री स्वा० ध्रुवानन्द जी महाराज द्वारा ८८५
२०) मन्त्री आ० स० शकूरबस्ती दिल्ली
सभामन्त्री द्वारा ६६१
५२) मन्त्री आ० स० सोनीपत
(नोटों की बिक्री से) १००२
५०) मन्त्री आ० स० आगरा नगर
महर्षि दयानन्द मार्ग फ्रीगंज आगरा १००३
५०) मन्त्री आ० स० भरथना (इटावा)
(नोटों की बिक्री से) १००४
२५) मन्त्री आ० स०
गुलाबसागर जोधपुर १००५
२५) डा० रघुवीरशरण जी भटनागर
बड़ा बाजार, अतरौली (अलीगढ़) १००६

२५) रामकुमार जी, मन्त्री आ० स०
बादपुर, जि० बिजनौर १००७
२५) रघुबरदास जी, मन्त्री आ० स० नाभा
(नोटों की बिक्री से) १००८
२५) माधवकृष्ण जी, आ० स०
धनबाद (बिहार) १००६
२०) सन्तलाल जी आर्य
पो० मु० शाहगंज,जि० जौनपुर १०१०
२०) मन्त्री आ० स० मवाना कलां (मेरठ) १०११
१६)७२ लेखराम जी गुप्त
उपमन्त्री आ० स० दातागंज १०१२
१०) मन्त्री आ० स० मुगलसराय
जि० वाराणसी यू० पी०) १०१३
१०) हीरालाल जी गुप्त, आ०स०
स्टेशन रोड, नीमच (म० प्र०) १०१४
१०) सुन्दरलाल जी, प्रधान आ० स०
पुरवालियान १०१५
५) मन्त्री आ० स०, नरकटियागंज,
चम्पारन (बिहार) १०१६
५०) रामस्वरूप जी, मन्त्री आ०स०, बदायूं १०१८
१५) बा० राजेश्वर जी, ८-दरियागंज दिल्ली
प० रुचिराम जी द्वारा १०३३
१५) बा० सोहनलाल जी,
जनता बूट हाउस, पहाड़गंज, दिल्ली
प० रुचिराम जी द्वारा १०३४
१५) बंसीलाल जी, बंसी ब्रदर्स,
जनरल मर्चेन्ट, पहाड़गज, दिल्ली
प० रुचिराम जी द्वारा १०३५
३०) मन्त्री आ० स०, मोडल बस्ती,
सिद्धी पुरा, दिल्ली
(नोटों की बिक्री से) १०३६
१०) मन्त्री आ० स०, सीवान १०३७
२०) मन्त्री आ० स०, मैनपुरी १०३८
६४)५५ मन्त्री आ० स०, कोटा (राज०)
(नोटों की बिक्री से) १०३६

२५) मन्त्री आ० स०,
जी०सी०एफ० क्वाटर्स, जबलपुर
(नोटों की बिक्री से) १०४०
५०) मन्त्री आ० स०, मन्दसौर १०४६
२५) मन्त्री आ० स०, मज्मार रोड,
रोहतक (नोटों की बिक्री से)
प० रघुवीरसिंह जी शास्त्री द्वारा १०४८
५) गुमानसिंह जी,
रूबी जनरल इन्स्योरेंस कम्पनी,
२१, दरियागंज, दिल्ली १०४९
२००) मन्त्री आ० स०, आर्यधर्म सेवासंघ
सब्जी मण्डी, दिल्ली १०५१
२५) मन्त्री आ० स० देवबन्द, सहारनपुर
(नोटों की बिक्री से) १०५६
१०) किशनलाल जी एडवोकेट,
कृष्णा निवास, अंसारी मार्ग,
सहारनपुर १०५७
२५) राम जी प्रसाद जी,
मन्त्री आ० स०, गाजीपुर
(नोटों की बिक्री से) १०६२
१३) मन्त्री आ० स० बांकीपुर (पटना)
(नोटों की बिक्री से) १०७२
१०) मन्त्री आ० स० डाल्टन गंज (पलामू)
प० सत्यदेव जी शर्मा द्वारा १०७३
१८) श्री प० सत्यदेव जी शर्मा
(नोटों की बिक्री द्वारा) १०७४
३२)५५ मन्त्री आ० स० हिंगोली
जि० परभणी (महाराष्ट्र)
२५) कुन्दनलाल जी आर्य, मन्त्री आ० स०,
६३ सी० ओल्ड मद्रास रोड,
उल्सर बेंगलोर—८
७) मन्त्री आ० स० बस्ती
(नोटों की बिक्री से)
१०५) रामगुलाम रघुनाथ जी
खिजी रामपार, पोर्ट लुईस, मौरीशस
स्वा० ध्रुवानन्द जी सरस्वती द्वारा १०९०

१३)२५ बी० के० पटेल जी,
पो०बा०न० ९७, लुईस ट्रिचार्डट
ट्रान्सवाल दक्षिण अफ्रीका
२५) मन्त्री आ०स०,सुरजननगर (मुरादाबाद)
(नोटों की बिक्री से) १०९८
१००) जगतराम जी एडवोकेट,
१०० दयानन्दनगर, अमृतसर
(उड़ीसा में आदिवासियों में प्रचारार्थ) १०९०
२५) मन्त्री आ० स०, दयानन्द भूमि,
श्रीनाथ की तलैया,गजीपुरा, जबलपुर ११०७
२५) मन्त्री आ० स०, बयाना, जि० भरतपुर
(नोटो की बिक्री से) १११८
५) श्रीमती सुशीला जी कोपर
न० ४ काका नगर, नई दिल्ली ११२०
२५) मन्त्री आ० समाज हरदोई
(नोटों की बिक्री से) ११२३
५१) रामकृष्ण जी गर्ग करोरा-हाउस
सुखदेव जी शास्त्री द्वारा ११२८
१००) स्वा० आनन्द भिक्षु जी महाराज
द्वारा जैमिनी जी शास्त्री
(नोटों की बिक्री से) ११३५
२५) मन्त्री आ० स० देवबन्द
(नोटों की बिक्री से) ११४६
४००) मन्त्री आ० स० प्रतापनगर, दिल्ली
(नोटों की बिक्री से) ११५६
२०) मन्त्री आ० स०, मैनपुरी ११५७
३०) मन्त्री आ० स०,
परमानन्द कालोनी, बीकानेर ११६३
२५) कुन्दनलाल जी आर्य, मन्त्री आ० स०
६३-सी० ओल्ड मद्रास रोड,
उल्सर, बेंगलोर ८
५१) मन्त्री आ० स० बल्लभगढ, (गुड़गांव)
(नोटों की बिक्री से) ११६९
२१) मन्त्री आ० स० पहाड़गंज, नई दिल्ली
(नोटों की बिक्री से) ११७०
(शेष पृष्ठ ३४१ पर)

पंजाब की भाषा समस्या

देहली, १६ सितम्बर, सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री ने पंजाब की बदलती परिस्थिति व भाषा समस्या पर आर्य समाज का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुये अपने वक्तव्य में कहा कि सभा किसी भी स्तर पर भाषा सम्बन्धी अनिवार्यता या बाध्यता को स्वीकार नहीं करेगी। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में आपने प्रत्येक पग अत्यन्त विचार पूर्वक उठाने की प्रार्थना करते हुए घोषणा की कि हम वार्ता द्वारा समस्या का समाधान करने का यत्न कर रहे हैं। किन्तु यदि इस मार्ग से सफलता प्राप्त न हुई तो सभी यह जान लें कि सभा पंजाब में हिन्दी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिये पुन त्याग एव बलिदान का मार्ग अपनाने में भी पीछे न हटेगी।

पूरा वक्तव्य निम्न प्रकार है :—

"पिछले कुछ दिनों से पंजाब में जो घटनाक्रम चल रहा है तथा सरकार ने जो रवैया अपनाया है, इसके कारण हिन्दीप्रेमी तथा आर्य जनता में बेचैनीका फैल जाना स्वाभाविक है। कुछ राजनैतिक संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने भी इस प्रकारकी नीति ग्रहणकी है कि जिनसे अनेक भ्रांतिया पैदा हो गयी हैं। इस स्थिति मे आर्य समाज के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण आवश्यक हो गया है। जहा तक मांगों का सम्बन्ध है, सभा अपने पथपर दृढ है और वह किसी भी स्तर पर भाषा सम्बन्धी अनिवार्यता या बाध्यता को स्वीकार नही कर सकती। प्रत्येक माता-पिता तथा संरक्षक का यह मौलिक अधिकार है कि वह अपने बालकों को अपनी भाषा में शिक्षा दिलाये। प्रशासन में भी हिन्दी को यथेष्ट स्थान तथा सम्मान प्राप्त होना चाहिये।

इसी आधार पर हम सदा सच्चर फार्मूले का विरोध करते रहे हैं। सरकार ने भी हमारी मांग का औचित्य स्वीकार करके ही इस प्रश्न पर पुन. विचार आरम्भ किया और इस समस्या का न्याय सगत, स्थायी तथा सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत करनेके लिये दो शिक्षा शास्त्रियों की एक सद्भावना समिति नियुक्त की। पुनः इस समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन एवं सुझावों पर विचार करके उचित निर्णय करने के लिये पजाब के राज्यपाल श्री एन, वी गाडगिल ने एक २६ सदस्यीय समिति अपनी अध्यक्षता में नियुक्त की जिसकी कई बैठकें हो चुकी हैं। जहां तक हमारा ज्ञान है, सरकार ने समझौते का द्वार बन्द नहीं किया और राज्यपाल उक्त

समिति की बैठक बुलाने वाले हैं।

समस्त हिन्दी प्रेमी तथा विशेषतः आर्य जनता को मैं बताना चाहता हूं कि सार्वदेशिक सभा तथा सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति पंजाब की भाषा समस्या के सम्बन्ध में निरन्तर जागरूक रहकर उसका उचित एवं स्थायी समाधान कराने के लिये प्रयत्नशील है परन्तु वह यह भी चाहती है कि समझौता अथवा वार्तालाप के प्रत्येक प्रसंग एवं अवसर का पूर्ण उपयोग किया जाय। यह ठीक है कि सरकार की नीति तथा पंजाब की प्रतिदिन बदलती परिस्थितियों के कारण यह मामला बहुत लटकता जा रहा है। इधर बाढ़ आदि के दैवी प्रकोपों ने भी पंजाब में विनाश की लीला मचा दी है। ऐसी स्थिति में हमारे संयम, धैर्य तथा साहस की कड़ी परीक्षा हो रही है। परन्तु मुझे विश्वास है कि आर्य जनता इस परीक्षा में पूरी उतरेगी। यह भी निश्चय रखना चाहिये कि हमें पंजाब में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने के लिये यदि पुनः बलिदान एवं त्याग का मार्ग अपनाने की आवश्यकता हुई तो समस्त आर्य जनता इसके लिये यथापूर्व कटिबद्ध है।

इस भारी समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिये शीघ्र ही सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति की बैठक बुलाई जा रही है।

पंजाब में भाषा की-गुत्थी किस प्रकार सुलझाई जाय ?

प्रिंसिपल भगवानदास ने जो प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री और पंजाब सरकार की भाषा समिति के सदस्य हैं पंजाब के शिक्षा मन्त्री पं० अमरनाथ जी विद्यालंकार को २१-९-६० को एक लंबा पत्र लिख कर भेजा है जिसमें उन्होंने पंजाब सरकार की शिक्षा नीति की आलोचना करते हुये उसके समाधान के लिये कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने पंजाब के मुख्य मंत्री और शिक्षामंत्री की घोषणाओं पर खेद प्रकट किया है जिनके अनुसार १ १०-६० से पंजाब के प्रशासन में गुरुमुखी लिपि में लिखित पंजाबी भाषा का प्रचलन प्रारम्भ होगा। उन्होंने बताया है कि पंजाब के हिन्दुओं को सरकारी सर्विस से बहिष्कृत करने की यह बड़ी बुद्धिमत्ता पूर्ण चाल है। यह घोषणा सरकारी कर्मचारियों के लिए खुली चुनौती है और अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। मुख्य मन्त्री की धमकी नितान्त साम्प्रदायिक है। वे लिखते हैं—'मुख्य मन्त्री जानते हैं कि सिक्ख लोग १९४० से गुरुमुखी और १९४७ तथा उनसे कुछ पूर्व से ही हिन्दी पढ़ रहे हैं। जबकि हिन्दुओं ने १९५७ से (रीजनल फार्मूला १९५६ से लागू हुआ है) गुरुमुखी पढ़ना आरम्भ किया है। हिन्दुओं के लिए मैट्रिक स्टैण्डर्ड तक गुरुमुखी पढ़ने के लिए केवल ३, ४ वर्ष का समय दिया जाना बड़ा अन्यायपूर्ण है।"

मुख्य मन्त्री की धमकी का अभिप्राय यह है कि यदि सरकारी कर्मचारी गुरुमुखी न पढ़ेंगे तो वे सरकारी सर्विस छोड़ने में स्वतंत्र होंगे। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि उन सरकारी कर्मचारियों को जिन्होंने हिन्दी के प्रति प्रेम दिखाया था और जो इसी कारण से सरकारी सर्विस से पृथक किये गये थे, अभी तक नौकरी पर नहीं लिया गया है। खेद है कि हिन्दुओं

पर बलात गुरुमुखी लादने का निर्णय भुटनेटेक नीति के रूप में राज्य में किया गया है।

पजाब सरकार वास्तविक वा निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाये बिना ही इस समस्या को लटकाती चली आ रही है। यदि पजाब सरकार निष्पक्ष रुख अपनाये और हिन्दी एव गुरुमुखी को समस्त स्तरो पर समानता के आधार पर विकसित होने के खुले अवसर प्रदान करे तो भाषायी उन्माद तिरोहित हो जाय।

सरकारी कर्मचारियो को पजाब भर मे कम से कम २० वर्ष के लिये उर्दू, हिन्दी अ ग्रेजी वा गुरुमुखी के प्रयोग की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। अपने बच्चो की शिक्षा का माध्यम चुनने की माता पिताओ को स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इस प्रकार हिन्दी और गुरुमुखी के अध्ययन के लिये सीधे प्रोत्साहन प्राप्त होगा। बाध्यता न होनी चाहिये। समस्त पजाब में उन स्कूलो को सरकारी सहायता के वितरण मे प्रमुखता दी जानी चाहिए जो उर्दू, हिन्दी, अ ग्रेजी और गुरुमुखी के पठन-पाठन को प्रोत्साहित करे।

श्री प्रिंसिपल महोदय ने शिक्षामन्त्री से प्रश्न किया है कि क्या इस सुझाव में कोई साम्प्रदायिकता है ? अधिकांश सरकारी नौकर हिन्दी या उर्दू जानते हैं। आगे उन्होने कहा 'प्रजातन्त्र' स्वाधीनता, शिष्टता और अहिंसा की चर्चा क्यो की जाती है जबकि पजाब सरकार की कार्यवाही बडे भयानक बल-प्रयोग का रूप ग्रहण कर रही है जिसका देश के इतिहास मे कही उल्लेख तक नही मिलता। विदेशी शासको ने भी इस प्रकार की बाधाए खडी नही की थी। पजाब सरकार को इस प्रकार के भाषायी अत्याचारो के बीज न बोने चाहिए। ये अत्याचार अधिक काल तक नही किए जा सकते हैं।

(ट्रिब्यून २३-९-६०)

(पृष्ठ ४४० का शेष)

२५) मन्त्री आ० स० पहाड़गंज, नई दिल्ली
बैंक द्वारा ११९०

१५) केदारनाथ जी जैसवाल
मन्त्री आ० स०, सुलतानपुर
(नोटों की बिक्री से) ११९३

२०) केदारनाथ जी आर्य
ग्रा० आर्यनगर कर्ला, पो० खेतासराय
जि० जौनपुर (उ० प्र०) १२०४

२) श्रीमती प्रमला मिश्र
धर्मपत्नी पं० हरिवंशनारायण जी मिश्र
संग्राव (मु गेर) १२१५

२) प० हरिवंशनारायण जी मिश्र
सजाव—(मु गेर) १२१७

७१) सग्रहकर्ता-श्री शिवदयालु रामनाथजी
पारनी जिओले (मोरीशस) १२८८

४००) श्री अगतराम जी ऐडवोकेट
१००-दयानन्द नगर, अमृतसर (पंजाब)
(उड़ीसा में बाढ़ पीड़ितों व आदिवासियों में प्रचारार्थ सीधे श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी, वेदव्यास आश्रम, पानपोष को प्रेषित)

दान दाताओं को धन्यवाद
रघुवीरसिंह शास्त्री
सभा मन्त्री

हरियाना के बाढ़-पीड़ितों की सेवा सहायता करो

आर्य समाजों के नाम परिपत्र

पजाब प्रान्त में विशेषत रोहतक नगर तथा जिले के ग्रामों आदि में बाढ से जो भयकूर उपद्रव व्याप्त हुआ और जिसके परिणाम स्वरूप धन और जन की अपार क्षति हुई उसका किंचित् आभास सर्वसाधारण जनता को समाचार पत्रों से मिला है। हजारों व्यक्ति गृहविहीन एव निराश्रित हो गये हैं। पशुओं के लिये चारा नहीं रहा है। सर्वत्र सकट, अभाव और कष्टों का भयानक दृश्य व्याप्त हो गया है। सकट के इस काल में आर्य समाज पीडितों की सेवा-सहायता और रक्षा के कार्य मे पीछे नही रह सकता। सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्त्ता सहायता कार्य के लिये बाढ-पीडित क्षेत्रो में घूम-घूम कर सहायता कार्य कर रहे हैं। सभा की ओर से दयानन्द मठ रोहतक में आर्य समाज का सहायता केन्द्र खुल गया है। रोहतक के अतिरिक्त भी अनेक स्थानो पर केन्द्र खोलने होंगे। सभा ने तात्कालिक कार्य के लिये १०००) भेज दिया है। सभा के मन्त्री और प्रधान प्रभावित क्षेत्रो और पीडितों की दुरवस्था देख आये हैं। वहां की दशा वस्तुत कारुणिक है। आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने भी १०००) तुरन्त दे दिया है तथा सब प्रकार तत्परतापूर्वक सभा को सहयोग दे रही है।

सर्व साधारण जनता से आशा की जाती है कि वह सकट के इस काल में पीडितो की सेवा और सहायता कार्य में अपना योग दान करेगी। सहायता कार्य के लिये धन, वस्त्र और औषधि की अति आवश्यकता है। इनमे से जो भाई सहायता कर सकें उन्हे करके यश और पुण्य का भागी बनना चाहिये।

आर्य समाजो और आर्य नर नारियो से अनुरोध है कि वे अधिक से अधिक जो सहायता बन पडे अवश्य करें। धन इत्यादि सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में भेजा जाय।

हरयाणा आर्य समाज का गढ है। वह सकट के काल में सेवा और सहायता के लिये सदैव अग्रसर रहता है। अब जब घर आपत्ति आई तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी सेवा और सहायता के लिये अग्रसर हों।

रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री

प्रसन्नता है कि आर्य नर नारियो, आर्य समाजो और सर्वसाधारण जनता ने हरयाना की इस प्राकृतिक आपत्ति को अपनी आपत्ति मान कर अपना कर्तव्य पूरा करना आरम्भ कर दिया है। वह धन, वस्त्र और औषधि से सहायता कर रही है—सपादक

सार्वदेशिक आर्य वीर दल

आर्य समाजों के नाम परिपत्र

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में १९२९ से आर्य वीरदल का कार्य सचालित हा रहा है और सभा इसे अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्नशील रही है। लक्ष्य यह रहा है कि आर्य समाजों के निर्णय पर ऐसे चरित्रवान और प्रशिक्षित आर्य वीरों का समुदाय रहे जिन्हें आर्य समाज के अधिकारों की रक्षा और सेवा-सहायता के अवसरों पर लगाया जा सके।

प्रारम्भ में आर्य वीर दल का सचालन मुख्यतया आर्य समाजों और प्रान्तीय सभाओं के अधीन रखा गया था। यह व्यवस्था आर्य वीरदल की जड़ जमाने और कार्य की प्रगति को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई। इसके पश्चात् आर्य वीरदल का ध्येय आर्य नवयुवकों में क्षात्र धर्म का प्रचार मुख्य तथा सेवा सहायता का कार्य गौण बना दिया गया और इसके सगठन का रूप बदल दिया गया। परिणाम यह हुआ कि प्राय आर्य समाजों में इसके प्रति ममत्व की भावना जागृत न हुई और इसे बहुत कम या नाम मात्र का सहयोग प्राप्त हुआ, इसकी प्रगति अनेक स्थानों पर कुण्ठित हो गई और जहां कुण्ठित न हुई वहां भी अभीष्ट फल उत्पन्न करने में असमर्थ रही।

सार्वदेशिक सभा इसे जीवित, जागृत सस्था देखना चाहती है और यह भी चाहती है कि आर्य समाजों का इसे सहयोग और सरक्षण प्राप्त रहे। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा ने अपनी २७-३ ६० की बैठक में विचार करके आर्यवीरदल के सगठन के कुछ मौलिक उद्देश्य नियत किए। उन उद्देश्यों के अनुसार नियमों को सशोधित किया गया है जिनकी १ प्रति आप को शीघ्र भेजी जा रही है। आपसे अनुरोध है कि आप इन नियमों के अनुसार अपने समाज में आर्यवीरदल का सगठन करके उसे सुचारु रूप से सचालित करें।

आपकी सूचना के लिए यह भी लिख देना आवश्यक है कि पहले नियमों के अनुसार जो नियुक्तियां हुई थीं तथा विविध स्थानों पर समितिया, उपसमितियां बनी थीं वे सब समाप्त हो गई हैं। २६-६-६० की अन्तरग सभा ने आर्यवीरदल के रक्षा सचिव सभा उपप्रधान श्री देश राज जी चौधरी तथा प्रधान सचालक श्री मिहरचन्द जी धीमान को निर्वाचित किया है। रक्षा सचिव महोदय ने नए नियमों के अनुसार श्री प० सुखदेव जी शास्त्री को उपप्रधान सचालक नियुक्त किया है और अब वे ही प्रधान सचालक की देख-रेख और मार्ग-प्रदर्शन में सार्वदेशिक सभा की ओर से दल का सचालन करेंगे। श्री सुखदेव जी शास्त्री आर्य समाजों और आर्य जनता के लिए नए नहीं हैं वह आर्यवीर दल के पुराने अनुभवी कार्यकर्त्ता हैं।

आपसे निवेदन है कि नए नियमों के अनुसार आर्य वीरदल का सगठन और सचालन करें, इसे जीवित सस्था बनाएं तथा सार्वदेशिक आर्य वीरदल समिति, उसके अधिकारियों तथा श्री सुखदेव जी शास्त्री को अपना पूरा-पूरा सहयोग देवें जिससे सगठन के कार्य की प्रगति को बढाने में उनके हाथ दृढ हों, और उनका मार्ग प्रशस्त हो।

यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि श्री ओ३म्प्रकाश जी त्यागी, जो आर्य वीर दल के प्रधान सचालक थे और इस सभा की ओर से छोटा नागपुर में ईसाई प्रचार निरोध का कार्य भी कर रहे थे, त्याग-पत्र देकर सभा से अलग हो चुके हैं। सार्वदेशिक सभा द्वारा संचालित आर्य वीर दल तथा ईसाई प्रचार निरोध के कार्य से अब उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्री सुखदेव जी शास्त्री इस समय ईसाई प्रचार निरोध का भी कार्य कर रहे हैं। इस समय उनका मुख्य स्थान रांची (छोटा नागपुर) है।

रघुवीरसिंह शास्त्री
सभा मन्त्री

हरयाणा में बाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ
सार्वदेशिक सभा में प्राप्त धन का विवरण
७-६-६० ई० से २६-६-६० ई० तक
हरयाणा बाढ़ पीड़ित सहायता निधि

१०१) मन्त्री आर्यसमाज, करौल बाग
१०१) ,, ,, बल्लभगढ़
११) मुख्याध्यापिका, नगर निगम कन्या पाठशाला चूड़ीवालान, दिल्ली
१००) मघानन्द जी सिकन्दराबाद, (बुलन्दशहर)
१०१) जगन्नाथ दिलीपसिंह जी नयाबास, दिल्ली
१०१) मुरारीलाल मुकटबिहारी, खारी बावली दिल्ली
१०१) दिल्ली वनस्पति सिंडीकेट,खारीबावली दिल्ली
१०१) कन्हैयालाल जी, गाडोदिया मार्केट दिल्ली
१०१) श्यामसुन्दर राधेश्यामजी, ईश्वर भवन दिल्ली
१०१) कन्हैयालाल देवीसहाय चावड़ी बाजार दिल्ली
१०१) ईश्वरदयाल विजयकुमार ईश्वरभवन, दिल्ली
१०१) अमर डाईस्टफ कम्पनी, तिलकबाजार, दिल्ली
१०१) उगामल गोपीनाथ जी सूत वाले ईश्वर भवन, दिल्ली
१०१) जीवनराम गनपतराय जी क्लाथ मार्केट,दिल्ली
५१) गंगाधर ईश्वरदयाल जी, नया बाजार दिल्ली
५१) आत्माराम ओम्प्रकाश जी, ईश्वर भवन दिल्ली
२) इन्दु वर्मा, ३१५० कूचा ताराचन्द, दरिया गंज दिल्ली
५००) मन्त्री आ० प्र० नि० सभा, पञ्जाब
१०१) नारायणदास रतनलाल जी, ३४६-चावड़ी बाजार दिल्ली
१०१) न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
५१) गुजरात तम्बाकू हाउस, ईश्वर भवन, दिल्ली
५१) तुलसीभाई गोवर्धनभाई पटेल,नयाबांस,दिल्ली
५१) रतनलाल गोविन्दलाल, नयाबांस दिल्ली
१०१) फतेहचन्द जयचन्द, नया बाजार दिल्ली
५१) अमर टैक्स टाइल कं० क्लाथ मार्कीट दिल्ली
२५) मन्त्री आर्यसमाज, शकूर बस्ती दिल्ली
५१) ब्र० बदनसिंह जी आर्य पहलवान २८६-कूचा घासीराम चा० चौ० दिल्ली
२५०) आर्य कन्या विद्यालय, दुर्ग
१०) श्रीकृष्ण जी गुप्त, नागपुर
५) स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती
१००) घनश्यामसिंह जी गुप्त
२५) श्रीमती रामदेवी जी, ३-जंगपुरा नई दिल्ली
२५) सम्राट प्रेस, पहाड़ी धीरज, दिल्ली
१) गन्धर्वसेन जी खोसला
५) प्रेमचन्द जी
१) भगवानसिंह जी शास्त्री
२००) मन्त्री आर्यकुमार सभा, किंग्सवे दिल्ली
४१) मन्त्री आर्य समाज (गुरुकुल विभाग) राणी का तालाब, फिरोजपुर शहर (पंजाब)
५) झम्मनलालजी, ४८८२ लड्डूघाटी पहाड़गंज नई दिल्ली
५१) मन्त्री आर्य समाज नैनीताल।
१०१) श्री पद्म रमनलाल जी, सदरबाजार, दिल्ली
१०१) इन्दूभाई गोविन्दलालजी,क्लोथ मार्केट दिल्ली
५१) अम्बाप्रसाद आदो जी, कटरा तम्बाकू खारी बावली, दिल्ली
१०१) रामशरणदास जी श्रीकिशनदास नया बांस दिल्ली

१०१) खेमचन्द जी बहादुर आहूजा
जी० बी० रोड, दिल्ली
३१) पी० जी० बगल एण्ड कम्पनी
जी० बी० रोड, दिल्ली
२१) एम० डी० शर्मा जी ५८-जी, बी रोड, दिल्ली
१५) उमरावसिंह जी रामचन्द्र लाहौर वाले
चान्दपुर स्याऊ, जि० बिजनौर
१०१) राधाकिशन जुगलकिशोर जी दिल्ली
५१) रामेश्वरदास जी गुप्त, गुप्ता प्रकाशन,
४८ रेगड़पुरा, करौल बाग, दिल्ली
१०१) हरिनारायण गोपीनाथ, दिल्ली
१०१) ज्योतिप्रसाद जगन्नाथ जी, नया बास, दिल्ली
११) हुकमचन्द भोलानाथ जी, मोती बाजार,
चाँदनी चौक, दिल्ली
१०) श्री कुन्दनलाल जी, मथुरा
५०) बसन्तराम जी,
मन्त्री आर्य समाज फुनेरा, जकशन
५०) मन्त्री आर्यसमाज ब्यावर (अजमेर)
६१) मन्त्री आर्य समाज कृष्णनगर (शाहदरा)
११) प० जैमिनी जी शास्त्री, एम० ए०,
कूचा ताराचन्द, दरियागज, दिल्ली
महात्मा आनन्द भिक्षु जी द्वारा
३३) मन्त्री आ० स० तीमारपुर, दिल्ली
महात्मा आनन्द भिक्षु जी द्वारा
२८) मन्त्री आ० स० हिसार, (पंजाब)
१०५) यूनियन बैंक आफ इण्डिया,
चाँदनी चौक, दिल्ली के स्टाफ द्वारा
(कुमारी नानकी मोटवानी तथा कुमारी चन्द्रा
मोटवानी द्वारा)
२३३)८१ मन्त्री आ० स० लाजपतनगर, नई दिल्ली
महात्मा आनन्द भिक्षु जी सरस्वती द्वारा
३१) मन्त्री आ० स० साहिबगज, (बिहार) (स०प्र०)
१८) बाबूसिंह जी आ० स० सदस्य
पुरबालियान (मुजफ्फरनगर)
४) मन्त्री आ० स०, पथरगामा (स०प्र०) (बिहार)
१००) श्री हरिश्चन्द्र जी, मन्त्री आ०स० रामपुर(स०प्र)
११) हरिमोहन जी, पंजाब बिस्कुट फैक्टरी
के सामने, पं० मनोहर जी वि० अ० द्वारा
५१) सहगल एण्ड सन्स, आसफ अली रोड, दिल्ली
१०) श्री हरिश्चन्द्र जी, मानस प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली
२१) साइन्टिफिक इक्विपमेंट वर्क्स
१७७७ निकलसन रोड, दिल्ली
५१) गुप्ता तम्बाकू कम्पनी, दरियागंज, दिल्ली
२५) पं० विद्यानिधि जी, रेगड़पुरा, दिल्ली
११) श्री मनोहर जी द्वारा सगृहीत
१०) मन्त्री आ० स० कारकल (दक्षिण कनारा)
११) जांगिड वैदिक विद्यालय, फतेहपुर (राजस्थान)
५००) आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश

५५६१)८१ योग

दानदाताओं को धन्यवाद

इस दान में दिल्ली से जो धन संग्रह किया गया है उसमें श्रीयुत मनोहर जी विद्यालङ्कार का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।

रघुवीरसिंह शास्त्री
सभा मन्त्री

❀

विविध सहायता तथा कार्य

हरयाणा बाढ़ पीड़ित सेवा केन्द्र दयानन्द मठ रोहतक में १०-९-६० से १५-९-६० तक जो धन, वस्त्र, आटा, सिरकियाँ तथा औषधियां प्राप्त हुईं और उस केन्द्र द्वारा बांटी गई उनका ब्यौरा इस प्रकार है —

श्री प्रो० शेरसिंह एम० एल० ए० द्वारा
१०-९-६०
१—२२ थैले दवाइयों के लिए प्राप्त
२—२ बोरी गेहूँ का आटा (श्री ला० काशीराम जी रोहट वाले)
३—१ बोरी, ३ कट्टे आटा (सार्वदेशिक सभा से)
२१ गज रंगीन कपड़ा ,,
११-९-६०

माननीय सेठ जुगलकिशोर जी बिरला दिल्ली

(द्वारा श्री पं० रामचन्द्र जी शास्त्री)

(क) १—२०० सिरकियाँ—१६० पं० जी द्वारा बांटी गईं और ४० चौ० हरीराम जी वकील रोहतक द्वारा बांटी।

२—१० सफेद चादरें

३—३५ रंगीन चादरे

४—१६० धोतिया जनानी

५—७८० गज बगैर धुला लट्ठा

६—१४ प्रकार की भिन्न २ औषधियां

७—२ बोरी आटा गेहूं, (आर्य कुमार सभा, आर्य समाज बिरला लाइन्स)

(ख) श्री पं० रामचन्द्र जी द्वारा वितरित वस्तुए — सिरकियां १४५ परिवारों को, आटा ८२ परिवार, कपड़ा २३१ परिवार।

२२२॥-) की औषधियां गुरुकुल झज्झर से प्राप्त, श्री आचार्य भगवानदेवजी ने ५००) की औषधियां देने का वचन दिया।

(ग) २२ देहाती केन्द्रों में स्वयं सेवक औषधिया वितरण करने गये।

(घ) दयानन्द मठ में १४५ रोगियों की चिकित्सा हुई।

धन

१—सार्वदेशिक सभा से	१०००)
२—आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब	५००)
३—श्री मा० पोहकरमल	२०)
४—वेदप्रकाश बोहर	१०)
५—मा० लालमनसिंह टटेसर	२५)
६—श्री जुगलाल हरिजन छहरी रोहतक	१०)
७—,, सी० यल बाहरी शिवपुरी हावड़ा	१०००)
८—,, दौलतराम बाठला बरेली	१००)
९—,, पवनकुमार	१५)
१०—,, रामेश्वर प्रसाद	१०)
११—,, विष्णुस्वरूप सुपुत्र श्री रामनारायण पटवारी (द्वारा श्री प्रो० रामसिंह जी एम० ए० दिल्ली	१०१)
योग	२७९१)

सार्वदेशिक सभा में प्राप्त तथा रोहतक केन्द्र को प्रेषित —

१—गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी ८ पेटियां(बड़ी) दवाई	
२—रिजर्व बैंक नई दिल्ली	१८ ऊनी कपड़े
३—साड़िया	१३
४—धोतिया मर्दानी	७
५—१ बोरी, ३ कट्टे आटा	

श्रीयुत पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा देहरादून ने १ वैद्य दयानन्द मठ में औषधियों सहित बिठाने का निश्चय कर दिया है। वैद्य महोदय शीघ्र ही दयानन्द मठ में आने वाले हैं।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है,—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(आर्य समाज का छठा नियम)

आर्य कुमार सभा किंग्जवे देहली द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

निम्नलिखित पुस्तकें मन्त्री प्रकाशन विभाग आर्य कुमार सभा द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। यह प्रकाशन सभा ने जनता में प्रचारार्थ अत्यन्त सस्ता छापा है। दानी सज्जन सहस्रों की संख्या में मंगाकर बांट एवं प्रकाशन विभाग के सदस्य बनकर वैदिक साहित्य के प्रचार में सहयोग दें।

नाम पुस्तक	नाम लेखक	प्रति प्राप्ति	प्रतिशत
(१) मद्यनिषेध की आवश्यकता	(रघुनाथ प्रसाद पाठक)	१ ८	६-२५
(२) बलिदान का राष्ट्रीय महत्व	(ओम्प्रकाश पुरुषार्थी)	-१०	७-००
(३) प्रार्थनालोक	(श्री जगदीश विद्यार्थी)	-१२	१०-००
(४) गीता-उपदेश	(,, ,,)	-१०	१५-००
(५) पीछे हटो	(,, ,,)	-६	५-००
(६) अनमोल मोती	(,, ,,)	-३५	२५-००
(७) मुक्तिसोपान प्रथम भाग	(स्वा० श्रद्धानन्द जी	-३०	२५-००
(८ मधुगान	(प० देवकीनन्दन भजनोपदेशक)	-६	५ ००
(९) आदर्श शिक्षा	(श्री जगदीश विद्यार्थी)	-६	५-००
(१०) नभ के तारे	(रमेशकुमार लौ)	-३५	२५-००
(११) गुरु दक्षिणा*	(ब्रह्मस्वरूप शर्मा)	-२५	१५-००
(१२) मुक्ति सोपान द्वितीय भाग	(श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी ।	-३०	२५-००
(१३) वैदिक ईश्वरवाद तथा आधुनिक विज्ञान	(प० धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड)	-३०	२० ००
(१४) भगवान् कृष्ण	(जगदीश विद्यार्थी)	-३०	२०-००

* यह अद्भुत पुस्तक ऋषि निर्वाणोत्सव (दीपावली) के अवसर पर जनता तक पहुँचाने के लिए तैयार की गई है।

आतङ्क निग्रह हवन सामग्री

दमा एवं यक्ष्मा पर

विन्ध्याचल पर्वत अन्तर्गत चित्रकूट गिरि के अञ्चल में लहराने वाली दमा एवं यक्ष्मा नाशक जड़ी बूटी से भरित तथा हिमालय की सुगन्धित जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों और काष्ठादि अष्टवर्ग औषधियों से पूरित यह आतङ्क निग्रह, हवन सामग्री, सर्वोत्तम शुद्ध, पवित्र, सर्वऋतु अनुकूल शास्त्रोक्त, स्वास्थ्य वर्धक, कीटाणु नाशक तथा सर्वोपयोगी है। इसके दैनिक प्रयोग से तमाम रोग नाश होते हैं। दमा एव यक्ष्मा से पीड़ित महानुभावों को पीपल की ही समिधा लेनी चाहिये।

मूल्य ६०) मन आर्डर के साथ १०) प्रतिशत पेशगी अवश्य भेजें।

प्रधान कार्यालय:—**दयानन्द दातव्य औषधालय**

आर्यसमाज नैनीताल (उ०प्र०)

उपप्रधान कार्यालय:—**चित्रकूट आयुर्वेदिक निकेतन**

प्रचार करने योग्य ट्रैक्ट

	मूल्य प्रति		सैकड़ा
१ आर्यसमाज के मन्तव्य	)०६	प्रति	५)
२ शंकासमाधान	)०३	,,	३)
३ पूजा किसकी	)०३	,,	२)५०
४ आर्यसमाज	)०३	,,	२)५०
५. भारत का एक ऋषि	)०६	,,	५)
६ ऋग्वेद में देवृकामा या देवकामा	)०६	,,	५)
७ गो करुणानिधि	)०६	,	४)
८ गोहत्या क्यों ?	)१२	,,	१०)
९ चमड़े के लिये गोवध	)१८	,,	१५)
१० पचमहायज्ञविधि	)२०	,,	१५
११. मांसाहार घोर पाप	)१५	,,	१०)
१२ आर्य शब्द का महत्व	)०६	,,	७)५०
१३ दशनियम व्याख्या	)०६	,,	७)५०
१४ तीर्थ और मोक्ष	)०६	,,	७)५०
१५ ग्रहण और दान	)०६	,,	७)५०
१६ भारतवर्ष मे जाति भेद	)०६	,,	७)५०
१७ वैदिक राष्ट्र धर्म	)२०	,,	१५
१८ प्रजापालन	)०५	,,	४)
१९ नारायण स्वामीजी की सक्षिप्त जीवनी	)०६	,	५)
२० सत्यार्थप्रकाश की रक्षा में	)०६	,	५)
२१ मुर्दों को क्यों जलाना चाहिए	)०६	,	७)५०
२२ आर्यसमाज के नियमोपनियम	)०६	,	७)५०
२३ आदर्श गुरु शिष्य	)२५	,,	२०)

ENGLISH PUBLICATIONS

1 Introduction to the Commentary on Vedas 2/8/

2 Kenopanishat (Translation by Pt Ganga Prasad ji, M A -/4/

3 Kathopanishat (Pt Ganga Prasad M A Rtd Chief Judge) 1/4/-

4 Aryasamaj & International Aryan League (Pt Ganga Prasad ji Upadhyaya M A) /1/

5 Voice of Arya Varta (T L Vasvani) /2/-

6 Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-

7 Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-

8 Vedic Culture (Pt Ganga Prasad Upadhyaya M A) 3/8/

9 Aryasamaj & Theosophical Society (Shiam Sunder Lal) -/3/-

12 A Case of Satyarth Prakash in Sind (S Chandra) 1/8/-

13 In Defence of Satyarth Prakash (Prof Sudhakar M A) /2/

14 Universality of Satyarth Prakash /1/

15 Tributes to Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/

16 Political Science (Mahrishi Dayanand Saraswati) /8/-

17 Elementary Teachings of Hindusim -/8/- (Ganga Prasad Upadhyaya M A)

18 Life after Death ,, 1/4/

19 Philosophy of Dayanand , 10 -

20 Agnihotra (Dr Satya Prakash) 2/8

21 Daily Prayer of An Arya /8 (Shri Narain Swami)

22 The Constitution of Arya Samaj -0 n P

23 Crucifixion by an eye witness 1

नोट—(१) आर्डर के साथ २५ प्रतिशत चौथाई धन अगाऊ रूपमें भेजें।

(२) अपना पूरा पता डाकखाने तथा स्टेशन के नाम सहित साफ २ लिखें।

(३) विदेश से यथासम्भव धन पोस्टल आर्डर द्वारा आना चाहिए।